सुमित्रानंदन पंत ग्रंथावली

खण्ड दो

युगपथ युगवाणी ग्राम्या
स्वर्णकिरण स्वर्णधूलि मधुज्वाल



राजकमल प्रकाशन
नयी दिल्ली पटना

मूल्य रु० ५०.००

प्रथम संस्करण १९७९

प्रकाशक राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड
८, नेताजी सुभाष मार्ग, नयी दिल्ली ११०००२

मुद्रक शान प्रिंटर्स,
शाहदरा, दिल्ली ११००३२

SUMITRANANDAN PANT GRANTHAVALI
Collected works of Shri Sumitranandan Pant Price Rs 50.00

अनुक्रम

युगपथ १-७२

युगान्त

द्रुत झरो जगत के जीर्ण पत्र ५
गा कोकिल, बरसा ७
झर पड़ता जीवन डाली से ८
अचल पग दीप-शिखा के ८
विद्रुम औ' मरकत की छाया ६
जगती के जन पथ कानन में १०
वे चहक रही कुंजों में १०
वे डूब गये १०
तारों का नभ ११
जीवन का फल ११
बढ़ो अभय,
विश्वास चरण धर १२
गर्जन कर मानव केशरि ! १२
बांसों का झुरमुट १३
जग-जीवन में जो चिर महान १४
जो दीन हीन, पीड़ित १४
शत बाहु-पाद १४
ए मिट्टी के ढेले १५
खो गयी स्वर्ग की
स्वर्ण किरण १५
सुन्दरता का आलोक १६
नव हे, नव हे १६
बाँधो, छवि के नव बन्धन १७
मजरित आम्र वन छाया में १७
वह विजन चाँदनी की घाटी १८
वह लेटी है तरु छाया में १८
खोलो, मुख से घूँघट १९
द्वाभा के एकाकी प्रेमी २०
अँधियाली घाटी में २०
मिट्टी का गहरा अन्धकार २०
ताज २१
मानव २२
तितली २३
सन्ध्या २३
बापू के प्रति २४

युगान्तर

श्रद्धा के फूल २६
गुरुदेव के प्रति ३३
राजकीय गौरव से जाता ३४
लो, झरता रक्त प्रकाश आज ३४
बार बार अन्तिम प्रणाम ३५
जय हे, जय राष्ट्रपिता ३५
भारत गीत ३५
स्वतन्त्रता दिवस ३८
स्वाधीनता दिवस ३६
जय गान ३६
जागरण गीत ४०
उदबोधन ४१
जागरण ४२
दीपलोक ४३
दीप श्री ४४
दीपावली ४५
मिट्टी के खिलौने ४६
कवीन्द्र रवीन्द्र के प्रति ४६
अवनीन्द्रनाथ ठाकुर के प्रति ५२
मर्यादा पुरुषोत्तम के प्रति ५३
आवाहन ५५
श्री अरविन्द के प्रति ५६
श्रद्धांजलि ५७
अवतरण ५७
स्वप्न पूजन ५८
वह मानव क्या ५८
जिज्ञासा ५९
प्रकाश क्षण ६०
करुणा धारा ६०
रँग दो ६१
शोभा जागरण ६२
मानसी ६२
अन्तर धन ६३
अमर स्पर्श ६३
प्रीति परिणय ६४
नव आवेश ६४
स्वप्न गीत ६५

	७
नि गणी	
युगवाणी	७९ १२५
बापू	८१
युगवाणी	८१
नव दृष्टि	८२
मानव	८२
युग उपकरण	८२
नव संस्कृति	८३
पुण्य प्रसू	८३
चींटी	८४
पतझर	८६
तितली	८६
दो लड़के	८७
मानवपन	८८
गंगा की सांझ	८८
गंगा का प्रभात	८९
मूल्यांकन	९०
उद्बोधन	९१
खोलो	९१
मार्क्स के प्रति	९२
भूत दर्शन	९२
साम्राज्यवाद	९३
समाजवाद गांधीवाद	९३
संकीर्ण भौतिकवादियों के प्रति	९४
धनपति	९४
मध्यवर्ग	९४
कृषक	९५
श्रमजीवी	९५
घन नाद	९६
कर्म का मन	९७
रूप का मन	९७
रूप पूजन	९८
रूप निर्माण	९८
भूत जगत्	९९
जीवन मांस	९९
मानव पशु	९९
नारी	१००
नर की छाया	१०१
बंद तुम्हारे द्वार	१०१
सुमन के प्रति	१०२
कवि	१०२

प्रभात	१०४
भाव विहग	१०५
उन्मन	१०५
अनुभूति	१०५
भव संक्रान्ति	१०६
हरीतिमा	१०६
प्रगति के प्रति	१०७
द्वंद्व	१०७
राग	१०८
राग साधना	१०८
रूप सत्य	१०९
मुझे स्वप्न दो	१०९
मन के स्वप्न	११०
जीवन स्वप्न	११०
मधु के स्वप्न	१११
पलाश	१११
पलाश के प्रति	११२
कैलिफोर्निया पॉपी	११२
बदली का प्रभात	११२
दो मित्र	११३
झंझा में नीम	११४
ओस के प्रति	११४
ओस बिंदु	११५
जलद	११५
अनामिका के कवि	११६
आचार्य द्विवेदी के प्रति	११७
कुसुम के प्रति	११७
शांति	११८
जीवन-तम	११८
आओ	११८
कृष्णघन	११९
निश्चय	११९
खोज	१२०
आवाहन	१२०
लेनदेन	१२१
वस्तु सत्य	१२१
नव मानव	१२२
प्रकृति शिशु	१२२
आवेदन	१२२
आत्म समर्पण	१२३
तुम ईश्वर	१२३
वाणी	

युग नृत्य	१२४
ग्राम्या	१२७-१७८
स्वप्न पट	१३१
ग्राम कवि	१३१
ग्राम	१३१
ग्राम दृष्टि	१३२
ग्राम चित्र	१३२
ग्राम युवती	१३३
ग्राम नारी	१३५
कठपुतले	१३६
वे आँखें	१३६
गाव के लडके	१३८
वह बुड्ढा	१३८
धोबियो का नृत्य	१३९
ग्राम वधू	१४०
ग्राम श्री	१४१
नहान	१४३
गगा	१४५
चमारो का नाच	१४६
कहारो का रुद्र नृत्य	१४७
भारत माता	१४८
चरखा गीत	१४९
महात्माजी के प्रति	१५०
राष्ट्र गान	१५१
ग्राम देवता	१५२
सन्ध्या के बाद	१५५
खिडकी से	१५८
रेखाचित्र	१६०
दिवा स्वप्न	१६०
सौन्दय कला	१६२
स्वीट पी के प्रति	१६३
कला के प्रति	१६५
स्त्री	१६६
आधुनिका	१६६
मजदूरनी के प्रति	१६६
नारी	१६७
द्वन्द्व प्रणय	१६८
१९४०	१६८
सूत्रधार	१६९
सस्कृति का प्रश्न	१६९
सास्कृतिक हृदय	१७०
भारत ग्राम	१७
स्वप्न और सत्य	१७
बापू	१७१
अहिंसा	१७२
पतझर	१७२
उद्बोधन	१७३
नव इन्द्रिय	१७४
कवि किसान	१७४
वाणी	१७५
नक्षत्र	१७५
आगन से	१७५
याद	१७६
गुलदावदी	१७७
विनय	१७७
स्वण किरण	१७९-२७३
अभिवादन	१८३
सम्मोहन	१८३
रजतातप	१८४
हिमाद्रि	१८६
इन्द्रधनुष	१९०
चिन्तन	१९४
मत्स्य गन्धाएँ	१९६
अरुण ज्वाल	१९७
स्वण निर्झर	१९८
ज्योति भारत	१९९
नोआखाली के महात्माजी के प्रति	१९९
जवाहरलाल नेहरू के प्रति	२००
अगुण्ठिता	२०१
चिन्मयी	२०२
हिमाद्रि और समुद्र	२०३
भू प्रेमी	२०४
पूषण	२०५
जिज्ञासा	२०५
स्वर्णिम पराग	२०६
ऊषा	२०६
चन्द्रोदय	२१३
द्वा सुपर्णा	२१४
व्यक्ति और विश्व	२१५
प्रभात का चाद	२१५
हरीतिमा	२१६

छाया पट	२१७	अन्तर्वाणी	२६८
आवाहन	२१८	मुक्ति बन्धन	२९९
निवेदन	२१८	मातृ चेतना	२९९
भू लता	२१९	मातः शक्ति	३००
जीव के प्रति	२२०	प्रणाम	३०१
संक्रमण	२२१	निर्झर	३०१
नारी पथ	२२१	ज्योति भर	३०२
नील धार	२२२	प्रीति निर्भर	३०२
युग प्रभात	२२३	अन्तर्लोक	३०३
सविता	२२४	स्वर्ग अप्सरी	३०३
श्री अरविन्द दर्शन	२२५	चित्रकरी	३०४
स्वर्णोदय	२२७	अन्तर्विकास	३०५
अशोक वन	२५७	चेतन	३०५
		मृत्युंजय	३०६
स्वर्णधूलि	२७५-३५३	लक्ष्मण	३०७
स्वर्णधूलि	२८१	छाया दर्पण	३०८
ज्योति वृषभ	२८२	छायाभा	३०९
अग्नि	२८२	आह्वान	३१०
काल अश्व	२८३	परिणति	३११
देवकाव्य	२८३	चौथी भूख	३११
देव	२८४	अन्तिम पैगम्बर	३१२
पुरुषार्थ	२८४	नरक में स्वर्ग	३१४
अन्तर्गमन	२८५	दिवास्वप्न	३१६
एक सत्	२८५	सावन	३१७
प्रच्छन्न मन	२८६	तालकुल	३१८
सर्जन शक्तियाँ	२८७	क्रोटन के प्रति	३१८
इन्द्र	२८७	नव वधू के प्रति	३१९
वरुण	२८८	आशंका	३१९
सोमपायी	२८८	जन्मभूमि	३२०
मंगल स्तवन	२८९	युगागम	३२१
संन्यासी का गीत	२८९	गणपति उत्सव	३२१
भावोन्मेष	२९२	स्वप्न निबल	३२२
आवाहन	२९३	लोक सत्य	३२३
प्राण कांक्षा	२९३	सामंजस्य	३२४
रस स्रवण	२९४	ग्रामीण	३२५
साधना	२९४	आज़ाद	३२६
प्रेम मुक्ति	२९४	काले बादल	३२६
प्रतीति	२९५	जाति मन	३२७
सार्थकता	२९६	क्षण जीवी	३२८
कुण्ठित	२९६	मनुष्यत्व	३२९
प्रात	२९७	वनिता	३२९
अविच्छिन्न	२९८	परकीया	३३०

ध्वजा वन्दना ३३१
१५ अगस्त '४७ ३३१
हृदय तारुण्य ३३२
प्रणय कुंज ३३३
मम कथा ३३३
मम व्यथा ३३४
गापन ३३४
शरद चाँदनी ३३४
स्वप्न बंधन ३३५
स्वप्न देही ३३६
मानसी ३३७
मधुज्वाल ३५५-३६४

युगपथ

[प्रथम प्रकाशन वर्ष १९४९]

विज्ञापन

'युगपथ' दो भागों में विभक्त है। पहला भाग 'युगान्त' है, जो प्रथम बार सन १९३६ में स्वतन्त्र पुस्तक के रूप में प्रकाशित हुआ था, जिसमें सन '३४ से लेकर '३६ तक की मेरी तैंतीस छोटी बड़ी रचनाएँ संकलित हैं। पहिले संस्करण की भूमिका का उल्लेखनीय अंश इस प्रकार है —'युगान्त' में 'पल्लव' की कोमल कान्त कला का अभाव है। इसमें मैंने जिस नवीन क्षेत्र को अपनाने की चेष्टा की है, मुझे विश्वास है, भविष्य में उसे मैं अधिक परिपूर्ण रूप में ग्रहण एवं प्रदान कर सकूँगा।

दूसरा भाग 'युगान्तर' है, जिसमें मेरी इधर की कुछ नवीन रचनाएँ संगृहीत हैं, जिनमें से अधिकांश बापू जी के देह निधन के बाद उनकी पुण्य स्मृति के प्रति श्रद्धांजलि के रूप में लिखी गयी थीं। शेष रचनाओं में तीन अतुकान्त हैं जिनमें से प्रमुख 'कवीन्द्र रवीन्द्र के प्रति' शीर्षक कविता है, जो उनके श्राद्धवासर के अवसर पर अगस्त के महीने में लिखी गयी थी।

'युगान्त' की कलेवर वृद्धि की दृष्टि से भी उसके साथ कुछ नवीन कविताओं को सम्मिलित कर देना उचित समझा गया, जो अब प्रस्तुत संग्रह के रूप में पाठकों के पास पहुँच रहा है।

प्रयाग,
१ अक्टूबर, '४८

—सुमित्रानन्दन पंत

१

द्रुत झरो जगत के जीर्ण पत्र,
हे स्रस्त ध्वस्त, हे शुष्क शीर्ण!
हिम-ताप-पीत, मधुवात भीत,
तुम वीतराग, जड़, पुराचीन!!
निष्प्राण विगत युग! मृत विहंग!
जग नीड़ शब्द औ' श्वास हीन,
च्युत, अस्तव्यस्त पंखों-से तुम
झर झर अनन्त में हो विलीन!

कंकाल-जाल जग में फैले
फिर नवल रुधिर,—पल्लव लाली!
प्राणों की मर्मर से मुखरित
जीवन की मांसल हरियाली!
मंजरित विश्व में यौवन के
जग कर जग का पिक, मतवाली
निज अमर प्रणय-स्वर मदिरा से
भर दे फिर नव युग की प्याली!

(फरवरी '३४)

२

गा, कोकिल, बरसा पावक कण!
नष्ट भ्रष्ट हो जीर्ण पुरातन,
ध्वंस भ्रंश जग के जड़ बंधन!
पावक पग धर आवे नूतन,
हो पल्लवित नवल मानवपन!

गा, कोकिल, भर स्वर में कम्पन!
झरें जाति-कुल वर्ण-पर्ण घन,
अंध नीड़ से रूढ़ि रीति छन,
व्यक्ति राष्ट्र गत राग-द्वेष रण,
झरें, मरें विस्मृति में तत्क्षण!

गा, कोकिल, गा,—कर मत चिंतन!
नवल रुधिर से भर पल्लव-तन,
नवल स्नेह सौरभ से यौवन,
कर मंजरित नव्य जग जीवन,
गूंज उठें पी-पी मधु सब जन!

गा, कोकिल, नव गान कर सृजन !
रच मानव के हित नूतन मन,
वाणी, वेश, भाव नव शोभन,
स्नेह सुहृदता हो मानस धन,
करें मनुज नव जीवन यापन !
गा, कोकिल, संदेश सनातन !
मानव दिव्य स्फुलिंग चिरंतन,
वह न देह का नश्वर रज कण !
देश काल हैं उसे न बंधन,
मानव का परिचय मानवपन !
कोकिल, गा, मुकुलित हों दिशि-क्षण !
(एप्रिल '३५)

३

झर पड़ता जीवन डाली से
मैं पतझड़ का सा जीर्ण पात !—
केवल, केवल जग-कानन में
लाने फिर से मधु का प्रभात !
मधु का प्रभात !—लद-लद जातीं
वैभव से जग की डाल डाल,
कलि-कलि, किसलय में जल उठती
सुंदरता की स्वर्गीय ज्वाल !
नव मधु प्रभात !—गूँजते मधुर
उर उर में नव आशाभिलाष,
सुख-सौरभ, जीवन-कलरव से
भर जाता सूना महाकाश !
आ मधु प्रभात !—जग के तम में
भरती चेतना अमर प्रकाश,
मुरझाये मानस मुकुलों में
पाती नव मानवता विकास !
मधु प्रात ! मुक्त नभ में सस्मित
नाचती धरित्री मुक्त पाश !
रवि शशि केवल साक्षी होते
अविराम प्रेम करता प्रकाश !
मैं झरता जीवन डाली से
साह्लाद, शिशिर का शीर्ण पात !
फिर से जगती के कानन में
आ जाता नव मधु का प्रभात !
(एप्रिल '३५)

४

चंचल पग दीपशिखा के धर
गृह, मग, वन में आया वसन्त !

सुलगा फाल्गुन का सूनापन
सौंदर्य शिखाओं में अनंत।
सौरभ की शीतल ज्वाला से
फैला उर उर में मधुर दाह
आया वसंत, भर पृथ्वी पर
स्वर्गिक सुंदरता का प्रवाह।
पल्लव पल्लव में नवल रुधिर
पत्रों में मांसल रंग खिला,
आया नीली पीली लौ से
पुष्पों के चित्रित दीप जला।
अधरों की लाली से चुपके
कोमल गुलाब के गाल लजा,
आया, पंखड़ियों को काले
पीले धब्बों से सहज सजा।
कलि के पलकों में मिलन स्वप्न,
अलि के अंतर में प्रणय गान
लेकर आया, प्रेमी वसन्त,—
आकुल जड़ चेतन स्नेह प्राण।
काली कोकिल!—सुलगा उर में
स्वरमयी वेदना का अंगार,
आया वसंत, घोषित दिगंत
करती भर पावक की पुकार।
आ, प्रिये! निखिल ये रूप रंग
रिलमिल अंतर में स्वर अनंत
रचते सजीव जो प्रणय मूर्ति
उसकी छाया, आया वसंत।
(एप्रिल '३५)

५

विद्रुम औ' मरकत की छाया,
सोने चाँदी का सूर्यातप,
हिम परिमल की रेशमी वायु,
शतरत्न छाय, खग चित्रित नभ।
पतझड़ के कृश, पीले तन पर
पल्लवित तरुण लावण्य लोक,
शीतल हरीतिमा की ज्वाला
दिशि दिशि फैली कोमलालोक।
आह्लाद प्रेम औ' यौवन का
नव स्वर्ग, सद्य सौंदर्य सृष्टि,
मंजरित प्रकृति, मुकुलित दिगन्त
कूजन गुंजन की व्योम वृष्टि।

—लो, चित्र शलभ-सी, पंख खोल
उड़ने को अब कुसुमित घाटी,—
यह है अल्मोड़े का वसंत,
खिल पड़ी निखिल पर्वत पाटी !
(मई '३५)

६

जगती के जन-पथ, कानन में
तुम गाओ विहग ! अनादि गान,
चिर शून्य शिशिर पीड़ित जग में
निज अमर स्वरों से भरो प्राण !
जल, स्थल, समीर, नभ में व्यापक
छेड़ो उर की पावक पुकार,
बहु शाखाओं की जगती में
बरसा जीवन संगीत प्यार !
तुम कहो, गीत खग ! डालों में
जो जाग पड़ी कलियाँ अजान,
वह विटपों का श्रम-पुण्य नहीं,
मधुऋतु का मुकुल, अनंत दान !
जो सोये स्वप्नों के तम में
वे जागेंगे—यह सत्य बात,
जो देख चुके जीवन निशीथ
वे देखेंगे जीवन प्रभात !
(मई '३५)

७

वे चहक रहीं कुंजों में चंचल सुंदर
चिड़ियाँ, उर का सुख बरस रहा स्वर स्वर पर !
पत्रों पुष्पों से टपक रहा स्वर्णातप
प्रात समीर के मृदु स्पर्शों से कँप कँप !
शत कुसुमों में हँस रहा कुंज उडु उज्ज्वल,
लगता सारा जग सद्य स्मित ज्यों शतदल !
है पूर्ण प्राकृतिक सत्य किंतु मानव जग !
क्यों म्लान तुम्हारे कुंज, कुसुम, आतप, खग ?
जो एक, असीम अखण्ड, मधुर व्यापकता
खो गयी तुम्हारी वह जीवन सार्थकता !
लगती विश्री औ' विकृत आज मानवाकृति,
एकत्व शून्य अब विश्व मानवी संस्कृति !
(मई '३५)

८

वे डूब गये—सब डूब गये
दुर्दम, उदग्र शिर अद्रि शिखर !

स्वप्नस्थ हुए स्वर्णातप में
सो, स्वर्ण स्वर्ण अब सब भूधर !
पल में कोमल पड़, पिघल उठे
सुंदर बन, जड़, निर्मम प्रस्तर,
सब मन्त्र मुग्ध हो, जड़ित हुए,
लहरों-से चित्रित लहरों पर !

मानव जग में गिरि कारा सी
गत युग की संस्कृतियाँ दुर्धर
बन्दी की है मानवता को
रच देश जाति की भित्ति अमर !
ये डूबेंगी—सब डूबेंगी
पा नव मानवता का विकास
हँस देगा स्वर्णिम वज्र-लौह
छू मानव आत्मा का प्रकाश !

९

(एप्रिल '३६)

तारों का नभ ! तारों का नभ !
सुंदर, समृद्ध आदर्श सृष्टि !
जग के अनादि पथ दर्शक वे,
मानव पर उनकी लगी दृष्टि !
वे देव बाल भू को घेरे
भावी भव की कर रहे पुष्टि !
सेवा की कलियों-सा अमृत
यह भावी जग जीवन विकास !
मानव का विश्व मिलन पवित्र,
चेतन आत्माओं का प्रकाश !

तारों का नभ ! तारों का नभ !
अमित अपूर्व आदर्श सृष्टि !
शाश्वत शोभा का खिला स्वर्ग,
अब होने को है पुष्प वृष्टि !
चाँदनी चेतना की अमन्द
अग जग को छू दे रही तुष्टि !

१०

(अक्टूबर '३५)

जीवन का फल, जीवन का फल !
यह चिर यौवन श्री से मांसल !
इसके रस में आनन्द भरा,
इसका सौन्दर्य सदैव हरा,
पा दुख सुख का छाया प्रकाश
परिपक्व हुआ इसका विकास

इसकी मिठास है मधुर प्रेम,
औ' अमर बीज चिर विश्व क्षेम।
जीवन का फल, जीवन का फल।
इसका रस लो,—हो जन्म सफल।
तीखे, चमकीले दाँत चुभा
चाखो इसको, क्यों रहे लुभा?
निर्भीक बनो, साहसी, शक्त,
जीवन प्रेमी,—मत हो विरक्त।
सुंदर इच्छा की धरो आग,
प्रिय जगती पर दयितानुराग।
(मई '३५)

११

बढ़ो अभय, विश्वास चरण धर।
सोचो वृथा न भव भय कातर।
ज्वाला के विश्वास के चरण,
जीवन मरण समुद्र सन्तरण,
सुख दुख की लहरों के शिर पर
पग धर पार करो भव सागर।
बढ़ो, बढ़ो विश्वास चरण धर।
क्या जीवन? क्यों? क्या जग कारण?
पाप पुण्य, सुख दुख का वारण?
व्यर्थ तर्क! यह भव लोकोत्तर
बढ़ती लहर, बुद्धि से दुस्तर।
पार करो विश्वास चरण धर।
जीवन पथ तमिसमय निर्जन
हरती भव-तम एक लघु किरण
यदि विश्वास हृदय में अणु भर
देंगे पथ तुमको गिरि सागर
बढ़ो, अमर विश्वास चरण धर।
(मई '३५)

१२

गर्जन कर मानव केसरि!
अमस्पृह गर्जन,—
जग जावे जग में फिर से
सोया मानवपन।
काँप उठे मानस की अघ
गुहाओं का तम,
अक्षम क्षमताशील बनें,
जावें दुविधा, भ्रम।

निर्भय जग जीवन कानन में
मर्मर है विचरण
कांप, मरें गत सब मनुजता के
मर्कट गण !
प्रखर नखर नव जीवन की
लालसा गड़ा कर
छिन्न भिन्न कर दे गत युग के
शव को, दुर्धर !
गर्जन कर, मानव केसरि !
प्राणप्रद गर्जन,
जागें नव युग के खग,
बरसा जीवन कूजन !
(अक्टूबर '३५)

१३

बाँसों का झुरमुट—
सन्ध्या का झुटपुट—
हैं चहक रहीं चिड़ियाँ
टी - वी - टी—टुट टुट !
वे ढाल ढाल कर उर अपने
हैं बरसा रहीं मधुर सपने
श्रम जर्जर विधुर चराचर पर,
गा गीत स्नेह वेदना सने !
ये नाप रहे निज घर का मग
कुछ श्रमजीवी धर डगमग डग,
भारी है जीवन ! भारी पग !
आ, गा गा शत शत सहृदय खग,
सन्ध्या बिखरा निज स्वर्ण सुभग
औ' गन्ध पवन झल मन्द व्यजन
भर रहे नया इनमें जीवन,
ढीली हैं जिनकी रग रग !
—यह लौकिक औ' प्राकृतिक कला,
यह काव्य अलौकिक सदा चला
आ रहा,—सृष्टि के साथ पला !
× × ×
गा सके खगों - सा मेरा कवि,
विश्री जग की सन्ध्या की छवि !
गा सके खगों सा मेरा कवि,
फिर हो प्रभात,—फिर आवे रवि !
(अक्टूबर '३५)

जग जीवन में जो चिर महान
सौंदर्य पूर्ण औ' सत्य प्राण,
मैं उसका प्रेमी बनूं, नाथ!
जिसमें मानव हित हो समान!

जिससे जीवन में मिले शक्ति,
छूटें भय संशय, अंध भक्ति,
मैं वह प्रकाश बन सकूं, नाथ!
मिल जावें जिसमें अखिल व्यक्ति!

दिशि दिशि में प्रेम प्रभा प्रसार,
हर भेद भाव का अंधकार,
मैं खोल सकूं चिर मुंदे नाथ!
मानव के उर के स्वर्ग द्वार!

पाकर प्रभु! तुमसे अमर दान
करने मानव का परित्राण,
ला सकूं विश्व में एक बार
फिर से नव जीवन का विहान!

(मई '३५)

१५

जो दीन हीन, पीड़ित, निर्बल,
मैं हूं उनका जीवन सम्बल!
जो मोह छिन्न, जग में विभक्त,
वे मुझमें मिलें, बनें सशक्त!

जो अहंपूर्ण, वे अंध कूप,
जो नम्र उठें बन कीर्ति स्तूप!
जो छिन्न भिन्न जल कण प्रसार,
जो मिले, बने सागर अपार!
जग नाम-रूपमय अंधकार,
मैं चिर प्रकाश मैं मुक्ति द्वार!

(मई '३५)

१६

शत बाहु पाद, शत नाम रूप,
शत मन, इच्छा वाणी, विचार,
शत राग द्वेष, शत क्षुधा काम,—
यह जग जीवन का अंधकार!

शत मिथ्या वाद विवाद, तर्क,
शत रूढ़ि नीति, शत धर्म द्वार,
शिक्षा संस्कृति, संस्था, समाज,—
यह पशु मानव का अहंकार!

यह दिशि पल का तम, इन्द्र जाल,
बहु भेद जन्य, भव क्लेश भार,
प्रभु ! बाँध एकता में अपनी
भर दें इसमें अमरत्व सार !

(मई '३५)

१७

ए मिट्टी के ढेले अजान !
तू जड़ अथवा चेतना - प्राण ?
क्या जड़ता - चेतनता समान
निर्गुण, निसंग, निस्पृह, वितान ?

कितने तृण, पौधे, मुकुल, सुमन,
संसृति के रूप रंग मोहन,
ढीले कर तेरे जड़ बंधन
आये औ' गये ! (यही क्या मन ?)

अब हुआ स्वप्न मधु का जीवन,
विस्मृत सुख दुख, स्मृति के बंधन !
खुल गया शून्यमय अवगुंठन
अज्ञेय सत्य तू जड़चेतन !

(जून '३५)

१८

खो गयी स्वर्ण की स्वर्ग किरण
छू जग - जीवन का अंधकार,
मानस के सूने - से तम को
दिशि पल के स्वप्नों में सँवार !

गुँथ गये अजान तिमिर प्रकाश
दे-दे जग - जीवन को विकास
बहु रूप - रंग - रेखाओं में
भर विरह मिलन का अश्रु हास !

धुन जग का दुर्गम अंधकार
चुन नाम रूप का अमृत सार
मैं खोज रहा खोया प्रकाश
सुलझा जीवन के तार - तार !

खो गयी स्वर्ग की अमर किरण
कुसुमित कर जग का अंधकार,
जान अब भूल पड़ा निज को
मैं उसको फिर इसको निहार !

(एप्रिल ३६)

१९

सुंदरता का आलोक स्रोत
है फूट पडा मेरे मन मे,
जिससे नव जीवन का प्रभात
होगा फिर जग के आँगन मे।

मेरा स्वर होगा जग का स्वर,
मेरे विचार जग के विचार,
मेरे मानस का स्वर्ग-लोक
उतरेगा भू पर नयी बार।

सुंदरता का ससार नवल
अकुरित हुआ मेरे मन मे,
जिसकी नव मासल हरीतिमा
फैलेगी जग के गृह-वन मे।

होगा पल्लवित रुधिर मेरा
बन जग के जीवन का वसत,
मेरा मन होगा जग का मन,
औ' मैं हूँगा जग का अनत।

मैं सृष्टि एक रच रहा नवल
भावी मानव के हित भीतर,
सौदर्य, स्नेह, उल्लास मुझे
मिल सका नही जग मे बाहर।

(एप्रिल '३६)

२०

नव हे नव हे,
नव-नव सुषमा मे मण्डित हो
चिर पुराण भव हे!
नव हे!

नव ऊषा सध्या अभिनदित
नव-नव ऋतुमयि भू, शशि शोभित,
विस्मित हो देखूँ मैं अतुलित
जीवन वैभव हे।
नव हे!

नव शैशव यौवन हिल्लोलित
जन्म मरण मे हो जग दोलित,
नव इच्छाओ का हो उर मे
आकुल पिक रव हे!
नव हे!

बाँधे रहें मुक्ति के बधन
हो सीमा असीम-अवलम्बन,

द्वार खड़े हो नित नव सुख दुख,
विजय पराभव है।
नव है।
अपनी इच्छा से निर्मित जग,
कल्पित सुख दुख के अस्थिर पग,
मेरे जीवन से हो जीवित
यह जग का शव है।
नव है।

(जुलाई '३४)

२१

बाधोऽ, छवि के नव ब धन बाधो।
नव नव आशाऽकाक्षाओ मे
तन मन जीवन बाँधो।
छवि के नव—
भाव रूप म, गीत स्वरो म,
ग ध कुसुम मे, स्मिति अधरो म
जीवन की तम की वणी मे
निज प्रकाश कण बाँधो।
छवि के नव—
सुख से दुख औ' प्रलय से सजन,
चिर आत्मा से अस्थिर रज तन
महा मरण को जग जीवन का
दे आलिगन, बाँधो।
छवि के नव—
बाधो जलनिधि लघु जलकण मे,
महाकाल को कवलित क्षण मे,
फिर फिर अपनेपन को मुझमे
चिर जीवन घन। बाँधो
छवि के नव—

(जुलाई '३४)

२२

मजरित आम्र - वन - छाया मे
हम प्रिये मिल थ प्रथम बार,
ऊपर हरीतिमा नभ गुजित,
नीचे च द्रातप छना स्फार।
तुम मुग्धा थी, अति भाव प्रवण,
उकसे थे अँबियो - से उरोज,

चचल, प्रगल्भ, हँसमुख, उदार,
मैं सलज,—तुम्हें था रहा खोज।

छनती थी ज्योत्स्ना शशि मुख पर,
मैं करता था मुख सुधा पान,—
कूकी थी कोकिल, हिले मुकुल,
भर गये गध से मुग्ध प्राण।

तुमने अधरो पर धरे अधर,
मैंने कोमल वपु भरा गोद,
था आत्म समर्पण सरल, मधुर,
मिल गये सहज मारुतामोद।

मजरित आम्र द्रुम के नीचे
हम प्रिये, मिले थे प्रथम बार,
मधु के कर मे था प्रणय बाण,
पिक के उर मे पावक पुकार।
(मई '३५)

२३

वह विजन चाँदनी की घाटी
छायी मृदु वन तरु गध जहाँ
नीबू आडू के मुकुलो के
मद से मलयानिल लदा वहाँ।

सौरभ श्लथ हो जाते तन मन,
बिछते झर झर मृदु सुमन शयन,
जिन पर छन कम्पित पत्रो से,
लिखती कुछ ज्योत्स्ना जहाँ-तहाँ।

आ कोकिल का कोमल कूजन
उकसाता आकुल उर कम्पन,
यौवन का री वह मधुर स्वप्न,
जीवन बाधाएँ वहाँ कहाँ?
(मई, '३५)

२४

छाया?

वह लेटी है तरु छाया मे,
स व्या विहार को आया मैं।

मृदु बाह मोड उपधान किये,
ज्यो प्रेम लालसा पान किये,
उभरे उरोज, कुतल खोले,
एकाकिनि, कोई क्या बोले?

वह सु दर है, साँवली सही,
तरणी है—हो षोडशी रही
विवसना, लता सी त वगिनि,
निजन म क्षण भर की सगिनि ।

वह जागी है अथवा सोयी ?
मूछित या स्वप्नमूढ कोई ?
नारी कि अप्सरा या माया ?
अथवा केवल तरु की छाया ?

(एप्रिल, '३५)

२५

छाया

खोलो, मुख स घूघट खोलो,
हे चिर अवगुण्ठनमयि बोलो ।
क्या तुम केवल चिर अवगुण्ठन,
अथवा भीतर जीवन कम्पन ?

कल्पना मात्र मृदु देह लता
पा ऊध्व ब्रह्म, माया विनता ।
है स्पृश्य स्पश का नही पता,
है दश्य, दृष्टि पर सके बता ।

पट पर पट केवल तम अपार,
पट पर पट खुले, न मिला पार ।
सखि हटा अपरिचय अ धकार
खोलो रहस्य के मम द्वार ।

मैं हार गया तह छील छील,
आखो से प्रिय छवि लील लील,
मैं हूँ या तुम ? यह कैसा छल !
या हम दोनो, दोनो के बल ?

तुमम कवि का मन क्या समा,
तुम कवि के मन की हो सुषमा,
हम दो भी है या नित्य एक ?
तब कोई किसको सके देख ?

ओ मौन चिर तन तम प्रकाश
चिर अवचनीय, आश्चय पाश ।
तुम अतल गत, अविगत, अकूल,
फली अन त म विना मूल ।

अज्ञेय गुहा, अग जग छायी,
माया मोहिनि, सँग सँग आयी ।
तुम कुहुकिनि, जग की मोह निशा
मैं रहूँ सत्य, तुम रहो मृषा ।

(एप्रिल, '३६)

२६

शुक्र !

द्वाभा के एकाकी प्रेमी,
नीरव दिगंत के शब्द मौन,
रवि के जाते, स्थल पर आते
कहते तुम तम से चमक—कौन ?

संध्या के सोने के नभ पर
तुम उज्ज्वल हीरक सदृश जड़े,
उदयाचल पर दीखते प्रात
अँगूठे के बल हुए खड़े !

अब सूनी दिशि औ' श्रान्त वायु,
कुम्हलायी पंकज कली सृष्टि,
तुम शान्त विश्व पर करुण प्रभा
अविराम कर रहे प्रेम वृष्टि !
ओ छोटे शशि, चाँदी के उडु !
जब जब फैले तम का विनाश,
तुम दिव्य दूत से उतर शीघ्र
बरसाओ निज स्वर्गिक प्रकाश !

(मई, '३५)

२७

खद्योत

अँधियाली घाटी में सहसा
हरित स्फुलिंग सदृश फूटा वह !
वह उड़ता दीपक निशीथ का —
तारा-सा आकर टूटा वह !

जीवन के घन अंधकार में
मानव आत्मा का प्रकाश कण
जग सहसा, ज्योतित कर देता
मानस के चिर गुह्य कुंज वन !

(मई, '३८)

२८

सृष्टि

मिट्टी का गहरा अंधकार
डूबा है उसमें एक बीज,
वह खो न गया, मिट्टी न बना,
कोदो, सरसों से क्षुद्र चीज !

उस छोटे उर म छिपे हुए
है डाल पात औ' स्कध मूल
गहरी हरीतिमा की ससति,
बहु रूप रग फल और फूल ।
वह है मुट्ठी मे बद किये
वट के पादप का महाकार,
ससार एक । आश्चर्य एक ।
वह एक बूद, सागर अपार ।

बदी उसम जीवन अकुर
जो तोड निखिल जग के बधन
पाने को है निज सत्व, मुक्ति ।
जड निद्रा से जग, बन चेतन ।

आ, भेद न सका सृजन रहस्य
कोई भी । वह जो क्षुद्र पोत
उसमे अनन्त का है निवास,
वह जग जीवन से ओतप्रोत ।
मिट्टी का गहरा अधकार,
सोया है उसमे एक बीज
उसका प्रकाश उसके भीतर,
वह अमर पुत्र । वह तुच्छ बीज ?

(मई, '३५)

२९

ताज

हाय । मृत्यु का ऐसा अमर, अपार्थिव पूजन ?
जब विषण्ण निर्जीव पडा हो जग का जीवन ।
स्फटिक सौध म हो शृगार मरण का शोभन,
नग्न, क्षुधातुर, वास विहीन रह जीवित जन ?
मानव । ऐसी भी विरक्ति क्या जीवन के प्रति ?
आत्मा का अपमान, प्रेत औ' छाया स रति ।।
प्रेम अर्चना यही, करें हम मरण को वरण ?
स्थापित कर ककाल, भरें जीवन का प्रागण ?
शव को दें हम रूप, रग, आदर मानव का ?
मानव को हम कुत्सित चित्र बना दें शव का ?
गत युग के मृत आदर्शों के ताज मनोहर
मानव के मोहाध हृदय म किये हुए घर ।
भूल गये हम जीवन का सदेश अनश्वर
मृतको के है मतक, जीवितो का है ईश्वर ।

(अक्टूबर, '३५)

३०

मानव

सुदर हैं विहग, सुमन सुदर,
मानव ! तुम सवस सुदरतम,
निर्मित सबकी तिल सुषमा से
तुम निखिल सष्टि मे चिर निरुपम !
यौवन ज्वाला से वेष्टित तन,
मृदु त्वच, सौदय प्ररोह अग,
न्योछावर जिन पर निखिल प्रकृति,
छाया प्रकाश के रूप रग !

धावित कृश नील शिराओं म
मदिरा से मादक रुधिर धार
आँखें हैं दो लावण्य लोक,
स्वर मे निसग सगीत सार !
पथु उर उरोज, ज्यो सर, सरोज,
दढ बाहु प्रलम्ब प्रेम बधन,
पीनोरु स्कध जीवन तरु के,
कर पद, अगुलि, नख शिख शोभन !

यौवन की मासल स्वस्थ गध,
नव युग्मो का जीवनोत्सग !
आह्लाद अखिल, सौदय अखिल,
औ प्रथम प्रेम का मधुर स्वग !
आशाऽभिलाष, उच्चाकाक्षा,
उद्यम अजस्र, विघ्नो पर जय,
विश्वास, असदसत का विवेक,
दढ श्रद्धा, सत्य प्रेम अक्षय !
मानसी भूतिया ये अमन्द,
सहृदयता, त्याग, सहानुभूति,
जो स्तम्भ सभ्यता के पार्थिव,
सस्कृति स्वर्गीय,—स्वभाव पूर्ति !

मानव का मानव पर प्रत्यय,
परिचय, मानवता का विकास,
विज्ञान ज्ञान का अन्वेषण,
सब एक, एक सब मे प्रकाश !
प्रभु का अनन्त वरदान तुम्हे
उपभोग करो प्रतिक्षण नव नव,
क्या कमी तुम्हे है त्रिभुवन म
यदि बन रह सको तुम मानव !

(एप्रिल, '३५)

३१

तितली

नीली, पीली औ चटकीली
पंखों की प्रिय पँखड़ियाँ खोल
प्रिय तितली! फूल सी ही फूली
तुम किस सुख में हो रही डोल?

चाँदी सा फैला है प्रकाश,
चंचल अंचल-सा मलयानिल
है दमक रही दोपहरी में
गिरि घाटी सौ रंगों में खिल!

तुम मधु की कुसुमित अप्सरि-सी
उड़ उड़ फूलों को बरसाती,
शत इन्द्रचाप रच रच प्रतिपल
किस मौन गीति लय में गाती?

तुमने यह कुसुम विहग लिबास
क्या अपने सुख में स्वयं बुना?
छाया प्रकाश से या जग के
रेशमी परों का रंग चुना?
क्या बाहर से आया, रंगिणि!
उर का यह आतप, यह हुलास?
या फूलों से ली अनिल-कुसुम!
तुमने मन के मधु की मिठास?

चाँदी का चमकीला आतप,
हिम परिमल चंचल मलयानिल,
है दमक रही गिरि की घाटी
शत रत्न-छाय रंगों में खिल!
'—चित्रिणि! इस सुख का स्रोत कहाँ
जो करता नित सौन्दर्य सृजन?'
'वह स्वर्ग छिपा उर के भीतर—
क्या कहती यही, सुमन-चेतन?'

(मई, '३५)

३२

संध्या

कहो, तुम रूपसि कौन?
व्योम से उतर रही चुपचाप
छिपी निज छाया छवि में आप
सुनहला फैला केश कलाप
मधुर, मंथर, मृदु, मौन!

मूद अधरों में मधुपालाप,
पलक में निमिष, पदों में चाप,
भाव संकुल बंकिम, भ्रू चाप,
मौन, केवल तुम मौन!

ग्रीव तिर्यक, चम्पक द्युति गात,
नयन मुकुलित, नत मुख जलजात,
देह छवि छाया में दिन-रात,
कहाँ रहती तुम कौन!

अनिल पुलकित स्वर्णांचल लोल,
मधुर नूपुर ध्वनि खग कुल रोल,
सीप से जलदों के पर खोल,
उड़ रही नभ में मौन!

लाज से अरुण अरुण सुकपोल,
मदिर अधरों की सुरा अमोल,—
बने पावस घन स्वर्ण हिंदोल,
कहो, एकाकिनि, कौन?
मधुर, मधुर तुम मौन!

(सितम्बर '३०)

३३

बापू के प्रति

तुम मांसहीन, तुम रक्तहीन, हे अस्थिशेष! तुम अस्थिहीन,
तुम शुद्ध बुद्ध आत्मा केवल, हे चिर पुराण, हे चिर नवीन!
तुम पूर्ण इकाई जीवन की, जिसमें असार भव शून्य लीन
आधार अमर, होगी जिस पर भावी की संस्कृति समासीन!

तुम मांस, तुम्हीं हो रक्त अस्थि —निर्मित जिनसे नव युग का तन,
तुम धन्य! तुम्हारा निःस्व त्याग हो विश्व भोग का वर साधन,
इस भस्म काम तन की रज से जग पूर्णकाम नव जग जीवन
बीनेगा सत्य अहिंसा के ताने बानों से मानवपन!

सदियों का दैन्य तमिस्र तूम, धुन तुमने, कात प्रकाश सूत,
हे नग्न! नग्न पशुता ढँक दी बुन नव संस्कृत मनुजत्व पूत!
जग पीड़ित छूतों से प्रभूत, छू अमृत स्पर्श से, हे अछूत!
तुमने पावन कर, मुक्त किये मृत संस्कृतियों के विकृत भूत!

सुख भोग खोजने आते सब, आये तुम करने सत्य खोज,
जग की मिट्टी के पुतले जन, तुम आत्मा के, मन के मनोज!
जड़ता, हिंसा, स्पर्धा में भर चेतना, अहिंसा, नम्र ओज,
पशुता का पंकज बना दिया तुमने मानवता का सरोज!

पशुबल की कारा से जग को दिखलाई आत्मा की विमुक्ति,
विद्वेष, घृणा से लड़ने को सिखलाई दुर्जय प्रेम युक्ति,

वर श्रमप्रसूति स की कृतार्थ तुमने विचार परिणीत उक्ति,
विश्वानुरक्त हे अनासक्त, सवस्व त्याग को बना मुक्ति ।

सहयोग सिखा शासित जन का शासन का दुवह हरा भार,
होकर निरस्त्र, सत्याग्रह स रोका मिथ्या का बल प्रहार,
बहु भेद विग्रहों मे खोयी ली जीण जाति क्षय स उबार,
तुमने प्रकाश को कह प्रकाश, औ अधकार को अधकार ।

उर के चरखे म कात सूक्ष्म युग युग का विषय जनित विषाद,
गुजित कर दिया गगन जग का भर तुमने आत्मा का निनाद ।
रँग रँग खद्दर के सूत्रों म नव जीवन आशा, स्पृहा, ह्लाद
मानवी कला के सूत्रधार, हर लिया य त्र कौशल प्रवाद ।

जड़वाद जजरित जग म तुम अवतरित हुए आत्मा महान्
य त्राभिभूत युग म करने मानव जीवन का परित्राण
बहु छाया बिम्बों म खोया, पाने व्यक्तित्व प्रकाशवान
फिर रक्त मास प्रतिमाओं म फूकने सत्य स अमर प्राण ।

ससार छोड़कर ग्रहण किया नर जीवन का परमाथ सार,
अपवाद बने, मानवता के ध्रुव नियमो का करने प्रचार,
हो सावजनिकता जयी, अजित ! तुमने निजत्व निज दिया हार,
लौकिकता को जीवित रखने तुम हुए अलौकिक, हे उदार ।

मगल शशि लोलुप मानव थे विस्मित ब्रह्माण्ड परिधि विलोक,
तुम केन्द्र खोजने आये तब सब म व्यापक, गत राग शोक
पशु पक्षी पुष्पो स प्रेरित उद्दाम-काम जन क्राति रोक
जीवन इच्छा को आत्मा के वश म रख, शासित किय लोक ।

था व्याप्त दिशावधि ध्वात भ्रात इतिहास विश्व उद्भव प्रमाण,
बहु हेतु, बुद्धि, जड वस्तुवाद मानव सस्कृति के बन प्राण,
थ राष्ट्र, अथ, जन, साम्यवाद छल सभ्य जगत के शिष्ट मान,
भू पर रहते थे मनुज नही, बहु रूढि रीति प्रेतो समान—

तुम विश्व मच पर हुए उदित बन जग जीवन के सूत्रधार,
पट पर पट उठा दिये मन से, कर नर चरित्र का नवोद्धार,
आत्मा को विषयाधार बना दिशि पल के दृश्यो को सँवार
गा गा— एकोह बहु स्याम हर लिये भेद भव भीति भार ।

एकता इष्ट निर्देश किया, जग खोज रहा था जब समता
अन्तर शासन चिर राम राज्य, औ' बाह्य, आत्महन अक्षमता
हो कम निरत जन राग विरत रति विरति व्यतिक्रम भ्रम ममता
प्रतिक्रिया क्रिया साधन अवयव, है सत्य सिद्ध, गति यति क्षमता।

ये राज्य, प्रजा, जन, साम्य-तन्त्र शासन चालन के कृतक यान,
मानस, मानुषी, विकास शास्त्र है तुलनात्मक, सापेक्ष ज्ञान,

भौतिक विज्ञानों की प्रसूति, जीवन उपकरण चयन प्रधान,
मथ सूक्ष्म स्थूल जग, बोले तुम—मानव मानवता का विधान।

साम्राज्यवाद था कंस, बंदिनी मानवता पशुबलाक्रांत,
श्रृंखला दासता, प्रहरी बहु निर्मम शासन पद गर्वित भ्रांत,
कारागृह में दे दिव्य जन्म मानव आत्मा को मुक्त, कांत,
जन शोषण की बढ़ती यमुना तुमने की नत, पद प्रणत, शांत।

कारा थी संस्कृति विगत, भित्ति बहु धर्म जाति गत रूप-नाम,
बंदी जग जीवन, भू विभक्त, विज्ञान मूढ़ जन प्रकृति-काम,
आये तुम मुक्त पुरुष, कहने—मिथ्या जड़ बंधन, सत्य राम,
नानृतं जयति सत्यं, मा भैः, जय ज्ञान ज्योति, तुमको प्रणाम।

(एप्रिल '३६)

युगान्तर

१

श्रद्धा के फूल

अंतर्धान हुआ फिर देव विचर धरती पर,
स्वर्ग रुधिर से मर्त्य लोक की रज को रँग कर।
टूट गया तारा, अंतिम आभा का दे वर,
जीर्ण जाति मन के खँडहर का अंधकार हर।
अंतर्मुख हो गयी चेतना दिव्य अनामय
मानस लहरों पर शतदल सी हँस ज्योतिर्मय।
मनुजों में मिल गया आज मनुजों का मानव
चिर पुराण को बना आत्मबल से चिर अभिनव।

आओ, हम उसको श्रद्धांजलि दें देवोचित,
जीवन सुंदरता का घट मृत को कर अर्पित,
मंगलप्रद हो देव मृत्यु यह हृदय विदारक
नव भारत हो बापू का चिर जीवित स्मारक।
बापू की चेतना बने पिक का नव कूजन
बापू की चेतना वसंत बखेरे नूतन।

२

हाय हिमालय ही पल में हो गया तिरोहित
ज्योतिर्मय जल से जन धरणी को कर प्लावित।
हा हिमाद्रि ही तो उठ गया धरा से निश्चित
रजत वाष्प सा अंतनभ में हो अंतर्हित।
आत्मा का वह शिखर, चेतना में लय क्षण में,
व्याप्त हो गया सूक्ष्म चाँदनी सा जन मन में।
मानवता का मेरु रजत किरणों में मण्डित,
अभी अभी चलता था जो जग को कर विस्मित,
लुप्त हो गया लोक चेतना के क्षत पट पर
अपनी स्वर्गिक स्मृति की शाश्वत छाप छोड़कर।

आओ, उसकी अक्षय स्मृति को नींव बनायें,
उस पर संस्कृति का लोकोत्तर भवन उठायें।
स्वर्ण शुभ्र धर सत्य कलश स्वर्णोच्च शिखर पर
विश्व प्रेम में खोल अहिंसा के गवाक्ष वर।

३

आज प्रार्थना से झरते तृण तरु भर मर्मर,
सिमटा रहा चपल कूलों को निस्तल सागर।
नम्र नीलिमा में नीरव, नभ करता चिन्तन,
श्वास रोककर ध्यान मग्न-सा हुआ समीरण।
क्या क्षण भंगुर तन के हो जाने से ओझल
सूनेपन में समा गया यह सारा भूतल?
नाम रूप की सीमाओं से मोह मुक्त मन
था अरूप की ओर बढ़ाता स्वप्न के चरण?

शांत नहीं पर द्रवीभूत हो दुख का बादल
बरस रहा अब नव्य चेतना में हिम उज्ज्वल,
बापू के आशीर्वाद-सा ही अन्तस्तल
सहसा है भर गया सौम्य आभा से शीतल।
खादी के अनुरूप जीवन सौंदर्य पर सरल
भावी के सतरँग सपन कँप उठते झलमल।

४

हाय आँसुओं के आँचल में ढँक नत आनन
तू विषाद की शिला बन गयी आज अचेतन
ओ गांधी की धरे, नहीं क्या तू अमराय-व्रण?
कौन शस्त्र से भेद सका तेरा अच्छेद्य तन?
तू अमरों की जननी, मर्त्य भू में भी आकर
रही स्वर्ग से परिणीता, तप पूत निरंतर।
मंगल कलशों से तेरे वक्षोजों में घन
लहराता नित रहा चेतना का चिर यौवन।
कीर्ति स्तम्भ से उठ तेरे कर अम्बर पट पर
अंकित करते रहे अमिट ज्योतिर्मय अक्षर।

उठ, ओ गीता के अक्षय यौवन की प्रतिमा,
समा सकी कब धरा स्वर्ग में तेरी महिमा।
देख, और भी उच्च हुआ अब भाल हिम शिखर
बाँध रहा तेरे अंचल से भू को सागर।

५

हिम किरीटिनी मौन आज तुम शीश झुकाये
सौ वसंत हों कोमल अंगों पर कुम्हलाये।
वह जो गौरव शृंग धरा का था स्वर्गोज्ज्वल,
टूट गया वह?—हुआ अमरता में निज ओझल।
लो, जीवन सौंदर्य ज्वार पर आता गांधी
उसने फिर जन सागर में आभा पुल बाँधी।

खोलो, मा, फिर बादल-सी निज कबरी श्यामल,
जन मन के शिखरों पर चमकें विद्युत के पल।
हृदय हार सुरधुनी तुम्हारी जीवन चचल,
स्वर्ण श्रोणि पर शीश धरे सोया विंध्याचल।
गज रदनो से शुभ्र तुम्हारे जघनो मे घन
प्राणो का उन्मादन जीवन करता नर्तन।

तुम अनन्त यौवना धरा हो, स्वर्गाकाक्षित,
जन को जीवन शोभा दो भू हो मनुजोचित।

६

देख रहे क्या देव, खड़े स्वर्गोच्च शिखर पर
लहराता नव भारत का जन जीवन सागर?
द्रवित हो रहा जाति मनस का अधकार घन
नव मनुष्यता के प्रभात मे स्वर्णिम चेतन।

मध्ययुगो का घृणित दाय हो रहा पराजित
जाति द्वेष, विश्वास अन्ध, औदास्य अपरिमित।
सामाजिकता के प्रति जन हो रहे जागरित
क्षति वैयक्तिकता मे खोय, मुण्ड विभाजित।
देव, तुम्हारी पुण्य स्मृति बन ज्योति जागरण
नव्य राष्ट्र का आज कर रही लौह सगठन।
नव जीवन का रुधिर हृदय मे भरता स्पन्दन
नव्य चेतना के स्वप्नो से विस्मित लोचन।

भारत की नारी ऊषा-सी आज अगुण्ठित,
भारत की मानवता नव आभा से मण्डित।

७

देख रहा हूँ, शुभ्र चाँदनी का सा निर्झर
गाधी युग अवतरित हो रहा जन धरणी पर।
विगत युगो के तोरण, गुम्बद, मीनारो पर
नव प्रकाश शोभा रेखाओ का जादू भर।

सजीवन पा जाग उठा हो राष्ट्र का मरण
छायाएँ सी आज चल रही भू पर चेतन—
जन मन मे जग, दीप शिखा के पग धर नूतन,
भावी के नव स्वप्न धरा पर करते विचरण।
सत्य अहिंसा बन अन्तर्राष्ट्रीय जागरण
मानवीय स्पर्शों से भरते धरती के व्रण।

भुका तडित् अणु के अश्वा को, कर आरोहण,
नव मानवता करती गाधी का जय घोषण !

मानव के अतरतम शुभ्र तुषार के शिखर
नव्य चेतना मण्डित, स्वर्णिम उठे अब निखर !

८

देव पुत्र था निश्चय वह जन मोहन मोहन,
सत्य चरण घर जो पवित्र कर गया धरा कण !
विचरण करते थे उसके सँग विविध युग वरद
राम, कृष्ण, चैतन्य, मसीहा, बुद्ध, मुहम्मद !
उसका जीवन मुक्त रहस्य कला का प्रागण,
उसका निश्छल हास्य स्वर्ग का था वातायन !
उसके उच्चादर्शों से दीपित अब जन मन,
उसका जीवन स्वप्न राष्ट्र का बना जागरण !

विश्व सभ्यता की कृत्रिमता से हो पीडित
वह जीवन सारल्य कर गया जन मे जागृत !
यान्त्रिकता के विषम भार से जर्जर भू पर
मानव का सौदर्य प्रतिष्ठित कर देवोत्तर !

आत्म दान से लोक सत्य को दे नव जीवन
नव सस्कृति की शिला रख गया भू पर चेतन !

९

देव, अवतरण करो धरा मन मे क्षण, अनुक्षण
नव भारत के नव जीवन बन नव मानवपन !
जाति ऐक्य के ध्रुव प्रतीक, जग वद्य महात्मन,
हिन्दू मुस्लिम बढे तुम्हारे युगल चरण बन !

भावी कहती मानो मे भर गोपन मर्मर,—
हिन्दू मुस्लिम नही रहेगे भारत के नर !
मानव होगे वे, नव मानवता से मण्डित,
मध्य युगो की कारा से भू पर चल विस्तृत !

जाति द्वेष से मुक्त, मनुजता के प्रति जीवित,
विकसित होगे वे उच्चादर्शों से प्रेरित !
भू जीवन निर्माण करेंगे शिक्षित जन मत,
बापू मे हो युक्त, मुक्त हो जग से युगपत !

नव युग के चेतना ज्वार मे कर अवगाहन
नव मन, नव जीवन सौदर्य करेंगे धारण !

१०

दप दीप्त मनु पुत्र, देव, कहता तुमको युग मानव,
नही जानता वह, यह मानव मन का आत्म पराभव।
नही जानता, मन का युग मानव आत्मा का शैशव,
नही जानता मनु का सुत निज अन्तनभ का वैभव।
जिन स्वर्गिक शिखरो पर करते रहे देव नित विचरण,
जिस शाश्वत सुख के प्रकाश से भरते रहे दिशा क्षण,
आज अपरिचित उससे जन, ओढे प्राणो का जीवन,
मन की लघु डगरो मे भटके, तन को किये समपण।
वे मिट्टी-से आज दबाये मुह मे ममता के तण,
नही जानते वे, रज की काया पर देवो का ऋण।
ज्योति चिह्न जो छोड गये जन मन मे बुद्ध महात्मन
वे मानव की भावी के उज्ज्वल पथ दशक नूतन।
मनोयन्त्र कर रुग्ण चेतना का नव जीवन ग्रथित
लोकोत्तर के सँग देवोत्तर मनुज हो रहा विकसित।

११

प्रथम अहिंसक मानव बन तुम आये हिंस्र धरा पर
मनुज बुद्धि को मनुज हृदय के स्पर्शों से सस्कृत कर,
निबल प्रेम को भाव गगन से निमम धरती पर धर
जन जीवन के बाहुपाश मे बाँध गये तुम दृढतर।
द्वेष घृणा के कटु प्रहार सह, करुणा दे प्रेमोत्तर
मनुज ग्रह के गत विधान को बदल गये, हिंसा हर।
घणा द्वेष मानव उर के सस्कार नही हैं मौलिक,
वे स्थितियो की सीमाएँ हैं जन होगे भौगोलिक।
आत्मा का सचरण प्रेम होगा जन मन के अभिमुख,
हृदय ज्योति से मण्डित होगा हिंसा स्पर्धा का मुख।
लोक अभीप्सा के प्रतीक, नव स्वग मर्त्य के परिणय,
अग्रदूत बन भव्य युग पुरुष के आये तुम निश्चय।
ईश्वर को दे रहा जन्म युग मानव का सघषण,
मनुज प्रेम के ईश्वर, तुम यह सत्य कर गये घोषण।

१२

गुरुदेव के प्रति

सूय किरण सतरगो की श्री करती वपण
सौ रगो का सम्मोहन कर गये तुम सजन,—
रत्नच्छाया सा, रहस्य शोभा स गुम्फित
स्वर्गो मुख सौन्दय प्रेम आनन्द से श्वसित।

स्वप्नों का चंद्रातप तुम बुन गये कलाधर,
विहँस कल्पना नभ से, भाव जलद पर रँगकर,
रहस प्रेरणा की तारक ज्वाला से स्पंदित
विश्व चेतना सागर को कर रय ज्वार स्मित !

प्राण शक्ति के तडित् मेघ-से मंद्र भर स्तनित
जन भू को कर गये अग्नि बीजो से गर्भित,
तुम अखण्ड रस पावस का जीवन प्लावन भर
जगती को कर अजर हृदय यौवन से उर्वर !

आज स्वप्न पथ से आते तुम मौन धर चरण,
बापू के गुरुदेव, देखने राष्ट्र जागरण !

१३

राजकीय गौरव से जाता आज तुम्हारा अस्थि फूल रथ
श्रद्धा मौन असंख्य दृगो से अंतिम दर्शन करता जन पथ !
हृदय स्तब्ध रह जाता क्षण भर, सागर को पी गया ताम्र घट ?
घट घट मे तुम समा गये, कहता विवेक फिर, हटा तिमिर पट !
बाँध रही गीले आँचल मे गंगा पावन फूल ससम्भ्रम,
भूत भूत मे मिलें प्रकृति क्रम रहे तुम्हारे संग न देह भ्रम !

अमर तुम्हारी आत्मा, चलती कोटि चरण धर जन मे नूतन,
कोटि नयन आभा तोरण बन मन ही मन करते अभिनन्दन !
भूल क्षणिक भस्मांत स्वप्न यह, कोटि कोटि उर करते अनुभव
बापू नित्य रहेगे जीवित भारत के जीवन मे अभिनव !

आत्मज होते महापुरुष वे अगणित तन कर लेते धारण,
मृत्यु द्वार कर पार, पुनर्जीवित हो, भू पर करते विचरण !
राजोचित सम्मान तुम्हे देता युग सारथि, जन मन का रथ,
नव आत्मा बन उसे चलाओ, ज्योतित हो भावी जीवन पथ !

१४

लो झरता रजत प्रकाश आज नीले बादल के अंचल से,
रँग रँग के उड़ते सूक्ष्म वाष्प मानस के रश्मि ज्वलित जल से !
प्राणों के सिन्धु हरित तट से लिपटी हँस सोने की ज्वाला,
स्वप्नों की सुषमा मे सहसा निखरा अवचेतन अँधियाला !

आभा रेखाओं के उठते गृह धाम, अट्ट नव युग तोरण,
रुपहले परों की अप्सरियाँ करती स्मित भाव सुमन वपन
दिव्यात्मा पहुँची स्वर्ग लोक, कर काल अश्व पर आरोहण,
अंतमन का चैतन्य जगत करता बापू का अभिनन्दन !

नव संस्कृति की चेतना शिला का न्यास हुआ अब भू मन मे
नव लोक सत्य का शिव सचरण हुआ प्रतिष्ठित जीवन मे !

गत जाति धर्म के भेद हुए भावी मानवता में चिर लय,
विद्वेष घृणा का सामूहिक रव हुआ अहिंसा से परिचय।
तुम धन्य, युगों के हिंसक पशु को बना गये मानव विकसित,
तुम शुभ्र पुरुष बन आये, करने स्वर्ण पुरुष का पथ विस्तृत।

१५

बार बार अन्तिम प्रणाम करता तुमको मन
हे भारत की आत्मा, तुम क्या थे मधुर तन?
व्याप्त हो गये जन मन में तुम आज महात्मन्
नव प्रकाश बन, आलोकित कर नव जग जीवन।
पार कर चुके थे निश्चय तुम जन्म औ निधन
इसीलिए बन सके आज तुम दिव्य जागरण।
श्रद्धानत अंतिम प्रणाम करता तुमको मन
हे भारत की आत्मा, नव जीवन के जीवन।

१६

जय हे
जय राष्ट्रपिता, जय जय हे
देव विनय, अविजेय आत्मबल
शुभ्र वसन, तन कांति तपोज्वल,
हृदय क्षमा का सागर निस्तल,
शान्त तेज नव सूर्योदय, जय जय हे।
नव प्रभात लाये तुम जन प्रांगण में,
जीवन के अरुणोदय से हँस मन में
अपराजित तुम रहे, अहिंसक, रण में,
सत्य शिखर के पान्थ अभय जय जय हे।
पशुबल का हर अन्धकार जन दुस्तर,
मनुष्यता का मुख कर संस्कृत, सुन्दर,
विचरे स्वर्ग शिखा ले तुम धरती पर
मनुजों के मानव चिर मंगलमय हे।
हिन्दू मुस्लिम युगल बाहुबल,
पद तल पर नत जीवन का छल,
फहर तिरंग चक्रंचल प्रतिपल
हरता जन मन भय संशय, जय जय हे।

१७

भारत गीत

(१)

जय जन भारत जय आभा रत
जय जन राष्ट्र विधाता।

गौरव भाल हिमाचल उज्ज्वल
हृदय हार गंगा जल,
विन्ध्य श्रोणिवत, सिन्धु चरण नत
महिमा शतमुख गाता !

आम्र बौर, तालीवन, मलय पवन, पिक कूजन
जन मन नित हर्षाता !
अरुणोदय प्रभ ज्योति छत्र नभ
ऊपर नील सुहाता !
जय हे, जय हे, जय हे, जय जय जय जय हे !

हरे खेत लहरे निमल सरिता सर
जीवन शोभा से जन धरणी उर्वर
कोटि हस्त नित विश्व कर्म हित तत्पर
बढ़ते अगणित चरण अडिग ध्रुव पथ पर !

प्रथम सभ्यता संस्कृति ज्ञाता, साम ध्वनित गुण गाथा
जय नव मानवता निर्माता,
सत्य अहिंसा दाता !

सुनो, प्रयाण के विषाण तूरि भेरि बज उठे
घनन, पणव पटह प्रचण्ड घोष कर गरज उठे
विशाल सत्य सैन्य वीर युद्ध वेश सज जुटे,
झनन, कराल अस्त्र शस्त्र युक्त क्रुद्ध भुज उठे !
शक्तिस्वरूप, अमित बलधारी, वंदित भारतमाता
धर्म चक्र रक्षित तिरंग ध्वज उठ अविजित फहराता

मंगल वादन जन मन स्पन्दन
देव द्वार भू प्रांगण,
मुक्त कण्ठ करते जय कीर्तन
निर्भय मस्तक वन्दन !
जय जाग्रत, मानोन्नत, जय शिव सुन्दर शाश्वत,
जय जन भव भय त्राता !
धरा स्वर्गवत श्रद्धा से नत,
जनमत शीश उठाता
जय हे, जय हे, जय हे जय जय जय जय हे !

(२)

जय जन भारत, जन मन अभिमत,
जन गण तन्त्र विधाता !

गौरव भाल हिमाद्रि तपोज्वल,
हृदय हार गंगा जल,
कटि विन्ध्याचल सिन्धु चरण तल
महिमा शाश्वत गाता !

हरे खेत लहरे नद निर्झर
जीवन शोभा से भू उर्वर,
विश्व कर्म रत कोटि बाहु कर
अगणित पद ध्रुव पथ पर।

प्रथम सभ्यता ज्ञाता, साम ध्वनित गुण गाथा,
जय नव मानवता निर्माता
सत्य अहिंसा दाता।
जय हे जय हे जय हे, जय भव भय त्राता।

प्रयाण तूर भृङ्ग भेरि बज उठे
घनन घनन पटह विकट गरज उठे,
प्रबुद्ध वीर युद्ध वेश सज जुटे
विशाल सत्य सैन्य, लौह भुज उठे।

शक्ति स्वरूपिणि, बहु बल धारिणि, वंदित भारत माता।
धर्मचक्र रक्षित तिरंग ध्वज अपराजित फहराता।
जय हे जय हे जय हे शान्ति अधिष्ठाता।

(३)

जय जन भारत, जन मन अभिमत
जन गण तन्त्र विधाता।
गौरव भाल हिमालय उज्ज्वल
हृदय हार गंगा जल,
कटि विंध्याचल, सिंधु चरण तल
महिमा शाश्वत गाता।

हरे खेत लहरे नद निर्झर
जीवन शोभा उर्वर,
विश्व कर्म रत कोटि बाहु कर
अगणित पद ध्रुव पथ पर।

प्रथम सभ्यता ज्ञाता, साम ध्वनित गुण गाथा,
जय नव मानवता निर्माता
सत्य अहिंसा दाता।
जय हे जय हे जय हे, शान्ति अधिष्ठाता।

प्रयाण तूर्य बज उठे
पटह तुमुल गरज उठे
विशाल सत्य सैन्य, लौह भुज उठे।
शक्ति स्वरूपिणि, बहु बल धारिणि, वंदित भारत माता।
धर्मचक्र रक्षित तिरंग ध्वज अपराजित फहराता।
जय हे जय हे जय हे, अभय, अजय, त्राता।

१८

स्वतन्त्रता दिवस

विजय ध्वजा फहराम्रो,
बन्दनवार बँधाम्रो,
म्राम्रो हे, स्वातन्त्र्य मनाम्रो !

म्राज तिरगे से रे म्रम्बर
रग तरगित,
हृप ध्वनि से मुग्ध समीरण
चचल, पुलकित,
जन समुद्र उद्वेलित,
हरित दिशाएँ हर्षित,
जन धरणी का म्रचल
स्वर्णिम श्यामल कम्पित !
जय निनाद कर गाम्रो,
जन गण सैन्य सजाम्रो,
म्राम्रो हे, स्वातन्त्र्य मनाम्रो !

यह विराट रे देश,
विशाल जहाँ जन समुदय,
यहा हुम्रा था प्रथम
सभ्यता का स्वर्णोदय,
यही म्रारम उन्मेष हुम्रा
मानव को निश्चय,
मत्यु भीत नर बना म्रमर,
मृ जीवन निर्भय !
गौरव भाल उठाम्रो,
मगल वाद्य बजाम्रो,
म्राम्रो हे, स्वातन्त्र्य मनाम्रो !

रुद्ध हृदय के द्वार, वीर,
खोलो झन भन झन,
युग युग का म्रवसाद बहाम्रो
म्राज मुक्ति क्षण,
नव जीवन का रण प्रागण हो
जन जन का मन,
म्रमरो से ला छीन पुन
म्रपना खोया धन !
स्वर्ग रुधिर मे हाम्रो
वाद विवाद डुबाम्रो
म्राम्रा हे स्वातन्त्र्य मनाम्रो !

१९

स्वाधीनता दिवस

दिवस मनाया, गाया जय,
स्वाधीन दिवस जय, कण्ठ मिलाया है ।
रंग ज्वाल फूलों की लेकर,
नव आशा उल्लास भर अमर
इन्द्रधनुष फहराया, जय,
भारत माँ की जय, गगन गुंजाया है ।
आज रक्त में नाच रही ज्वाला,
आज जगा में जीवन का उजियाला,
हुआ सुनहला अब मन का अँधियारा,
जय बापू की जय, भेद भुलाया है ।
उठा प्रीति में सहज सुवर —
करो निरंग का अभिनंदन
यह जीवन रण का [illegible]
जन भारत जय, [illegible] है ।

२०

जयगान

आओ हे आओ,
सब मिलकर
जन भारत जय गाओ !
वंदनवार बने [illegible]
जन मगन का घर हो [illegible]
आज रचें हम [illegible]
नव [illegible] ।
अब क्षमा नहीं [illegible]
देखा, हँसना अब [illegible]
आज स्नान [illegible]
[illegible] ।
मिटी दुखों की [illegible],
जग [illegible]
जागे [illegible]
[illegible] गाओ !
मधु [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible] !

२१

जागरण गीत

जागो पंचशील की धरणी,
जीवन शौर्य जगाओ,
भू की अपराजेय चेतने,
नव युग चरण बढ़ाओ!

तेरे उन्मद पद चालन से
कँपे मृत्यु भय संशय,
अंग भंगि से जीवन गरिमा
फूटे चिर मंगलमय!
हाव भाव में विजय दृप्त,
नव जनोत्कर्ष बरसाओ!

तेरे श्वासों में ज्वाला हो,
अधरों में मधु मादन,
भ्रू विलास बलिदान,
दीप्त चितवन हो नव संजीवन!
इंगित पर जन शीश झुकें,
जन शीश उठें, तुम आओ!

तेरी हिंसा रहे अहिंसक
जग जीवन के रण में,
बजे सत्य की भेरी
दुविधा मौन चीर जन मन में!
मृत्यु भीति हर, आत्म तेज भर,
जन मन दैन्य मिटाओ!

रूढ़ि रीति के मुण्ड हृदय में,
ज्योति खड्ग हो कर में,
पद तल पर नत युग दानव हो,
अरि का रुधिर अधर में!
रक्त पात्र से फिर नव चेतन
अमृत ज्वाल छलकाओ!

युग युग का नैष्कर्म्य, नियति भय
जीवन विरति तमस हर,
आत्मा का अमरत्व जगा फिर
जीवन मन के भीतर,
हे युग युग सम्भवे, विश्व को
नव सन्देश सुनाओ!
देख रहा मैं काल दृश्य,—
कट रहे युगों के बंधन,
उर उर में मच रहा महाभारत
—यह युग परिवर्तन!

कोटि कण्ठ मिलकर
वन्दे मातरम निनाद गुंजाओ।
कांप उठे युग युग में भूधर,
डूबा रहा तट सागर,
गरज रहा जन उर अम्बर,
मृत्युंजय इच्छा से भर।
विद्युत् शासिनि, उठो,
इन्द्रधनुप्रभ निरग फहराओ।
हिमगिरि तेरा अविजित प्रहरी
भू इतिहास बताता,
अडिग वज्र प्राचीर तुल्य यह—
दृढ़ भौगोलिक नाता
धधका ज्वालामुखी सदृश अब
वह हिम से भस्मावृत,
ताण्डव नृत्य निरत फिर शंकर
जगा देश चिर निद्रित।
भारत की दुर्धप चेतन,
जन भू भीति भगाओ।
तुहिन शृङ्ग बज उठे तूर्य बन,
धरती गगन निनादित,
बुद्धिहीन अरि फिर अगद पण
भारत से पद मर्दित।
स्त्री नर तन मन धन यौवन की
आहुति देने आओ।
रक्त दान का पुण्य पर्व यह
भू की प्यास बुझाओ।
जागो, सह-जीवन प्रिय धरणी,
नव युग चरण बढ़ाओ,
ओ पृथ्वी की शांति पीठ, फिर
जीवन क्षोभ जगाओ।

२२

उद्बोधन

तुम विनम्र रह
भीरु बन गये, कायर,
जीवन प्रांगण में।
यह सौजन्य नहीं रे दुर्बल,
आत्म वंचना यह मन का छल,
मौन मूक रह
बने नगण्य करुणतर
तुम लोक नयन में।

यह तू जीवन का मन दुस्तर
ज्योति तमस का क्षत विस्तार,
तुम स्वामी बन
विश्व का नव आकार,
प्राणों म ध्यान भ !
कुछ प्राण व्यक्ति के बाहर,
कुछ सामूहिक हित के बाहर,
तुम उतार कर
स्वर्ग भू पर नव आकार
स्वप्नों के रूप म !

सत्य नहीं रे मात्र आत्मपर
व्यक्ति विश्व के बीच है ईश्वर
तुम दुराग्रह
को समन्वित सुन्दर
भर [illegible] भक्त म !
तुम्हें चाहिए प्राणों का बल,
तुम्हें मनुज के प्रति आकर्षण
तुम्हें ईश के प्रति आत्मार्पण,
विहारी बन
बना अमृत के सागर,
विचरण [illegible] म !

२३

आवाहन

आओ, जन स्वतन्त्र भारत को
जीवन उर्वर भूमि बनायें
उसके अन्न शिखर प्राणों से
तम का गुण्ठन भार उठायें !
यह, इस सोने की धरती पे
खुले आज सदियों के बन्धन
मुक्त हुई चेतना धरा की,
मुक्त करो अब भू के जागरण !
अगणित जन लहरों से मुखरित
उमड़ रहा जग जीवन सागर
इसके छोरहीन पुलिनों में
आज डुबाएँ युग के अंतर !
अश्रु स्वेद से ही सींचेंगे
जन क्या जीवन की हरियाली ?
संस्कृति के मुकुलित स्वप्नों से
क्या न भरेंगे उर की डाली ?

क्या इस सीमित धरती ही में
समा सकेगा मानव का मन,
मौन स्वर्ण शृङ्गों के ऊपर
कौन करेगा तब आरोहण ?
धरती के ही कदम में सन
नहीं फूलता फलता जीवन,
उसे चाहिए मुक्त समीरण,
उसे स्वर्ण किरणों के चुम्बन !
समाधान भू के जीवन का
भू पर नहीं,—वृथा संघर्षण,
भू मन से ऊपर उठकर हम
बना सकेंगे भू को शोभन !
मानवता निर्माण करें जन
चरण मात्र हों जिसके भू पर,
हृदय स्वर्ग में हो लय जिसका,
मन हो स्वर्ग क्षितिज से ऊपर !
यान्त्रिकता के विषम भार से
आज डूबने को जन धरणी,
महा प्रलय के सागर में क्या
भारत बन न सकेगा तरणी ?
अंधकार के महा सिन्धु में
डूबी रह न सकेगी धरती,
किरणें जिसमें अग्नि बीज बो
यौवन की हरियाली भरती !
मिट्टी से ही सटे रहेंगे
क्या भारत भू के भी जनगण,
क्या न चेतना शस्य करेंगे
वे समस्त पृथ्वी पर रोपण ?
आज रक्त लथपथ मानव तन
द्वेष कलह से मूर्छित जन मन
भारत, निज अंतःप्रकाश का
पुन पिलाओ नव संजीवन !
मृत तमस में खोये जग को
फिर अंतःपथ आज दिखाओ,
मानवता के हृदय पद्म को
पंक मुक्त कर ऊर्ध्व उठाओ !

२४

दीप लोक

आज सहस्रों नयन खोलकर
सोच रहा ज्यों अंधकार घन,—

कब अन्तर म ध्यानाधित
होगा जग जीवन का प्रांगण !
कब अम्बर की शान्त स्मिति
अंकित होगी भू के मुख पर,
स्वग शिखा म होग शोभित
कब ये मृण्मय दीपक सुन्दर !
एक ज्योति की ऊष्मा से म
सब सौ-सौ उर होकर दीपित
धरती के जड रज के तम को
आभा म भर देंगे विस्मित !
गृह तोरण गुम्बद मीनारें
दीपो की रचना छवि म स्मित
हँसतीं,—मानव उर का मन्दिर
कब से भीतर म तमसावृत !
असगठित जग जीवन का तम
आज चतुर्दिक रहा ज्यो बिखर,
अँधियाले का दुर्ग बना दृढ़
जीर्ण जातिगत मन का खँडहर !
शत सहस्र दीपो स भी, यह,
बन न सकेगा जन पथ विस्तृत,
दीप शिखा कहती सिर धुनकर
जब तक होगा हृदय न ज्योतित !
नव जीवन के ज्योति चरण धर
कब भू पर विचरेगा मानव,—
ताराओ के नभ के नीचे
दीपो का नभ कहता नीरव !
इस धरती के रज के तम म
अग्नि बीज रे दबे चिरन्तन
फूटें ज्योति प्ररोहो मे वे
पा जागति का लोक समीरण !
कँपती स्वप्न शिखाओ म जग
हो मानव चेतना पल्लवित,
नव जीवन शोभा स जगमग
धरणी का प्रांगण हो दीपित !

२५

दीप श्री

आभा के धब्बो से भर
भू अँधियाली का अचल,
हँसती किरणो की दीपा
जन पथ मे बरसा मगल !

वह आयी, तम के पट से
निखरी अवयव रेखा छन,
नव स्वर्ण शुभ्र शोभा का
कँपता कृश दीप शिखा तन।
अब नगर हाट डगरों के
शोभित गवाक्ष गृह तोरण,
रुपहली ज्योति कलियों से
मुकुलित छत गुम्बद प्रांगण।

यह भू जीवन की शोभा
जन आकांक्षा में दीपित
धरती के तम में बुनती
तारों के स्वप्न अतन्द्रित।
फिर जगी चेतना भू की
निष्कम्प स्नेह स्मित चितवन,
दौड़ी मृण्मय दीपों में
स्वप्नों के पग धर नूतन।
यह रे जग के आँगन में
अंतर आभा का मधुवन
जागा जन मन डालों में
नव ज्वाला पल्लव जीवन।

२६

दीपावली

दीप जलाओ, दीप जलाओ।
जीवन के जगमग स्वप्नों से
दीपों का आकाश सजाओ।

यह जग है मिट्टी का दीपक,
जीवन ज्योति प्रेम मनमोहक
हँसी खुशी की, गीत-स्वप्न की
जन मन में री ज्योति जगाओ।

युग की साँझ आज गहरायी,
जिसमें कल की ज्योति समायी,
सुंदरता के दीप सँजो के
जग में नया स्वर्ण युग लाओ।

आँचल की कर ओट सखी री,
तूफानों से दीप बचाओ।
एक ज्योति के सौ सौ दीपक,
जग का मग ज्योतित कर जाओ।
दीप जलाओ, दीप जलाओ।

२७

मिट्टी के खिलौने

तुमने अंतरतम का वैभव
मिट्टी में बाँध दिया जीवित,
तुम रूपकार, उर का प्रकाश
रज के तम में करते दीपित !

ये भाव चिरंतन जन मन के
जो मूर्त खिलौनों में मूर्तित,
ये मानवीय बन श्रवण नयन,
नासा मुख अंगों में शोभित !

मस्तक पर स्वर्ण रजत किरीट,
कर में मुरली, माला, धनु शर,
पट नील पीत पहने तन पर
युग-युग से ये मन लेते हर !

गणपति हैं, दशभुज दुर्गा हैं,
गौरी गंगा युत शिव शंकर,
ये गरुड़ पीठ पर वरद विष्णु
जिनके संग लक्ष्मी जी सुंदर !

ये राम कृष्ण सीता, राधा
गांधी जी बुद्ध, जवाहर हैं,—
हम मात्र मूर्तियाँ हैं बाहर
चेतन प्रकाश कण भीतर हैं !

तुम बरा रहे सतत केवल
अंतर प्रकाश ही में सीमित
तुम मूर्तिमान बनते जग में
क्षय रूप धन्य होता निश्चित !

ये प्रतिमाएँ चलती फिरती
जन के मन में धर स्वप्न चरण,
तुम युग युग में धर रूप नवल
मानव मन को करते धारण !

२८

कवीन्द्र रवीन्द्र के प्रति

श्रद्धांजलि स्वीकार करें गुरुदेव शिष्य की
आज श्राद्ध वासर के वाष्प नयन अवसर पर
पुण्य स्मृति से मेघ सजल लोचन बरसाते
स्नेह द्रवित आनंद अश्रु पावन चरणों पर,—
मौन स्वप्न पथ से बढ़ते जो चरण हृदय में !

और आज क्या श्रद्धांजलि दूँ, इस धरती के
जीवन के रणक्षेत्र पर खड़ा ?—जड़ भूता की
निद्रा से चिर तंद्रिल !—जो जीवन विकास के
विमुख, जागरण के अवरोधी, अधोमुखी है !
नहीं चाहता भू जीवन के अंधकार को
पुन आप के पास भेजना इन वर्षों में
अधिक नहीं कुछ बदल सका धरती का जीवन,
बल्कि, तीसरे विश्व युद्ध के लिए धरा के
राष्ट्र आज सन्नद्ध दीखते अणु विस्फोटों,
रज विटाणुओं गरल वृष्टि से—वसुंधरा पर
महा प्रलय, अंतिम विनाश लाने को उद्यत !!
हरित भरित जन वसुधा पर जो सागर जल के
अनिल विलोलित दलय अंचल को वक्षस्थल से
अहरह चिपका, नाच रही स्मित सूर्यातप में,
नृत्य परा अप्सरा-सी चपल, ज्योति प्रहा में
परिवेष्ठित,—अनभिज्ञ हाय, भावी संकट से !!
भौतिकता लोह के निर्मम चरण बनाकर
रौंद रही मानव आत्मा को जो यंत्रों के
निकट अस्थि पंजर में अन्तिम साँस ले रही !
देव आप का वह अन्तर्राष्ट्रीय स्वप्न भी
अभी नहीं साकार हो सका भू पलकों पर,
राष्ट्रों के कटु स्वार्थ विभक्त किये हैं जिसको
वर्ग श्रेणि की दीवारों में मानवता को
बंदी कर चिर अंध रूढ़ियों की कारा में !
भूल गया मानव निज अंतर्जग का वैभव,—
जीवन का सौंदर्य, प्रेम, आनन्द—सूक्ष्म से
उतर नहीं पाते जन भू पर ! सृजन चेतना
निष्क्रिय होकर पंगु पड़ी है ! धरा स्वर्ग को
स्वप्नप्रभ पंखों से आज नहीं छू पाती !
अंतमन के भूमि कम्प से ध्वंस भ्रंश हो
अन्तर्विश्वासों के, उन्नत आदर्शों के
शिखर सनातन बिखर रहे हैं मर्त्य धूलि पर !
मानव के नयनों से शाश्वत का प्रसन्न मुख
अस्त हो गया यह वसुंधरा निरानन्द है !
एक सुनहली रेखा है काले बादल में !—
आज आपका प्रिय भारत स्वाधीन हो गया,
छूट गयी दासता युगों की लौह शृंखला
टूट गयी,—नैराश्य दैन्य, पीडन से निर्मित !
छिन्न कर गये आप जिसे थे पहिले ही में
निज वज्र स्वर के प्रहार कर नव जागृति भर !
देव, आपकी स्वर्ण भूमि स्वाधीन हो गयी
बापू यद्यपि नहीं रहे ! वह मानवता के

देव शिखर,—अपने शोणित से नव जीवन का
युग प्रभात रंग, लुप्त हो गये !—मुक्त हो गये !
सम्बोधन करते थे जो गुरुदेव आपको !
रूप मांस थे आप, आत्म पंजर थे वे दृढ
ऊर्ध्व रीढ ही, शांतिनिकेतन की पृथ्वी पर,
जिसे चाहते थे दोनों ही स्थापित करना
स्वप्नों से, कर्मों से, जग के रण प्रांगण में
जन मंगल के हित ग्रह, दोनों चले गये तुम !
मुक्त नहीं हो सका अभी जन भारत का मन,—
मध्य युगों की क्षुद्र विकृतियाँ शीश उठाकर
नव्य राष्ट्र को बना रही निःशक्त, क्षीण हैं !
विविध मतों में, विविध दलों, व्यूहों में बँटकर
देश आज निर्वीय, निबल, निस्तेज हो रहा,
घृणित साम्प्रदायिक बर्बरता से पीड़ित हो !—
शोणित की नदियाँ बहती अब तपोभूमि में ! !
नहीं झलकता मानव गौरव जन के मुख पर
रुद्ध हृदय है उनका, मन स्वार्थों में सीमित,
आत्म त्याग से हीन, अभी वे नहीं बन सके
महाराष्ट्र के उपादान,—गम्भीर, धीर, दृढ
युग प्रबुद्ध, निर्भीक, वज्र संयुक्त परस्पर !
रहने दूँ यह कटु प्रसंग मैं नहीं चाहता
फिर विषण्ण भू मन की छाया पड़े आप पर !—
भारत यदि स्वाधीन हो गया तो निश्चय ही
छूट गयी भौतिक परवशता आज धरा की,
उसके प्राणों के स्तर अब चैतन्य हो गये !
पशु बल का खल ग्रह मिट गया शांत हो गयी
अवचेतन की निम्न वृत्तियाँ घृणा द्वेष की !
अंतर्जग में,—बाहर अभी भले सक्रिय हों
मंद पड़ गयी कटु स्पर्धा, अधिकार लालसा,
जीवन की आकांक्षा में संतुलन आ गया,—
दीप्त हो गया तामस का मुख !—
यह भारत की
विश्व विजय है ! जयी हुई इस स्वर्ण धरा की
अमर चेतना ! सफल हुए उसके तप साधन,
अंधकार, मिथ्या, हिंसा के बर्बर स्थल पर
विजयी हुआ प्रकाश,—अहिंसा आत्म सत्य का !
निश्चय, मानव का भविष्य अब चिर उज्ज्वल है,
असंदिग्ध भू का मंगल,—निर्भय हो जग मन !

विचरण करते होंगे कवि गुरु, आप अतीन्द्रिय
स्वर्ग लोक में सम्प्रति—देवों से भी सुंदर

मानव देव समान, अमर निज यश काया मे ।
पारिजात मन्दार प्रभृति सुमनो की स्वर्गिक
स्वप्निल सौरभ नासा द्वारो से प्रवेश कर
आन्दोलित रखती होगी प्राणो को नित नव
भावो मे, स्वप्नो से, सुर सौन्दर्य बोध मे—
नन्दन का अविरत वसन्त ज्यो गुजित रहता
मुकुल अधर मधुपायी स्वर्णिम भृग वृन्द से ।

अथवा बैठे होगे आप रहस्य शिखर पर
अमर लोक के, निभृत मौन मे ध्यानावस्थित,—
बहती होगी शाश्वत सुन्दरता की सरिता
नीचे, स्वर्णिम छाया की सतरँग घाटी मे,
कल कल छल छल गाती अनादिता अमरा की ।

वहा विजन मे आप दिव्य उन्मेष से स्फुरित
सृष्टि रच रहे होगे अश्रुत अमर स्वरों की,
सूक्ष्म चेतना की छाया शोभा से गुम्फित,
मौन मग्न हो अतल सृजन आनन्द सिन्धु मे ।

सुर सुन्दरियाँ आती होगी पास आप के
ध्यान भग करने को, ईर्ष्याकुल निज मन मे,
त्यक्त, उपेक्षित, विस्मृत अपने को अनुभव कर ।
क्षण भर को अपलक रह जाते होगे लोचन
सुरागनाओ का सौन्दर्य विलोक अपरिमित ।
देह शिखाओ से अनन्त यौवन की आभा
फूट - फूटकर विस्मय से भरती होगी मन ।
मसृण सुरग छाया - पट से छन तन की शोभा
झलका करती होगी सौष्ठव रेखाओ मे,
स्तिमित शब्द घन मे कम्पित विद्युल्लेखा - सी,—
झकृत कर अतरतम सत्ता के तारो को ।

स्वप्नो के शिखरो - से उठ - उठ श्वसित पयोधर
टकराते होगे, आकाक्षा के भुवनो - से,
जिन पर धर कल्पना श्रान्त शिर कविमनीषी
लेते होगे, क्षण विराम, फिर स्वप्न मग्न हो ।
अप्सरियो की पीन श्रोणि, लावण्य चूड-सी,
घनीभूत कर निज उभार में अमरो का सुख,
मुखरित रहती होगी प्राणो के गुजन से
त्रिदिव लालसा की काँचो से अहरह दोलित ।
स्वर्गिक शोभा स्तम्भो - से पेशल जघनो पर
कँपती होगी कौन जलद छाया ओझल हो,
जिसमे दिप दिप तडित चकित कर देती होगी
कवि लोचन, लज्जा लोहित लावण्य राशि से ।

क्षमा करें, गुरुदेव, आप जो भू जीवन के
रसोल्लास से प्रति सदय जीवित जाग्रत थे,

जो रस सिद्ध कवीश्वर बन विचरे पृथ्वी पर,
आज आप भी वहां ऊबते होंगे निश्चय
अमरों के उस अनाघ्रात आनंद लोक में—
और, चाहते होंगे फिर से मर्त्य धरा पर
आकर, जीवन श्रम के शोभा सुख को वरना!

एक बार आये थे जहाँ स्नेहवश प्रेरित
देवों का ले दिव्य रूप, हे कवियों के कवि,
अमरों की वीणा धर कर में भुवन मोहिनी,
भू जीवन सागर को करने रस उच्छ्वसित,—
गीति छंद की तीव्र मधुर शत झंकारों से
प्राणों का जल लहरा, ज्वार उठा आशा का,
फेनों के शिखरों पर लोक बसा स्वप्नों का
इंदु रश्मि के सम्मोहन से माया दीपित!
आये थे भू रोदन को संगीत बनाने
दलक्षण मधुर स्वर श्रुतियों के शत आवर्तों से
भावों के छाया पुलिनों को स्वप्न ध्वनित कर!

आये थे तुम जीवन शोभा के शिल्पी बन,
मानव उर की आशाओं, अभिलाषाओं को
सूक्ष्म स्वरों में पुनः ऊर्ध्व मुख झंकृत करने,
निज विराट प्रतिभा की अद्भुत रहस् शक्ति से
स्वर्ग धरा के बीच कल्पना का रथस्मित
इंद्रधनुष प्रभ सेतु बाँधो सुर नर मोहन,
अप्सरियों के रणित पदों से मौन गुंजरित!

युग द्रष्टा बन आये आप यहाँ, जन गायक,
देश काल का तमस चीर निज सूक्ष्म दृष्टि से,
पैठे जन जीवन के निस्तल अंतस्तल में
धरती के अवसाद भरे जन गण को देने
उद्बोधन का गान, जागरण मंत्र, मनोबल!
मानव की चेतना रश्मि को अतल गुहा से
बाहर ला, मन में अभिनव आलोक भर गये,
रंग रंग की आभा पलछिंयों को बिखरा
नव जीवन सौंदर्य गये बरसा धरती पर
गीतों से, छंदों से, भावों से, स्वप्नों से!

एक बार फिर आओ कवि, इस विधुर देश को
अपनी अमर गिरा से नव आश्वासन देने!
आज और भी लोक प्रतीक्षा यहाँ आपकी,
वाणी के वर पुत्र, धरा की महा मृत्यु को
अमर स्वरों से जगा, विश्व को दो जीवन वर!

आओ हे फिर अपने भारत के मानस में
मध्य युगों का घणित ज्ञान जम्बाल हटा कर

ज्वलित स्वण दपण - सी उसकी चेतनता को
लाम्रो फिर जग के समक्ष, जिसम नव जीवन
नव मानवपन का उज्ज्वल मुख प्रतिबिम्बित हो।
आज धरा के प्र धकार म उसका जगमग
काचन दो फिर से उडेल जीवन प्रभात मे,
रँग दो जन मन के नभ को नव अरुणोदय स
स्नात करे फिर रक्तोज्वल भू स्वग रुधिर म।

आओ हे कवि, आओ, फिर निज अमत स्पश से
आदर्शों की छायाओ को नव जीवन दो,—
मत्य लोक के जड प्रागण मे जीवन चेतन
स्वग स्वप्न विचरें, ज्वाला के पग धर नूतन,
नव आशा, अभिलाषा स दीपित दिग त कर।
आओ तुम, जीवन वसन्त के अभिनव पिक बन,
धरा चतना हँस सास्कृतिक स्वर्णोदय म।

आज सूक्ष्म दशन मे जगता मनोनयन मे
भारत का आनन हिरण्य स्मित,—जीवन मन के
तम से पर, आदित्य वण उसकी आत्मा का,—
भूत शिखर के चरम चूड सा, शत सूर्योज्वल।
ह्रास नाश से रहित अमर चेतना शक्तियाँ
वह अ तर्हित किये हृदय म, सूक्ष्म, सूक्ष्मतम,
गुह्य, रहस, वणनातीत,—जग के मगल हित।
उसके अ तरतम के ज्योतिमय शतदल पर
स्वय खडे हैं, सत्य चरण धर, अविनाशी प्रभु
तेजोमय, जाज्वल्य, हिरण्य श्मश्रु से अद्भुत।
पुरुष पुरातन, पुरुष सनातन, विश्व मोहिनी
निज वशी के सृजन नाद से जगा अचित से
स्वर्गिक पावक के असख्य चत य लोक स्मित,
बरसा रहे अन त शूय मे स्वर लय नर्तित
कोटि सूक्ष्म सौ दय, प्रेम, आन द के भुवन!—
प्राणो की आशाऽकाक्षाओ से चिर उवर
जीवन मन के स्वग, तृप्ति के सुख मे नीरव,
रूप ग ध रस स्पश शब्द के बिम्ब जगत बहु
निज असीम वैभव मे अक्षय—दमक रहे जो
सप्त चेतनाओ के रग स्तरो म छहरे।
सयम तप के स्वण शुभ्र नीहार से जडित
भारत के चेतना श्रृग पर, ध्यान मौन रव,
परम पुरुष वह नत्य कर रहे सजन हष की
विस्मृति म लय!—जिनके अति चेतन प्रकाश स
शोभा सुषमा की सहस्र दीपित मरीचियाँ,
आभा की आभाए, छाया की छायाएँ

दिशा काल म फूट रहीं, शत सुर धनुओ के
रगो की आलोक क्रांति से दृष्टि चकित कर।
झर-झर पडते सतत सत्य शिव सुदर उनसे
महाकाल औ' महा दिशा की चेतनता से
मुग्ध चमत्कृत कर,—रोमाचित दिव्य विभव से!
आज धरा के भूतो के इस तमस क्षेत्र मे
जीवन तृष्णा, प्राण क्षुधा औ' मनोदाह से
क्षुब्ध, दग्ध, जजर जन गण चीत्कार कर रहे,
घृणा द्वेष स्पर्धा से पीडित, वन पशुओ से!
बिखर गया मानव का मन अणुवीक्षण पथ से
बहिजगत मे, स्थूल भूत विज्ञान से भ्रमित!
अतदृष्टि विहीन मनुज निज अन्तजग के
वैभव से अनभिज्ञ, हृदय से शून्य, रिक्त है!
आज आत्मघाती वह, अपने ही हाथों से
मनुज जाति का महा मरण निर्माण कर रहा
भौतिक रासायनिक चमत्कारो से अगणित!
तक नियत्रित यात्रिकता के पद प्रहार से
ध्वस्त हो रहे अतमन के सूक्ष्म सगठन
सत्यो के, आदर्शों के, भावो, स्वप्नो के,
श्रद्धा विश्वासो के, सयम तप साधन के,—
मनुष्यत्व निभर है जिन ज्योतिस्तम्भो पर!
ऐसे मरणोमुख जग को, कहता मेरा मन
और कौन दे सकता नव जीवन, आश्वासन,
शान्ति, तप्ति,—निज अन्तर्जीवन के प्रवाह से
भारत के अतिरिक्त आज ?—जो शाश्वत, अक्षर
अतर ऐश्वर्यों का ईश्वर है वसुधा पर!
कहता मेरा मन, भारत ही के मगल मे
भू मगल, जन मगल, देवो का मगल है!—
—देव, आप आशीर्वाद दें जन भारत को!

२६

श्री अवनीन्द्रनाथ ठाकुर की ७५वीं वर्षगाँठ पर

आज आपकी वय गाँठ के शुभ अवसर पर
करते हम समवेत प्राथना, वृद्ध चित्र कवि,
फिर फिर ऐसे हृप दिवस आयें, दे जायें
नवल सुनहली गाँठ आप के वयस सूत्र में!
पक्व वयस के रजत मास औ' स्वण वप नव
अकित अनुक्षण करें काल के पट पर अक्षय
शरद इदु स्मित कीर्ति शुभ्र व्यक्तित्व आपका,—
केश श्मश्रुओ की शोभा रँग शुभ्र, शुभ्रतर,
स्वप्न तूलि से अपनी, हे रगो के गायक,

जिसने वाणी की अदृश्य स्वर झकारो को
रूप रग रेखा की आकृति मे जीवित कर
इ द्रधनुष प्रभ स्वप्नो की स्मित रत्न श्री मे
दिया बखेर, श्वसित कर रगच्छाया को मत !
शुभ्र वयस के रजत स्वण क्षण लावें अविरत
नूतन स्वप्नो से रजित भावी का वैभव,—
सतरँग स्वर्गिक पावक से शोभा चित्रित कर
जीवन का चिर रहस सत्य, नयनो के सम्मुख—
नित अभिनव सतुलन, वण मैत्री, सौष्ठव भर !
अमर शिल्पि, मानव की आशाऽकाक्षाओ मे
नव्य रग रुचि सगति ध्वनि छाया प्रकाश भर
आप चेतना पट पर जन जन के रँग जावें
मनुष्यत्व की आभा रेखा छवि देवोपम,—
स्वर्ग आपको दिव्य स्वास्थ्य द, दीघ आयु दे !

३०

मर्यादा पुरुषोत्तम के प्रति

जय पुरुषोत्तम ! विश्व सचरण मे धारण कर
विश्व श्याम तन, तुमने मन मे किया अवतरण
प्रथम बार त्रेता युग मे मानव सस्कृति का
जो प्रोज्वल निर्माण काल था, जब जन का मन
बहिर्जगत म बिखरा था इ द्रिय द्वारो से !
जीवन के दश मुख तम से आ दोलित अ तर
प्राणो के आवेगो की झझा से ताडित
प्रलय सि धु-सा गजन करता था दिग त म
क्रुद्ध लालसा के आवर्तों मे आलोडित !
विकट अराजकता म पशु आकाक्षाओ की
सम्भव था तब नही शा त स्थिर जीवन यापन,—
वन जीवी, पशु जीवी मनुज, मनोजीवी तब
नही बना था निद्रा भय मैथुनाहार की
देह वृत्तियो से चालित वह ज तुमात्र था !
प्रथम सचरण था वह मन का भू जीवन पर
नही निय त्रण था उसका वह असगठित था !
उतरे थ तुम रजत पुरुष तब अन्तर्नभ से
सदाचार की दिव्य शुभ्र आभा से मण्डित,
शशि किरणा से प्रहसित शरद नीलिमा स नव !
जीवन के तम को, छाया-सा, सहज प्रणत कर
मानव के पद तल पर, तुमने तन के ऊपर
मन को किया प्रतिष्ठित था जन मगल के हित !
क्षुब्ध उच्छ्वसित प्राणो के उ मद सागर को
शासित कर बाँधा मर्यादा सतु चिर तन,

मर्यादा पुरुषोत्तम ! बहिर्मुखी उ
इन जीवों की मनोभूमि पर किया
रश्मि शुभ्र चेतना तीर से, चीर
वैदेही सी मनश्चेतना को विदेह

प्रथम विजय थी वह जीवन पर मानव मन की
तरुण अरुण-से विहँसे थे तुम मनश्चूड पर
सूय मनस के स्वण बिम्ब ! जब अजित वासना
हुई सयमित सस्कृत नव जीवन मानों मे
ऊध्व प्रस्फुटित, विकसित हो, मनुजोचित बन कर !

पूण किया वह वृत्त कृष्ण युग म
प्राणों म जब हुए अवतरित तुम
मर्यादा के पुलिना पर जीवन
दिव्य ज्वार लहरा,—अतर के रस
जीवन का आनन्द, प्रेम, सौन्दय
—वह विकास परिणति का स्वर्णिम वैभव

एक बार फिर उतरा, अतमन के सारथि
भू की आकाक्षा के नव विकसित शतदल पर,
आज मनोजीवन, प्राणो के जीवन के स्तर
जीण, विरस, विश्री लगते, सौन्दय हीन हा !
विगत चेतना,—कभी विशाल शुभ्र सरसिज सी,—
मूद रही अब मन के दल युग की सन्ध्या मे,—
स्रोतहीन पुलिनो सी नीरस रीति नीतिय
सीच नही पाती जीवन की उवरता को !

आज और भी नीचे उतरो प्राण
जीवन के तम के नीचे उज्ज्वल
स्वण शुभ्र दो रेख खीच, नव प्रतिपल
विहँस उठे स्वप्नो से उपचेतन
धरा स्वग बँध जायँ एक क्षितिज के
एक नव्य आध्यात्मिकता आलोक
मज्जित कर दे जीवन मन की सी
सीमा रहित चेतना की नव शोभा

बहे एक अविराम धार मे स्वर्ग चेतन
देह प्राण मन के भुवनो मे सजीवन भर
मनुज और भी निज अतरतम म प्रवेश क
ऊध्व, गहन, व्यापक बन, निकले अधिक बहिमुख !

धरा चेतना की काले तम की
फुल्ल स्वण लोहित रजित हो युग
नव जीवन सौन्दय पद्म मे विहँस
अतर मे भर अतिचेतन पावक परा
प्राणो की सौरभ विद्युत से हर्षित क
—हृदय कमल मे भ के फिर उतरो,

२१

ग्रायाहन

ग्राग्रो हे, पावन हो भूतल।
फिर धम ग्लानि से पीडित जग,
फिर नग्न वासना उच्छृंखल
जन परित्राण करने उतरो,
हे राम, परम निबल के बल।

फिर हुई ग्रहल्या मनोभूमि,
चेतना, शिला-सी जड निश्चल
फिर मानवीय बनकर निखरे
भू शाप मुक्त हो, छू पदतल।

फिर जीण हुग्रा युग चाप ग्राज,
फिर वीर विहीन मही ग्रचल,
तुम वरो धरा चेतना पुन
यह विश्व शान्ति का सकट पल।

लो, बनी विमाता पुन कुमति
वनवासी सत्य, गही ग्रब छल,
फिर भौतिक मद का कचन मग
मोहित करता जन मन दुबल।

यह भस्म रेख, यह नाश छोर,
फिर साधु वेश धर हँसता खल,
श्री हीन हृदय की पचवटी,
हृत लोक चेतना, विश्व विकल।

श्रद्धा जटायु सी पख कटी,
दो मुक्ति उसे, हे जन वत्सल,
ग्राश्वस्त प्रणत को करो पुन
निममता के बाली को दल।

उद्वेलित भव जीवन वारिधि,
दुस्तर, ग्रशान्त जन मन विह्वल,
फिर बाँधो नव चेतना सेतु
हो पार सत्य की सेय सकल।

लक्ष्मण-सा ही ग्रब शक्ति भ्रान्त
विश्वास मम ग्राहत, निबल,
सजीवन दो फिर मूछित को
हनुमत-सी प्राणद शक्ति ग्रचल।

ग्रह मेघनाद-सा गजन भर
ग्रण त्रास कँपाता ग्रन्तस्तल,
तज कुम्भकण-सी युग निद्रा
जन ग्रह श्रृग मद जाये ढल।

दश शीश उठाये घृणा घोर,
जलता उर उर म द्वेषानल,

फिर उसे परास्त करो मन में,
जन जीवन हो सयुक्त, सफल !

वदहीं सी हो विरह मुक्त
चेतना, चूम प्रिय चरण कमल,
फिर राज्यारोहण करो, राम,
हृदयासन मे, हो जन मगल !

३२

श्री अरविन्द के प्रति

(अ)

आज जबकि नीरस असार विश्री लगता जग जीवन,
मानस का सौदय फूल सा मुरझा रहा सुरभि क्षण,
बिखर गया जब सतरग बुदबुद उर का स्वप्न सचालन,
जीवन सघषण से लोहित, गये मत्य के पग थक !

जीण युगो की नैतिकता जब करती जन मन शोषण,
क्षुद्र अह की दासी बन, स्वार्थों को किये समपण,
अन्तर्विश्वासो के उन्नत शृग रहे ढह भू पर
सूख गया चिर स्रोत प्रेरणा का, उर हुआ अनुवर !

आज जब कि मन प्राण इन्द्रियो के क्षत विक्षत अँग अँग,
पुन चाहती वे गति - लय मे बँधना देवो के सँग,
ध्वस भ्रष्ट हो गये विगत आदर्शों के जब खँडहर,
कुचल रहा मानव आत्मा को जड भौतिक आडम्बर ! —

आज जब कि बुझ गयी चेतना, अन्धकार से उर भर,
चूण हो गया हृदय सभ्यता का, नीरव सस्कृति स्वर !

(ब)

तुम्हे पुकार रहा तव अन्तर, भावी मानव ईश्वर,
नव्य चेतना, नव मन, नव जीवन का भू को दो वर !

स्वण चेतना द्रवित जलद तुम, रजत तडित रुचि स्पदित
रत्नच्छाय सजल, रहस्यप्रभ शत - शत सुरधनु मण्डित,
दिव्य प्रेरणाओ की जगमग किरणो से चिर गुम्फित,
मनस पक्ष मे ज्वलित अमर पिण्डो को किये तिरोहित !

स्वर्मानस से उठ, उतरो, प्रभु, जन मन के शिखरो पर,
सूक्ष्म चेतना वाष्प कणो मे लिपटा मानव अन्तर,
नव जीवन सौदय म बरस, करो धरा मुख सस्मित,
अमृत चेतना के प्लावन मे मत्य लोक कर मज्जित !

हे अतिचेतन, नव मानस वसनो मे हो नव भूषित
नव आदश बनो तुम, जिसमे नव जीवन हो बिम्बित !
जीवन मन से ऊपर तुम नव जीवन मे नव मन मे
मानवता को बाँधो अभिनव ऐक्य मुक्ति बन्धन मे !

३३

श्रद्धांजलि

श्रद्धांजलि अर्पित करता मन, हे मनुष्यता के उन्नायक,
जग जीवन के महायज्ञ में अतिमानवता के नव पावक !
लोक अभीप्सा की आहुति पा स्वर्गशिखा से उठ प्रज्वलित
देव धरा के अंधकार को स्वर्ण प्रात में करने दीपित !
महाकाल औ' महादिशा ज्यों सहम उठे छवि देख अलौकिक,
रूपान्तरित हुए, विमुग्ध त्रिभुवन भौतिक, मानस, आध्यात्मिक !
निखिल व्यक्त अव्यक्त, सकल सीमा असीम लय हुए विमोहित
पुनः देह में स्वयं परम का देख दिव्य आभा में मूर्तित !
जीवन मन के मान गल गए, मिटीं पूर्णताएँ अपूर्ण बन
अल्प मनुज के स्वल्प राज्य घुल गये कुहास-से उर के घन !
अतिमानस के ज्वलित स्वर्ण दर्पण में सहज विलोक प्रतिफलित
शुभ्र भागवत जीवन का भू स्वर्ग अतींद्रिय इंद्रिय शोभित !
धन्य अवनि, अवतरित हुए जो तुम अतिमानव लोक विधायक
जन मन के चिर कुरुक्षेत्र के युग सारथि क्रम में अतिनायक !

३४

अवतरण

कैसा था वह दिव्य अवतरण,—
(धन्य आज का ज्योति दिवस क्षण !)
चिदापगा का अतुल वेग चिर दुर्धर
मनश्चूड़ पर किया देव ने था जब धारण,—
जिज्ञासा से पुलकित अंतर !
स्वर्ण शुभ्र नीहार शृंग पर
फूटी अगणित उषा क्या निखर,
रहस् चकित आलोक क्रांति में
धरा स्वर्ग के डूबा दिगन्तर ?
अमर ज्योति पिण्डों का पावक
नव प्रकाश में आत्मसात् कर !
विश्व मन संगठन हुआ क्या विकसित ?
नव्य सगुण संचरण देव में मूर्तित ?
रँग रँग की आभा पंखड़ियाँ
बरसीं क्या निःस्वर
सुरधनुओं - सी भू पर ?
जब अंत स्वर्णिम शिखरों पर
उतरा अति आभा का जलधर,
ज्वलित तडिल्लेखाओं से कर
झंकृत सूक्ष्म विश्व का अम्बर,
ध्यान मौन तब देव सप्त मरु से भास्वर
उड़ते थे क्या निश्चल, परम चेतना नभ पर ?

मनश्चेतना के ज्योत्स्ना जीवी इस जग में
बिखराते लघु तारक आभा जिसके मग में,
नत मस्तक हो, ध्यान मग्न यह पद्म अरिचम
मानस जल में रह अलिप्त, नित करता चिंतन,—
निज शोभा स्वर्णिम प्रभात में उसके लोचन
देव खोल दें, करुणा-कर से ज्योतित कर मन,—
करता श्रद्धा प्रीति से नमन!

गीत पंग बंदी अलि उसके अंतर में स्थित
मुक्ति माँगता, अंतमधु करने को संचित,—
निज स्वर में भर कर स्वर्गिक मधु वैभव नूतन,
गा गा, वह कर सके देव को हृदय समर्पण,—
स्वीकृत हो यह प्रणत निवेदन!

३५

स्वप्न-पूजन

स्वप्नों के यौवन से भर दो हे,
मेरा मन,
शोभा की ज्वाला में लिपटा
मेरा जीवन!

मेरे भावों के सतरँग स्तर
बाँधें स्वर्ग धरा का अंतर
जीवन की आकुल लहरों पर
ध्यान स्थित हो मेरा आसन!
अमर स्पर्श से खोलो हे
उर का वातायन,
प्राणों के सौरभ से पुलकित
कर मेरा तन!

श्रद्धानत मेरा मन निश्चित
करे शिखर-सा ऊर्ध्व गमन नित,
बरसें आशीर्वाद-सी अमित
उस पर तेरी स्वर्ण स्मित किरण!
मेरे कर्म वचन मन हों शुचि
तेरे पूजन,
स्वप्नों से दीपित कर दो हे
उर का प्रांगण!

३६

वह मानव क्या?

जिस आत्मा में हो नहीं प्रेम की अमर धार,
वह आत्मा क्या?
जो काट न सके मृत्यु बंधन!

जिस मन में तप की, मति में प्रतिभा की न धार,
वह मति मन क्या ?
जो कर न सकें सत्यालोचन !
जिन प्राणों में, जीवन में इच्छा की न धार,
वह जीवन क्या ?
जो कर न सके भव संघर्षण !
यदि भले बुरे का जगे इन्द्रियों में विचार,
यदि मन में छा जाये जीवन का अन्धकार,
यदि आत्मा को दे डुबा प्राण वासना ज्वार,
जीवन निरीह, संघर्ष विरत हो, निरुपचार !
तब ये सब क्या ?
इनका न प्रयोजन ! यही मरण !
वह मानव क्या ?
जो करे न अमरों संग विचरण !

३७

जिज्ञासा

किसकी लय में घूम घूम
बन गये स्वयं तुम भास्वर
ओ नीरव नीहार, ज्योति पिण्डों में
अगणित हँस कर !

कौन सत्य वह ? महाशून्य तुम
जिससे गर्भित हो कर
महा विश्व में बदल गये
धारण कर निखिल चराचर !

किसके बल से पंच भूत ये
सतत कर्म में तत्पर ?
शब्दित नभ, चल अनिल,
द्रवित जल, दीप्त अग्नि, भू उर्वर !

पद्म पत्र पर तुहिन स्वप्न - सा
हँसमुख चंचल सुन्दर
किसने जीवन का सम्मोहन
दिया मर्त्य भव में भर !
कौन मृत्यु के अन्ध तमस को
अमृत स्पर्श से छू कर
स्वर्ण चेतना में भर, जग का
करता नव रूपान्तर ?

इन प्रश्नों का मुझे नहीं
शब्दों में दो प्रिय, उत्तर,
तदाकार कर हृदय
सहज समझा दो हे करुणाकर!

३८

प्रकाश क्षण

जान मैं क्यों देखा करता
जो जन मन में चिर सुन्दर!

वह किस युग का था नव ग्रह
जिन युग सीमाओं का विभ्रम?
अब भेद विवतन युग का तम
आते प्रकाश क्षण निखर निखर!

वह व्यक्ति समाज जनित अन्तर
भू मन का स्थूल विभाजन भर,
वह एक चेतना रे अकूल
जो बनी बिन्दु गुम्फित सागर!

अब सूक्ष्म हो रहा नव विकसित,
अब व्यक्ति विश्व भी परिवर्तित,
हो रहा रजत मन स्वर्ण द्रवित
आ रहा धरा पर स्वर्ग उतर!

चेतन हिरण्य से अन्त स्मित
हो व्यक्ति समाज नवल कल्पित,
गत अह नव्य में हो मज्जित
चेतना ऊर्ध्व विचरे भू पर!

३९

करुणा धारा

आज उठा लो जन मन से
दुःस्मृति का अंचल,
मनुज चेतना से भू मन की
छाया श्यामल!

अतल मौन नयनों में डूबें
निखिल विश्व जीवन के अन्तर,
विहँस उठे आलोक कमल-सी
मुख शोभा मानस के जल पर,

आज बखेरो निज स्मिति की
पखड़ियाँ निश्छल!

शोभा के शिखरो पर उतरे
प्राणो की अभिलाषा नि स्वर,
भाव गौर चूडो पर विचरें
रहस स्वप्न अतर के सु दर,
आज खोल दो नवल
चेतना का वक्षस्थल !
मनुज प्रेम की बाँहो मे बँध
विस्मृत हो जगती के सुख दुख,
आज तुम्हारी करुणा धारा
मत्य धरा के प्रति हो उ मुख,
श्रद्धानत जन भाल उठे
पद रज से उज्ज्वल,
जीवन सु दरता से रक्तिम
रँग दे पद तल !

४०

रँग दो

रँग दो हे, रँग दो आकुल मन !
अमर रूप स्रष्टा, किरणो की
तूली से रँग दो उडते घन !
शशि से रग छाया प्रभ अतर,
क्षणप्रभा से इच्छा के पर,
बरसा दो उर के अम्बर मे
शोभा का नीरव सम्मोहन !
आशा का हो इ द्र चाप वर
इ द्र चाप मे स्वप्नो के शर,
विरह अश्रु का भाव जलद हो,
रग रहस्यो के हो गोपन !
रँग दो नव शोभा से लोचन,
प्रीति मधुरिमा से स्वर्णिम मन,
गीति चुम्बनो से मदिराधर
स्वण रुधिर से रँगो कर चरण !
उलट रश्मियो के सतरँग घट
रँग दो मेरा प्राणो का पट,
रँग रँग की पखडियो मे हँस
फूट पडे अतर का यौवन !
रँग जाये जो मेरा अतर
गोचर तुम बन सको अगोचर,
नव्य चेतना मे पावक कण
मैं कर सकू धरा पर वितरण !

४३

अंतर घन

बिजली कँप कँप उठती घन म,
प्राणो की अभिलाषा मन मे ।
तुम आभा देही वन जगती
तडित् चकित आशा के क्षण मे ।
बरस रहा स्मृतियो का बादल
लिपटा मन मे ममता कोमल,
स्वप्नो के पखो की छाया
फैला नीरव उर आँगन मे ।
यह आलोक मिला जीवन-तम,
प्रीति प्रतीति भरा सशय भ्रम,
विरह मिलन की मम व्यथा का
मन्द्र निनाद ध्वनित प्रतिक्षण म ।
सूक्ष्म वाष्प का यह अतर घन,
तेरी आभा से नव चेतन,
इन्द्र धनुष शोभा स मण्डित
गजन भरता हृदय गगन मे ।

४४

अमर स्पर्श

खिल उठा हृदय,
पा स्पर्श तुम्हारा अमृत अभय ।
खुल गये साधना के ब धन,
सगीत बना, उर का रोदन,
अब प्रीति द्रवित प्राणो का पण,
सीमाएँ अमिट हुइ सब लय ।
क्यो रहे न जीवन मे सुख दुख,
क्यो जन्म मत्यु से चित्त विमुख ?
तुम रहो दगो के जो सम्मुख
प्रिय हो मुझको भ्रम भय सशय ।
तन म आयें शशव यौवन
मन मे हो विरह मिलन के व्रण,
युग स्थितियो से प्रेरित जीवन,
उर रहे प्रीति म चिर तन्मय ।
जो नित्य अनित्य जगत का क्रम
वह रहे, न कुछ बदले, हो कम,
हो प्रगति ह्रास का भी विभ्रम,
जग से परिचय, तुमस परिणय ।

४१

शोभा जागरण

बरसो हे शोभा चेतन क्षण!
विश्व समीरण के स्पंदन में
लहराये सौंदर्य चिरंतन!
शोभा से आंदोलित हो जग,
शोभा में कुसुमित जीवन मग,
शोभा के स्मित छायातप का
क्रीड़ा स्थल हो मन का प्रांगण!
धुलें निखिल भू मन के कल्मष,
मुक्त बनें जीवन में परवश,
इच्छाओं के रण में विजयी
मन पर हो अंतप्रकाश क्षण!
सृजन करें नव भू शोभा जन,
जो अपूर्ण वह बने पूर्णतम,
जीवन शोभा हो जन चिंतन,
अंतर शोभा स्वप्न-जागरण!

४२

मानसी

रँग उठते भावों के बादल,
रेखा शशि सा दिखा सलज मुख
फिर फिर हो जाती तुम ओझल!
तुहिन अश्रु बाष्पों में कोमल
कुंद कली-सी लिपटी उज्ज्वल,
भरती तुम आकुल अंतर में
सुधा द्रवित ज्वाला स्मिति निश्छल!
बरस रहा नीरव सम्मोहन,
अँगड़ाता मन स्वप्नों का वन,
मधुर गुंजरण भर, अब बहता
प्राण समीरण सुख से चंचल!
उतर रहस्य विचरते गोपन,
पद चापों से कँपता निर्जन
तंद्रिल छाया की घाटी में
गा उठता अंतर जल कल-कल!
मौन मधुरिमा से भर अंतर,
आओ, मानसि, हृदय में उतर,
म्लान वेदना के आनन से
उठा करुण आँसू का अंचल!

४१

शोभा जागरण

बरसा है शोभा चेतन क्षण!
विश्व समीरण के स्पंदन में
लहराये सौंदर्य चिरंतन!
शोभा से आंदोलित हो जग,
शोभा में कुसुमित जीवन मग,
शोभा के स्मित छायातप का
क्रीड़ा स्थल हो मन का प्रांगण!
धुलें निखिल भू मन के कल्मष,
मुक्त बनें जीवन में परवश,
इच्छाओं के रण में विजयी
मन पर हो अंतःप्रकाश क्षण!
सृजन करें नव भू शोभा जन,
जो अपूर्ण वह बने पूर्णतम,
जीवन शोभा हो जन चिंतन,
अंतर शोभा स्वप्न-जागरण!

४२

मानसी

रँग उठते भावों में बादल,
रेखा शशि-सा दिखा सलज मुख
फिर फिर हो जाती तुम ओझल!
तुहिन अश्रु बाष्पों में कोमल
कुंद कली सी लिपटी उज्ज्वल,
भरती तुम आकुल अंतर में
सुधा द्रवित ज्वाला स्मिति निश्छल!
बरस रहा नीरव सम्मोहन,
अँगड़ाता मन स्वप्नों का वन,
मधुर गुंजरण भर, अब बहता
प्राण समीरण सुख से चंचल!
उतर रहस्य विचरते गोपन,
पद चापों से कँपता निर्जन
तंद्रिल छाया की घाटी में
गा उठता अंतर-जल कल-कल!
मौन मधुरिमा से भर अंतर,
आओ, मानसि, हृदय में उतर,
म्लान वेदना के आनन से
उठा करुण आँसू का अंचल!

४३

अंतर घन

बिजली वप कँप उठती घन म,
प्राणो की अभिलाषा मन मे ।
तुम आभा देही वन जगती
तड़ित् चकित आशा के क्षण म ।
बरस रहा स्मृतियो का बादल
लिपटा मन मे ममता कोमल,
स्वप्ना के पखा की छाया
फैला नीरव उर आँगन मे ।
यह आलोक मिला जीवन-तम,
प्रीति प्रतीति भरा सशय भ्रम,
विरह मिलन की मम व्यथा का
मन्द्र निनाद ध्वनित प्रतिक्षण म ।
सूक्ष्म बाष्प का यह अतर घन,
तेरी आभा से नव चेतन,
इन्द्र धनुष शोभा से मण्डित
गर्जन भरता हृदय गगन मे ।

४४

अमर स्पर्श

खिल उठा हृदय,
पा स्पर्श तुम्हारा अमत अभय ।
खुल गये साधना के बन्धन,
सगीत बना, उर का रोदन,
अब प्रीति द्रवित प्राणो का पण,
सीमाएँ अमिट हुईं सब लय ।
क्यो रह न जीवन मे सुख दुख,
क्यो जन्म मत्यु से चित्त विमुख ?
तुम रहो दृगो के जो सम्मुख
प्रिय हो मुझको भ्रम भय सशय !
तन म आयें शशव यौवन
मन म हो विरह मिलन के व्रण,
युग स्थितियो से प्रेरित जीवन,
उर रह प्रीति म चिर तन्मय ।
जो नित्य अनित्य जगत का क्रम
वह रह, न कुछ बदले हो कम
हो प्रगति ह्रास का भी विभ्रम
जग से परिचय, तुमसे परिणय ।

तुम सुदर से बन प्रति सुदर
ग्राग्रो ग्रतर मे ग्रतरतर,
तुम विजयी जो, प्रिय, हो मुझ पर
वरदान, पराजय हो निश्चय ।

४५

प्रीति परिणय

प्रिय, बनते तुम विरह प्रणय मे,
प्रलय सृजन के गीत हृदय मे ।
उर के वाष्प जलद कण झर झर
हँस उठते मोती बन सुदर,
तुहिन कणो का हार गूथतो
प्रात किरण तुम्हारी जय मे ।
जीवन का उठ कातर क्रदन
प्राणो को छू बनता गायन,
सुन मधुकर का प्रास गुजरण
खिलते मुकुल मौन विस्मय मे ।
वन फूलो से लिपटा मृदुल ग्रग
फूलो मे तन मन उठते रग,
विवश कर दिये तुमने सुख दुख
लाँघ प्रीति के चिर परिणय मे ।
नीचे सागर भरता गर्जन,
हँसता ऊपर चद्र विमोहन,
बढती आती जीवन बेला
ग्रमर प्रतीक्षा के विनिमय मे ।

४६

नव आवेश

जाग्रत मन से पहिले तुममे
मिल जाता ग्रतमन ।
जब तम मे डूबा रहता जग,
दृग ग्रपलक तकते निर्जन मग
तुम स्वप्नो के पग धर आते
ग्रतपथ से गोपन ।
बजते नि स्वर नूपुर ममर,
सुन पडते ग्रश्रुत वशी स्वर,
बुद्धि चकित रहती, बज उठता
उर मे स्वागत गायन ।
मूक रुदन बन जाता कूजन,
शात निखिल जीवन सघर्षण,

क्षण भंगुरता के आसन पर
दिखता मौन चिरंतन।
चिर परिचित यह मानव जीवन,
स्वप्न स्नात, लगता नव शोभन,
अंतरतम में जगता अविदित
एक अतुल आकर्षण।
शोभा पर शोभा पड़ती झर,
सहज रूप से कँपता अंतर,
मज्जित कर युग सीमाओं को
बहता अंतर्जीवन।
जब तक होगी क्रान्ति समापन,
वांछित होगा विश्व संगठन,
एक नवल आवेश करेगा
मानव अंतर धारण!

४७

स्वप्न गीत

(गर्भस्थ के प्रति)

आओ, प्यारे मुन्ना, आओ,
भू पर चन्दा से मुसकाओ,
नन्हे, आओ।
तुम स्वप्नों के पथ से आओ,
नव जीवन के रथ से आओ,
मुन्ना हो तो नयन जुड़ाओ,
मुनिया हो तो हृदय चुराओ।
झिलमिल करते जुगनू वन में,
बिजली छिपती दिपती घन में,
जगते तुम आशा से मन में
मधुर रूप धर हमें रिझाओ।
खेल रही लहरें चल जल में
लोट रही मृदु रज भूतल में,
स्वप्नों की छाया आँचल में
कँपती, उसको सत्य बनाओ।
भूल हृदय की मृदु धड़कन में,
फिर-फिर जग मन के लोचन में,
तुम रहस्य से गोपन क्षण में
लिपट मधुर प्राणों में जाओ।
स्रोत फूट पड़ता कलरव कर,
वंशी बज उठती मधुरव भर,
तुम नीरव स्मिति से मन को हर
निज क्रंदन किलकार सुनाओ।

आओ, खिलता कमल नाल पर,
आँख खोलती कली डाल पर,
आती नव मंजरि रसाल पर
फूल सदृश मुखड़ा दिखलाओ!

दूज रेख में उगो गगन पर,
ओस बूंद में उतरो, सुंदर,
जगो प्रात तारा में दृग हर,
नव बालारुण से मुसकाओ!

बादल से स्वातिज बन आओ,
पपीहरे की प्यास बुझाओ,
कोयल चाहेगी, संग गाओ,
मैना, प्यारा नाम बताओ!

वापी में नव तारक उज्ज्वल,
सीपी के उर में मुक्ताफल,
सुरँग फूल के अंचल में फल,
तुम गोदी में लाल, सुहाओ!

सुंदर तन से सुंदर तन धर,
दीपक से दीपक लौ-सा बर,
लहरी से लहरी से उठ कर
फिर नव जीवन क्रम दुहराओ!

शाश्वत से, लघु तन में सीमित,
रवि से, हिमकण में प्रतिबिम्बित,
जग से नयन मनी में अंकित,
पूनो से प्रतिपत बन आओ!

तुम अदम्य यौवन की आशा,
नारी जीवन की अभिलाषा,
प्राणों की ममता-परिभाषा,
मूर्तिमान नव तन धर लाओ!

आओ, तुम देखोगे गाँधी,
जिनसे हमें मिली आजादी
स्यात् तुम्हें पहनावें खादी,
आओ, अब न अधिक बिलमाओ!

तुम स्वतंत्र भारत में आओ,
मुक्त तिरंगे को फहराओ,
फिर फिर गाँधी की जय गाओ,
नव युग के संग चरण बढ़ाओ
नन्हे आओ!

× × ×

बाबू को पाओगे बंदर
मा को चित्र लिखी-सी सुंदर
आओ तुम विकसित नर बनकर
कुल दीपक, कुल रत्न कहाओ!

आओ राजा, आओ रानी,
तुम्हें बुलाती मौसी नानी,
तुम सच हो,—तुम नहीं कहानी,
पापा को आ नाच नचाओ!

'गांधी भवन,' मुबारकबादी!
कल की-सी घटना है शादी!
खुश होगी पर सुनकर दादी,
तुम पोते को गोद खिलाओ!
मुन्ने आओ!

४८

त्रिवेणी

(तापसी)

तीर्थराज जो जन संस्कृति का केन्द्र प्रतिष्ठित
उस प्रयाग से कौन नहीं भारत में परिचित?

शुभ्र नील लहरों का जहाँ स्फुरत्प्रभ संगम,
अक्षयवट, ऋषि भरद्वाज का विश्रुत आश्रम!

गंगा यमुना सरस्वती की निर्मल वेणी
मिलकर बनती जहाँ पुण्य जल प्रथित त्रिवेणी!

रश्मि चपल शत छायाभाओं से जो गुम्फित,
युग युग के मू मानस पट सी लगती जीवित!

ऊर्मि मुखर अब गंगा यमुना गौर श्याम तन
सरस्वती के संग गोपन करती सम्भाषण!

लोक तारिणी गंगा अपनी कहती गाथा,
ताप हारिणी, हरती जो जन-मन की बाधा!

लो, वह आती, बजते चल किरणोज्ज्वल पायल,
टकराती संगीत लहरियाँ कल कल छल छल!

(गंगा)

मैं विष्णुपदी, मैं सुरसरिता,
मैं हरि चरणों से आयी,
मैं पुण्य त्रिपथगा, स्वर्गगा की
सुधा धार हूँ लायी!

शत रश्मि ज्वलित निर्झर सी उतरी
मैं शंकर के शिर पर
शोभा में लहरी, जटा शंकरी
कवियों से कहलायी!

मैं सगर वंश हित, विदित,
भगीरथ श्रम से आयी भू पर
स्वर्गीय तान सी जह्नु श्रवण में
पैठ सहज विनमायी!

मैं हिम तनया, मैं मेरु-आत्मजा
मनोरमा की दुहिता
मेरी धारा में जन-मन की
धारा अविराम समायी!

मेरे पुलिनों पर बस प्रथित जन तीर्थ,
ग्राम, पुर जनपद,
मेरे अंचल में मुक्ति मनुज ने
जन्म मरण से पायी!

मेरी लहरों के कम्पन में
शत शत हृदयों का स्पन्दन,
रवि शशि की किरणें भरती जिनमें
भ्रमरों की तरुणाई!

मैं उर्वर रखती धरती का उर
सूक्ष्म मृत्तिका भरकर,
मेरी करुणा, अंचल-सी जीवन
हरियाली में छायी!

आओ हे, अंतस्तल में डूबा,
धोओ मन के कल्मष,
निस्तल अकूल जीवन की
शाश्वत धारा यह लहरायी!

(तापसी)

बदल गया सहसा जल का फेनिल छाया पट,
छप छप टूट रहा चांदी-सा बालू का तट!

वेगवती यमुना अब आती रंगस्थल पर
निश्छल गंगा लेती उसको बाँहों में भर!

क्रंदन करता रह-रह उसका आकुल अंतर,
सुनिए उसके अश्रु द्रवित वंशी के से स्वर!

(यमुना)

मैं सूर्य सुता, मैं यम भगिनी कहलाती
मैं तुमसे मिलते, धीरे आज लजाती!

मेरे तट पर थे रास रचे मोहन ने,
अब तक अस्फुट किंकिणियों की ध्वनि आती!

जल मे शात तडित लताम्रो-सी सुदरिया
तिरती थी, कल क्रीडा करती, इठलाती।
जिनकी देखा-देखी ये चचल लहरें
शोभा ग्रीवा मटकाती, भ्रकुटि नचाती।
मेरे कलरव म गूज रहे मुरली स्वर
स्वप्नो की छाया आचल मे छहराती।
युग युग की वे नीरव सगीत हिलोरें
मेरे उर म हा-हा भर हृदय कँपाती।

(गगा)

सखि, धीर धरो, तुम शात करो अपना मन,
तुमस मिलकर परिपूर्ण हुआ भू जीवन।
सुख दुख पुलिनो म बहती मानस धारा
नश्वर जग मे अनुभव अविनश्वर थाती।
परिवर्तित विकसित होता जग जीवन क्रम,
विपदा सम्पदा न रहती कभी चिरतन।
तेरे उर मे बहता युग युग का सचय
यह निस्तल नील गम्भीर धार बतलाती।
तू ज्ञान सभ्यता सस्कृति की स्रोतस्विनि,
जीवन मुक्ता, सयुक्ता, प्रीति तरगिणि!
इस मम व्यथा पर भू सुख सकल निछावर
तू श्याम विरह मे छल छल अश्रु बहाती।

(तापसी)

यमुना मन के भाव सखी से नही छिपाती
वह अपने आक्रोश रोष की कथा सुनाती।
उसके उर मे सुलग रही अब दारुण ज्वाला,
वह विद्रोहिणि, वेग न जाता उग्र सँभाला।

(यमुना)

सखि! तुमको पा कृतकृत्य हुआ मेरा मन
वह सुख ये मुखर हिलोर नही वह पाती।
मैं पार कर चुकी गिरि प्रातर, बीहड वन
कूलो की कटु सीमाम्रो से टकराती।
मैं धीर धरित्री का निमम वक्षस्थल
अवचेतन की अँधियाली-सी लहराती।

गुंजन भरता अहरह यह उद्वेलित मन,
मेरे अंतर में क्रांति चतुर्दिक गाती !

दीनों दुखियों के मनस्ताप से मंथित
मैं प्रलय बाढ़ बन युग के पुलिन डुबाती !

मैं सुख स्पर्शों में पली, मर्म - आहत हो,
नागिन - सी उठ, फेनों के फन फैलाती !

युग संगम हो जन - जन के मन का संगम
मैं भू मन में फिर ज्वार अदम्य उठाती !

(तापसी)

गंगा जी गम्भीर गिरा कहती यह सुनकर
हरि चरणों का प्रीति स्रोत है उनके भीतर !

(गंगा)

तुम दुर्दम सूर्य सुता हो, संज्ञा - जाता,
दीनों का दुख कब तुमसे देखा जाता ?

अमरों की शांति लिये यह मेरी धारा,
तुम मेरे उर में नव प्रेरणा जगाती !

मैं सुनती हूँ अपने भीतर अश्रुत स्वर
स्वर्णिम नूपुर ध्वनि भरती निःस्वर मर्मर !

वह सुनो, मौन अम्बर में जगता गुंजन,
यह कौन - उषा सी नव अरुणोदय लाती ?

(तापसी)

गंगा यमुना के संगम का धर पावन तन
सरस्वती का होता अंत स्फुरित अवतरण !

वह अदृश्य, केवल जन मन संगम में गोचर,
विश्व समागम से अतीत, शाश्वत, लोकोत्तर !

सुनिए उर उर में अब उसके चिर नीरव स्वर,
वह इंद्रिय अग्राह्य, अनिर्वचनीय, सूक्ष्मतर !

(सरस्वती)

मैं अन्त सलिला, चिर विमला,
अंतर्मुख धारा हूँ अचपल,
मैं मन शिखर से स्वत निःसर
बहती निःस्वर, भर अंतजल !

धर ऊर्ध्व चरण, शत गूढ़ किरण,
करती रहस्य पथ से विचरण,

अन्तर प्लावन भरती प्रतिक्षण
मैं ज्ञान-गहन कर अन्तस्तल।

चेतना ज्वार-सी दुर्निवार
मैं विश्व पुलिन करती मज्जित,
लहराकर, डुबा निखिल अन्तर,
बढ़ती अकूल निस्तल निर्मल।

(तापसी)

कालिन्दी की क्षुब्ध तरंगें क्रोध से सिहर
प्रश्न पूछतीं, सरस्वती का सम्बोधन कर।

(यमुना)

तुम छाया हो अथवा माया?
मैं तुमको समझ न पाती।
तुम सच कहती, क्या तुम बहती?
क्यों प्रकट नहीं हो जाती?

फेनिल उच्छल, बढ़कर कल कल
क्यों गरज न तुम लहराती?
गिरि गहन चीर गति से अधीर
भू पथ क्यों नहीं बनाती?

ऋजु कुंचित जग का मग निश्चित,
पग पग पर बाधा अगणित,
छिपती भीतर, आकर बाहर
जन दुख क्यों नहीं बँटाती?

(सरस्वती)

मैं कहने आयी, रुको, रुको,
गति ही में मत बह जाओ,
ओ इच्छा से पागल सरिते,
सोचो, मन को समझाओ।

तुमने बाहर बाहर बढ़कर
हो पार किये गिरि कानन,
पर बढ़ता भीतर हृदय रुदन,
मुझसे मत भेद छिपाओ।

तुम उद्वेलित, आकुल, अशान्त,
शत आवेशों से मथित,
तुम आवर्तों में घूम रहीं,
मुझको मत मार्ग सुझाओ।

तुम क्रुद्ध रुद्ध नित उफनाती,
टकराती, रँग रँग जाती,

मुझको भय है, तुम अतल गर्त में
वहीं न हो गिर जाओ!

भीतर देखो, भीतर है मति,
बाहर गति, अन्धी गति है,
तुम शान्त धीर गंगा में मिल
गति को गम्भीर बनाओ!

(गंगा)

मेरी भी यह चिर अभिलाषा
जन संगम बने सनातन,
हो विश्व समागम, हिल मिलकर
विकसित वर्धित हो जन मन!

इस हृदय मिलन में अवगाहन कर
भू मन हो चिर पावन,
बाहर भीतर जड़ चेतन मय
जीवन हो पूर्ण प्रतिक्षण!

गंगा यमुनी जीवन धारा
नित बहे अबाध चिरन्तन,
संयुक्त हृदय, संयुक्त कर्म हो
जन मंगल के साधन!

(तापसी)

गंगा यमुना गाती जीवन मंगल गायन,
फेन हार रच, सरस्वती को करतीं अर्पण!

(गंगा यमुना)

भू मंगल हो, भव मंगल हो
जीवन शोभा से उर्वर जग,
प्रीति द्रवित जन अन्तस्तल हो!
जन मंगल हो, जग मंगल हो!

जब जब पंकिल हो जीवन तट,
तमस रुद्ध मानव उर के पट,
करुणा धारा-सी अंतर से
फूटो तुम भू मग उज्ज्वल हो!

विस्तृत मुक्त मिले पथ बाहर,
पूर्ण अगाध बहे जल भीतर,
मुखरित जग जीवन प्रवाह नित,
श्यामल धरणी का अंचल हो!

सकल स्रोत मिल एक धार हो
लोक समागम आर-पार हो
ज्ञान शक्ति संचय अपार हो,
युग का युद्ध अनल शीतल हो!

युगवाणी

[प्रथम प्रकाशन वर्ष १९३९]

कवि श्री निरालाजी को

दृष्टिपात

'युगवाणी' का तीसरा संस्करण पाठकों के सामने प्रस्तुत है। इसमें मैंने 'युगवाणी' के वक्तव्य के सम्बन्ध में दो शब्द लिखकर, पाठकों की सुविधा के लिए, युग दर्शन के प्रमुख तत्त्वों पर भी प्रकाश डाला है।

'युगवाणी' को मैंने गीत गद्य इसलिए नहीं कहा है कि उसमें काव्य-रमणीयता का अभाव है, प्रत्युत, उसका काव्य प्रच्छन्न, अनलंकृत तथा विचार भावना प्रधान है। युग के खण्डहर पर 'युगवाणी' का काव्य सौंदर्य प्रभात के ईषत् स्वर्णिम आतप की तरह बिखरा हुआ है, जिसे कला प्रेमी, ध्वंस के ढेर से दृष्टि हटाकर, सहज ही देख सकते हैं।

'युगवाणी' की भाषा सूक्ष्म है, उसमें विश्लेषण का सौंदर्य है। जिस परम्परागत मधुवन को हम 'पल्लव' के मर्मर की लज्जारुण और फूलों के रंग गुंजन में यौवन गर्वित देखते आये हैं उसकी दक्षिण पवन (काव्य प्रेरणा?) शिशिर में ठण्डी उसासें भर, आज ढेर-ढेर पीले-पुराने पत्तों को युग-परिवर्तन की आँधी में उड़ाकर,—जैसे, उन टूटते हुए स्वप्नों पर स्थिर चरण न रख सकने के कारण ही प्रलय नृत्य करती हुई—नयी संस्कृति के बीज बखेर रही है! 'युगवाणी' में आप टेढ़ी मेढ़ी पतली ठूँठी टहनियों के जाल दूर तक फैला हुआ वासांसि जीर्णानि विहाय सौंदर्य देखेंगे, जिससे नवप्रभात की सुनहली किरणें बारीक रेशमी जाली की तरह लिपटी हुई हैं, जहाँ शाखा के झरते हुए अश्रु आगत स्वर्णोदय की आभा में हँसते हुए-से दिखायी देते हैं, जहाँ शाखा प्रशाखाओं के अन्तराल से—जिनमें अब भी कुछ विवर्ण पत्ते अटके हुए हैं—छोटे-बड़े, तरह-तरह के, भावनाओं के नीड़, जाड़े की ठिठुरती काँपती हुई महानिशा के युग व्यापी त्रास से मुक्त होकर नवीन कोंपलों से छनते हुए नवीन आलोक तथा नवीन उष्णता का स्पर्श पाकर फिर से सजीव मुखर होने का प्रयत्न कर रहे हैं।

पत्ते की मांसल हरियाली को जब कीड़े चाट जाते हैं, उसकी सूक्ष्म स्नायुओं में बुनी हुई हथेली का कला विन्यास जिस प्रकार देखने वालों को आश्चर्यचकित कर देता है उसी प्रकार की मिलती जुलती हुई सौंदर्य संप्राप्ति की झाँकी आप 'युगवाणी' में भी पायेंगे। तब आप सहज ही युगवाणी के स्वरों में कह उठेंगे

सदियों से आया मानव जग में यह पतझर!

और,—

जीवन वसंत तुम, पतझर बन नित आती,
अपरूप, चतुर्दिक सुंदरता बरसाती!

'युगवाणी' में प्रकृति सम्बन्धी कविताओं के अतिरिक्त, जो मेरी अन्य

दृष्टिपात

'युगवाणी' का तीसरा सस्करण पाठको के सामने प्रस्तुत है। इसमे मैंने 'युगवाणी' के कलापक्ष के सम्बन्ध मे दो शब्द लिखकर, पाठको की सुविधा के लिए, युग दर्शन के प्रमुख तत्त्वो पर भी प्रकाश डाला है।

'युगवाणी' को मैंने गीत गद्य इसलिए नही कहा है कि उसमे काव्यात्मकता का अभाव है, प्रत्युत उसका काव्य अप्रच्छन्न, अनलकृत तथा विचार भावना प्रधान है। युग के खण्डहर पर 'युगवाणी' का काव्य सौन्दर्य प्रभात के ईषत् स्वर्णिम आतप की तरह बिखरा हुआ है, जिसे कला प्रेमी, ध्वस के ढेर से दृष्टि हटाकर, सहज ही लख सकते हैं।

'युगवाणी' की भाषा सूक्ष्म है, उसमे विश्लेषण का सौन्दर्य है। जिस परम्परागत मधुवन को हम पल्लवो के मर्मर से लज्जारुण और फूलो के रग गुजन मे यौवन गर्वित देखते आये है उसकी स्वप्निल पवन (काव्य प्रेरणा?) शिशिर मे ठण्डी उसासें भर, आज ढेर-ढेर पीले-पुराने पत्तो को युग परिवर्तन की आधी मे उड़ाकर,—जैसे, उन टूटते हुए स्वप्नो पर स्थिर चरण न रख सकने के कारण ही प्रलय नृत्य करती हुई— नयी सस्कृति के बीज बखेर रही है। 'युगवाणी' मे आप टेढ़ी मेढी पतली ठूठी टहनियो के वन का दूर तक फैला हुआ वासासि जीर्णानि विहाय सौन्दय देखेंगे, जिससे नवप्रभात की सुनहली किरणें बारीक रेशमी जाली की तरह लिपटी हुई हैं, जहाँ ओसा के झरते हुए अश्रु आगत स्वर्णोदय की आभा मे हँसते हुए-से दिखायी देते हैं, जहाँ शाखा प्रशाखाओ के अतराल से—जिनमे अब भी कुछ विवर्ण पत्ते अटके हुए हैं—छोटे-बडे, तरह तरह के, भावनाओ के नीड, जाडो की ठिठरती कापती हुई महानिशा के युगव्यापी त्रास से मुक्त होकर नवीन कोपलो से छनते हुए नवीन आलोक तथा नवीन उष्णता का स्पर्श पाकर फिर से सगीत मुखर होने का प्रयत्न कर रहे हैं।

पत्ते की मासल हरियाली को जब कीडे चाट जाते है, उसकी सूक्ष्म स्नायुओ से बुनी हुई हथेली का कला-विन्यास जिस प्रकार देखने वालो को आश्चर्यचकित कर देता है उसी प्रकार की मिलती जुलती हुई सौन्दर्य सक्रान्ति की झाकी आप 'युगवाणी' मे भी पायेंगे। तब आप सहज ही युगवाणी के स्वर मे कह उठेंगे

> सदियो से आया मानव जग मे यह पतझर।

और,—

> जीवन वसन्त तुम, पतझर बन नित आती,
> अपरूप, चतुर्दिक सुन्दरता बरसाती।

'युगवाणी' मे प्रकृति सम्बन्धी कविताओ के अतिरिक्त, जो मेरी अन्य

प्राकृतिक रचनाओं की तुलना में अपनी विशेषता रखती हैं,—मुख्यतः पाँच प्रकार की विचारधाराएं मिलती हैं

(१) भूतवाद और अध्यात्मवाद का समन्वय, जिससे मनुष्य की चेतना का पथ प्रशस्त बन सके।

(२) समाज में प्रचलित जीवन मान्यताओं का पर्यालोचन एवं नवीन संस्कृति के उपकरणों का संग्रह।

(३) पिछले युगों के उन मृत आदर्शों और जीर्ण रूढ़ि रीतियों की तीव्र भर्त्सना, जो आज मानवता के विकास में बाधक बन रही हैं।

(४) मार्क्सवाद तथा फ्रॉयड के प्राणिशास्त्रीय मनोदर्शन का युग की विचारधारा पर प्रभाव जन समाज का पुनः संगठन एवं दलित लोक समुदाय का जीर्णोद्धार।

(५) बहिर्जीवन के साथ अंतर्जीवन के संगठन की आवश्यकता राग भावना का विकास तथा नारी जागरण।

'युगवाणी' की कुंजी उसकी 'बापू' शीर्षक पहली कविता में है,—

भूतवाद उस धरा स्वर्ग के लिए मात्र सोपान,
जहाँ आत्म दर्शन अनादि से समासीन अम्लान।

मानव जीवन एवं समाज का रूपांतर करने तथा पृथ्वी पर मानव स्वर्ग बसाने का वस्तु स्वप्न नवीन युग की भावात्मक देन है। मध्ययुग के दार्शनिकों ने जिस प्रकार बाह्य जीवन सत्य की अवहेलना कर जगत् को माया या मिथ्या कहा है और आधुनिक भूतदर्शन जिस प्रकार अंतर्जीवन सत्य की उपेक्षा कर उसे बहिर्जीवन के अधीन रखना चाहता है, 'युगवाणी' में इन दोनों एकांगी दृष्टिकोणों का खण्डन किया गया है।

लोक कल्याण के लिए जीवन की बाह्य (सम्प्रति राजनीतिक आर्थिक) और आभ्यंतरिक (सांस्कृतिक आध्यात्मिक) दोनों ही गतियों का संगठन करना आवश्यक है। मात्रा और गुण दोनों में संतुलन होना चाहिए। जहाँ एक ओर असंख्य नंगे भूखों का उद्धार करना जरूरी है वहाँ पिछली संस्कृतियों के विरोधों एवं रीति-नीतियों की शृंखलाओं से मुक्त होकर मानव चेतना को युग उपकरणों के अनुरूप, विकसित लोक जीवन निर्माण करने में संलग्न होना है।

'युगवाणी' को विश्वमूर्ति कहा है, जिससे वह जातिगत मन से मुक्त होकर विश्वमन एवं युग के लोकमन को अपने स्वरों में मूर्त कर सके, मनुष्य की अंतर्चेतना में जो सत्य अभी अमूर्त है उसे रूप दे सके, जीवन सौंदर्य की जो मानसी प्रतिमा आज अंतर्मन में विकसित हो रही है उसे भौतिक जीवन में साकार कर सके, और हमारा मन स्वर्ग पृथ्वी पर उतर आये। कहीं-कहीं भावी जीवन की कल्पना प्रत्यक्ष हो उठी है। यथा, अब छंदों और प्रासों में सीमित कविता विश्व जीवन के रूप में बहने लगी है, मानव जीवन ही काव्यमय बन गया है कलात्मक भाव जीवन की वास्तविकता में बँध गये हैं। ऐसे संसार में, जहाँ सांस्कृतिक शक्तियाँ उन्मुक्त हो गयी हैं अब जीवन संघर्ष एवं समाज निर्माण का श्रम सुखद सुंदर लगता है।

इस युग के असंगठित जीवन को अन्धकार कहा है, संगठित मन को प्रकाश। विकसित व्यक्तिवाद के साथ ही विकसित समाजवाद का

विशेष महत्त्व दिया है, जिससे देव बनने के एकांगी प्रयत्न में हम मनुष्यत्व से विरक्त होकर सामाजिक जीवन में पशुओं से भी नीचे न गिर जायें, देवत्व को आत्मसात् कर हम मनुष्य बने रहें और मानव दुर्बलताओं के भीतर से अपना निर्माण एवं विकास कर सकें। नवीन समाज की परिस्थितियां हमें आदर्शों की ओर ले जाने वाली हों। हमारा मन युग के छायाभावों से सन्त्रस्त न रहे, हम आज के मनुष्य की चेतना को, जो खण्ड युगों की चेतना है, विकसित विश्व परिस्थितियों के अनुरूप संगठन एवं निर्माण कर सकें।

अपने देश में जनसाधारण के मन में जीवन के प्रति जो खोखले वैराग्य की भावना घर कर गयी है उसका विरोध कर नवीन सामाजिक परिस्थितियों के आधार पर नवीन मानसिक जीवन प्रतिष्ठित करने पर जोर दिया गया है। भौतिक विज्ञान के विकास के कारण भू रचना के जिस भावात्मक दर्शन का इस युग में आविर्भाव हुआ है उसे युगदर्शन का एक मुख्य स्तम्भ माना है।

मध्ययुग आत्मदर्शन या आत्मवाद का सक्रिय, संगठित एवं सामूहिक प्रयोग नहीं कर सका। तब भौतिक विज्ञान इतना समुन्नत नहीं था, वाष्प, विद्युत, रश्मि आदि मानव-जीवन के वाहन नहीं बन सके थे। जीवन की बाह्य परिस्थितियां एक सीमा तक विकसित होने के बाद निष्क्रिय और जड़ हो गयी थीं। मध्ययुगीन विचारकों, सन्तों एवं साधुओं के लिए यह स्वाभाविक ही था कि वे विश्व संचरण के प्रति निरीह होकर (मायावाद मिथ्यावाद आदि जिसके दुष्परिणाम हैं) व्यक्ति से सीधे परात्पर की ओर चले जायें। उनके नैतिक उन्नयन के प्रयत्न भगीरथ प्रयत्न कहे जा सकते हैं पर वे राम प्रयत्न या कृष्ण प्रयत्न (जिन्हें राम कृष्ण अवतरण कहना उचित होगा) नहीं थे, जिनके द्वारा विश्व संचरण में भी प्रकारान्तर या युगान्तर उपस्थित हो सकता और जिनकी विकसित चेतना विश्व जीवन के रूप में संगठित एवं प्रतिष्ठित हो सकती। वर्तमान युग, नैतिक उन्नयन से अधिक, इसी प्रकार के बहिर् अन्तर रूपान्तर की प्रतीक्षा करता है।

रूप सत्य और कर्म के मन से मेरा अभिप्राय लोक जीवन के संगठित रूप से और संस्कृति के रूप में संगठित मन से है। पिछले जीवन के संगठित सत्य (संस्कृति) को जिसके मूल केवल मध्ययुग की चेतना के आकाश में हैं लोकसंग्रह से प्राणशक्ति ग्रहण करने के लिए अधोमूल बन जाना है, फिर से नीचे से ऊपर की ओर उठना है। गीता में जिस विश्व अश्वत्थ को ऊर्ध्वमूलमधः शाख कहा है वह आध्यात्मिक दृष्टिकोण है जिसके अनुसार विश्वमन (अधिमन) एवं जीवन का समस्त सत्य विज्ञान भूमि में बीज रूप में संचित है, जहां से वह जगत जीवन में अवतरित एवं प्रस्फुटित होता है। 'युगवाणी' में, अवतरण और विकास, दोनों संचरणों को महत्त्व दिया है। इसी प्रकार का समन्वय पाठकों को 'ज्योत्स्ना' में भी मिलेगा।

संक्षेप में मैंने मार्क्सवाद के लोक संगठन रूपी व्यापक आदर्शवाद और भारतीय दर्शन के चेतनात्मक ऊर्ध्व आदर्शवाद दोनों का संश्लेषण करने का प्रयत्न किया है। भारतीय विचारधारा भी सत्य, त्रेता, द्वापर

कलियुग के नामो से प्रादुर्भाव, निर्माण, विकास और ह्रास के वृत्त सचरणो पर विश्वास रखती है। अत नवीन युग की भावना केवल कपोल कल्पना नही है। पदार्थ (मैटर) और चेतना (स्पिरिट) को मैंने दो किनारो की तरह माना है जिनके भीतर जीवन का लोकोत्तर सत्य प्रवाहित एव विकसित होता है। भविष्य मे जब मानव जीवन विद्युत और अणु शक्ति की सबल टाँगो पर प्रलय वेग से दौडने लगेगा तब आज के मनुष्य की तर्कों वादो मे बिखरी हुई चेतना उसका सचालन करने मे किसी तरह भी समर्थ नही हो सकेगी। इसलिए सामाजिक जीवन के साथ ही मनुष्य की अन्तश्चेतना मे भी युगान्तर होना अवश्य भावी है।

इस युगविवर्तन मे अनेक अभावात्मक एव विरोधी शक्तियाँ भी काम कर रही हैं जो हमारे पिछले सामाजिक सम्बन्धो की प्रतिक्रियाएँ हैं। वर्तमान राजनीतिक आर्थिक आन्दोलन इन्ही विरोधो को दबाने एव नवीन भाव परिस्थितियो का निर्माण करने के लिए जन्म ले रहे है। एक विरोधी तत्त्व और भी है जो इनसे सूक्ष्म है। वह है मनुष्य का रागतत्व, जो पिछले युगो के सस्कारो से रजित और सीमित है। इस रागतत्व को अपने विकास के लिए भविष्य मे अधिक ऊर्ध्व एव व्यापक धरातल चाहिए। वर्तमान नारी जागरण और नारी मुक्ति के आन्दोलन उस धरातल पर पहुचने के लिए सोपान मात्र हैं। राग सम्बन्धी आन्दोलन एक प्रकार से अभी अविकसित और पिछडा हुआ है। प्राणि शास्त्रीय मनोविज्ञान उस पर केवल आशिक प्रकाश डालता है। मनुष्य स्वभाव को सस्कृत बनाने के लिए रागात्मिका प्रवृत्ति का विकास होना अनिवार्य है। वह एक मूल प्रवृत्ति है। इस वृत्ति के विकास से मनुष्य अपने देवत्व के समीप पहुच जायेगा और ससार मे नर नारी सम्बन्धी रागात्मक मान्यताओ मे प्रकारान्तर हो जायेगा। स्त्री पुरुष भौतिक विज्ञान शक्ति से सगठित भावी लोकतन्त्र मे रहने योग्य सस्कार विकसित प्राणी बन सकेंगे। तब शायद धरती की चेतना स्वर्ग के पुलिनो को छूने लगेगी। राग सम्बन्धी इस सचरण के लिए 'युगवाणी' मे यत्र-तत्र सकेत किया गया है।

मुझे विश्वास है कि इन दृष्टिकोणो से 'युगवाणी' को समझने मे पाठको को सुविधा होगी। दर्शन पक्ष के लिए आधुनिक कवि (भाग दो) की भूमिका को पढना भी उपयोगी सिद्ध होगा। इति।

प्रयाग २४ सितम्बर '४७ सुमित्रानन्दन पत

बापू !

किन तत्वों से गढ़ जाओगे तुम भावी मानव को ?
किस प्रकाश से भर जाओगे इस समरोन्मुख भव को ?
सत्य अहिंसा से आलोकित होगा मानव का मन ?
अमर प्रेम का मधुर स्वर्ग बन जायेगा जग जीवन ?
आत्मा की महिमा से मण्डित होगी नव मानवता ?
प्रेम शक्ति से चिर निरस्त हो जायेगी पाशवता ?
बापू ! तुमसे सुन आत्मा का तेजराशि आह्वान
हँस उठते हैं रोम हर्ष से, पुलकित होते प्राण !
भूतवाद उस धरा स्वर्ग के लिए मात्र सोपान
जहाँ आत्म दर्शन अनादि से समासीन अम्लान !
नहीं जानता, युग विवर्त में होगा कितना जन क्षय,
पर, मनुष्य को सत्य अहिंसा इष्ट रहेंगे निश्चय !
नव संस्कृति के दूत ! देवताओं का करने कार्य
मानव आत्मा को उबारने आये तुम अनिवार्य !

युगवाणी

युग की वाणी,
हे विश्वमूर्ति, कल्याणी !
रूप रूप बन जाँय भाव स्वर,
चित्र गीत झंकार मनोहर,
रक्त मांस बन जाँय निखिल
भावना, कल्पना, बानी !
युग की वाणी !
आत्मा ही बन जाय देह नव,
ज्ञान ज्योति ही विश्व स्नेह नव,
हास, अश्रु, आशाऽकांक्षा
बन जाँय खाद्य, मधु पानी !
युग की वाणी !
स्वप्न वस्तु बन जाय सत्य नव,
स्वर्ग मानसी ही भौतिक भव,
अंतर जग ही बहिर्जगत
बन जावे, वीणापाणी !
युग की वाणी !

सब मुक्ति हो मुक्ति तत्त्व अब,
सामूहिकता ही निजत्व अब,
बने विश्व जीवन की स्वरलिपि
जन मन मम कहानी!
कवि की वाणी!

नव दृष्टि

खुल गये छन्द के बन्ध, प्रास के रजत पाश,
अब गीत मुक्त, औ' युग वाणी बहती अयास!
बन गये कलात्मक भाव जगत के रूप नाम,
जीवन संघर्षण देता सुख, लगता ललाम!
सुन्दर, शिव, सत्य कला के कल्पित माप मान,
बन गये स्थूल, जग जीवन से हो एकप्राण!
मानव स्वभाव ही बन मानव आदर्श सुकर
करता अपूर्ण को पूर्ण, असुन्दर को सुन्दर!

मानव!

जग जीवन के तम में
दैन्य, अभाव शयन में
परवश मानव!
बुन स्वप्नों के जाल
ढक दो विश्व-पराभव
कुत्सित गर्हित, घोर!
ऊर्णनाभ से प्राण
सूक्ष्म, अमर अंतर-जीवन का
तानें मधुर वितान,
देश काल के मिला छोर!
पशु-जीवन के तम में
जीवन रूप मरण में
जाग्रत मानव!
सत्य बनाओ स्वप्नों को
रच मानवता नव,
हो नव युग का भोर!

युग उपकरण

वह जीवित संगीत, लीन हो जिसमें जग-जीवन-संघर्ष,
वह शान्ति, मनुज-स्वभाव ही जिसका दोष शुद्ध निष्कर्ष!
वह [illegible]न सौंदर्य, सहन कर सके बाह्य वैरूप्य विरोध,
सक्रिय अनुकम्पा न घृणा का, कर घृणा ग[illegible]का परिशोध!

नम्र शक्ति वह, जो सहिष्णु हो, निबल को बल करे प्रदान
मूत प्रेम, मानव मानव हो जिसके लिए अभिन्न, समान!
वह पवित्रता, जगती के कलुषो से जो न रहे सन्त्रस्त,
वह सुख, जो सवत्र सभी के सुख के लिए रहे सन्यस्त!

ललित कला, कुत्सित कुरूप जग का जो रूप करे निर्माण,
वह दशन विज्ञान, मनुजता का हो जिससे चिर कल्याण!
वह सस्कृति, नव मानवता का जिसमे विकसित भव्य स्वरूप,
वह विश्वास, सुदुस्तर भव सागर मे जो चिर ज्योति-स्तूप!
रीति नीति, जो विश्व प्रगति मे बनें नही जड बन्धन पाश,
ऐसे उपकरणो से हो भव मानवता का पूण विकास!

नव सस्कृति

भाव कम मे जहा साम्य हो सन्तत,
जग जीवन मे हो विचार जन के रत!
ज्ञान वद्ध, निष्क्रिय न जहा मानव मन,
मत आदश न बन्धन, सक्रिय जीवन!
रूढि रीतिया जहा न हो आराधित,
श्रेणि वग मे मानव नही विभाजित!
धन बल से हो जहा न जन श्रम शोषण,
पूरित भव-जीवन के निखिल प्रयोजन!
जहा दैन्य जजर अभाव ज्वर पीडित
जीवन यापन हो न मनुज को गर्हित!
युग युग के छाया-भावो से त्रासित
मानव प्रति मानव मन हो न सशङ्कित!
मुक्त जहा मन की गति, जीवन मे रति,
भव मानवता मे जन-जीवन परिणति!
सस्कृत वाणी, भाव, कम, सस्कृत मन,
सुन्दर हो जन वास, वसन, सुन्दर तन!
ऐसा स्वग धरा मे हो समुपस्थित,
नव मानव सस्कृति किरणो मे ज्योतित!

पुण्य प्रसू

ताक रहे हो गगन?
मत्यु नीलिमा-गहन गगन?
अनिमेष, अचितवन, काल-नयन?—
निस्पन्द, शून्य, निजन, निस्वन?

देखो भू को!
जीव प्रसू को!
हरित भरित

पल्लवित मर्मरित
कूजित गुंजित
कुसुमित
भू को !

कोमल
चंचल
शाद्वल
अंचल,—
कल कल
छल छल
चल जल निर्मल,—

कुसुम खचित
मारुत सुरभित
खग कुल कूजित
प्रिय पशु मुखरित—

जिस पर अंकित
सुर मुनि वंदित
मानव पद तल !

देखो भू को,
स्वर्गिक भू को
मानव पुण्य प्रसू को !

चींटी

चींटी को देखा ?
वह सरल विरल, काली रेखा
तम के तागे-सी जो हिल डुल
चलती लघुपद पल पल मिल जुल,
वह है पिपीलिका पाँति !
देखो ना, किस भाँति
काम करती वह सतत ?
कन कन कनके चुनती अविरल !

गाय चराती,
धूप खिलाती,
बच्चों की निगरानी करती,
लड़ती, अरि से तनिक न डरती
दल के दल सेना सँवारती,
घर, आँगन, जनपथ बुहारती !
देखो वह वल्मीकि सुघर,
उसके भीतर हैं दुर्ग, नगर !

अद्भुत उसकी निर्माण-कला,
कोई शिल्पी क्या कहे भला।
उसमे हैं सौध, धाम, जनपथ,
आँगन, गो गृह भण्डार अकथ,
हैं डिम्ब सद्म, वर शिविर रचित,
डयोढी वहु, राजमार्ग विस्तृत।
चींटी है प्राणी सामाजिक,
वह श्रमजीवी, वह सुनागरिक।
देखा चींटी को ?
उसके जी को ?
भूरे बालो की-सी कतरन,
छिपा नही उसका छोटापन,
वह समस्त पृथ्वी पर निर्भय
विचरण करती, श्रम मे तन्मय,
वह जीवन की चिनगी अक्षय।
वह भी क्या देही है तिल सी ?
प्राणो की रिलमिल झिलमिल सी।
दिन भर मे वह मीलो चलती,
अथक, कार्य से कभी न टलती,
वह भी क्या शरीर से रहती ?
वह कण, अणु, परमाणु ?
चिर सक्रिय वह, नही स्थाणु।
हा मानव।
देह तुम्हारे ही है, रे शव।
तन की चिता मे घुल निशिदिन
देह मात्र रह गये, दबा तिन।
प्राणि प्रवर
हो गये निछावर
अचिर धूलि पर।।
निद्रा, भय, मैथुनाहार
—ये पशु लिप्साएँ चार—
हुईं तुम्हे सर्वस्व सार ?
धिक् मैथुन - आहार - यन्त्र।
क्या इन्ही बालुका - भीतो पर
रचने जाते हो भव्य, अमर
तुम जन समाज का नव्य तन्त्र ?
मिली यही मानव म क्षमता ?
पशु पक्षी, पुष्पो से समता ?
मानवता पशुता समान है ?
प्राणिशास्त्र देता प्रमाण है ?
बाह्य नही, आन्तरिक साम्य
जीवो से मानव को प्रकाम्य।

मानव को आत्म चाहिए,
संस्कृति, आत्मोत्कर्ष चाहिए,
बाह्य विधान उसे हैं बंधन
यदि न साम्य उनमें अंतरतम—
मूल्य न उनका चींटी के सम
वे हैं जड़, चींटी है चेतन!
जीवित चींटी, जीवन-वाहक,
मानव जीवन का वर नायक,
वह स्वतंत्र वह आत्म विधायक!

× × ×

पूर्ण तंत्र मानव, वह ईश्वर,
मानव का विधि उसके भीतर!

पतझर

रिक्त हो रही आज डालियाँ,—डरो न किंचित्,
रक्त पूर्ण, मांसल होंगी फिर, जीवन रंजित!
जन्मशील है मरण, अमर मर मर कर जीवन,
झरता नित प्राचीन, पल्लवित होता नूतन!
पतझर यह, मानव जीवन में आया पतझर,
आज युगों के बाद हो रहा नया युगांतर!
बीत गये बहु हिम, वर्षातप, विभव पराभव,
जग जीवन में फिर वसंत आने को अभिनव!
झरते हों, झरने दो पत्ते,—डरो न किंचित्,
नवल मुकुल मंजरियों से भव होगा शोभित!
सदियों में आया भारत जग में यह पतझर,
सदियों तक भोगोगे नव मधु का वैभव वर!

शिल्पी

इस क्षुद्र लेखनी से केवल करता मैं छाया लोक सृजन?
पैदा हो मरते जहाँ भाव, बुद्बुद विचार औ' स्वप्न सघन?
निर्माण कर रहे वे जग का जो जोड़ ईंट, चूना, पत्थर,
जो चला हथौड़े, घन, क्षण क्षण हैं बना रहे जीवन का घर?
जो कठिन हलों की नोकों से अविराम लिख रहे धरती पर?
जो उपजाते फल, फूल, अन्न, जिन पर मानव जीवन निर्भर?
इस अमर लेखनी से प्रतिक्षण मैं करता मधुर अमृत वर्षण,
जिससे मिट्टी के पुतलों में भर जाते प्राण, अमर जीवन!
निर्माण कर रहा हूँ जग का मैं जोड़ जोड़ मनुजों के मन
मैं काट काट बहु घृणा कलह रचता आत्मा का मनोभवन!

खर-कोमल शब्दों को चुन-चुन मैं लिखता जन जन के मन पर,—
मानव आत्मा का खाद्य प्रेम जिस पर है जग जीवन निर्भर!
मैं जग जीवन का शिल्पी हूँ जीवित मेरी वाणी के स्वर,
मैं मास-खंड पर जन मन के मुद्रित करता हूँ सत्य अमर!

दो लडके

मेरे आँगन मे, (टीले पर है मेरा घर)
दो छोटे से लडके आ जाते हैं अक्सर!
नगे तन, गदबदे, सावले, सहज छबीले,
मिट्टी के मटमैले पुतले,—पर फुर्तीले!

जल्दी से, टीले के नीचे, उधर उतरकर
वे चुन ले जाते कूडे से निधियाँ सुदर,—
सिगरेट के खाली डिब्बे, पन्नी चमकीली
फीतो के टुकडे, तस्वीरें नीली पीली

मासिक पत्रो के कवरो की, औ' बन्दर से
किलकारी भरते है, खुश हो-हो अन्दर से!
दौड पार आगन के फिर हो जाते ओझल
वे नाटे छ-सात साल के लडके मासल!

सुदर लगती नग्न देह, मोहती नयन मन,
मानव के नाते उर मे भरता अपनापन!
मानव के बालक हैं ये पासी के बच्चे,
रोम-रोम मानव, साँचे मे ढाले सच्चे!

अस्थि मास के इन जीवो का ही यह जग घर,
आत्मा का अधिवास न यह, वह सूक्ष्म, अनश्वर!
न्योछावर है आत्मा नश्वर रक्त-मास पर,
जग का अधिकारी है वह, जो है दुर्बलतर!

वह्नि, बाढ, उल्का, झझा की भीषण भू पर
कैसे रह सकता है कोमल मनुज कलेवर?
निष्ठुर है जड प्रकृति, सहज भगुर जीवित जन,
मानव को चाहिए यहाँ मनुजोचित साधन!

क्यो न एक हो मानव मानव सभी परस्पर
मानवता निर्माण करें जग मे लोकोत्तर?
जीवन का प्रासाद उठे भू पर गौरवमय,
मानव का साम्राज्य बने,—मानव हित निश्चय!

जीवन की क्षण धूलि रह सके जहा सुरक्षित
रक्त मास की इच्छाएँ जन की हो पूरित!
—मनुज प्रेम से जहाँ रह सकें,—मानव ईश्वर!
और कौन-सा स्वर्ग चाहिए तुझे धरा पर?

छाभा को ईपत उज्ज्वल कोमल तम धीरे घिर कर
दृश्य पटी को बना रहा गम्भीर, गाढ़ रँग भर भर।
मधुर प्राकृतिक सुषमा यह भरती विषाद है मन मे,
मानव की जीवित सुदरता नही प्रकृति दर्शन म।
पूर्ण हुई मानव अगो मे सुदरता नैसर्गिक
शत ऊषा सध्या स निर्मित नारी प्रतिमा स्वर्गिक।
भिन्न-भिन्न बह रही आज नर नारी जीवन धारा,
युग-युग के सैकत-कर्दम से रुद्ध,—छिन्न सुख सारा।

गगा का प्रभात

गलित ताम्र भव भृकुटि मात्र रवि
रहा क्षितिज स देख,
गगा के नभनील निकष पर
पडी स्वर्ण की रेख।
आर पार फले जल म
घुल कर कोमल आलोक
कोमलतम बन निखर रहा
लगता जग अखिल अशोक।

नव किरणा न विश्वप्राण म
किया पुलक सचार
ज्योति जडित बालुका पुलिन
हो उठा सजीव अपार।
सिहर अमर जीवन कम्पन स
खिल खिल अपन आप,
केवल लहराने को लहराता
लघु लहर कलाप।

सजन शीलता स अपनी ही
हो ज्यो अवश अकाम—
निरुद्देश्य जीवन धारा
बहती जाती अविराम।
देख रहा अनिमेष—हो गया
स्थिर, निश्चल, सरिता जल,
बहता हूँ मैं, बहते तट,
बहते तर क्षितिज, अवनि तल।

यह विराट भूतो का भव
चिर जीवन से अनुप्राणित,
विविध विरोधी तत्वो के
सघषण स सचालित।

निज जीवन के हित अगणित
प्राणी हैं इसके आश्रित,
मानव इसका शासक,—आतप,
अनिल, अन्न, जल शासित।

मानव - जीवन, प्रकृति - सरणि मे
जड विरोध कुछ निश्चित,
विजित प्रकृति को कर, उसने की
विश्व सभ्यता स्थापित।
देश, काल, स्थिति से मानवता
रही सदा ही बाधित,
देश, काल, स्थिति को वश मे कर
करना है परिचालित।

क्षुद्र व्यक्ति को विकसित होकर
बनना अब जन - मानव,
सामूहिक मानव को निर्मित
करनी अब संस्कृति नव।
मानवता के युग प्रभात मे
मानव - जीवन धारा
मुक्त प्रवाह बहे, मानव जग
सुख स्वर्णिम हो सारा।

मूल्यांकन

आज सत्य, शिव, सुन्दर करता
नही हृदय आकर्षित,
सभ्य, शिष्ट औ' संस्कृत लगते
मन को केवल कुत्सित।
संस्कृति, कला, सदाचारो से
अब - मानवता पीडित,
स्वर्ण - पीजडे मे बन्दी है
मानव आत्मा निश्चित।
आज असुन्दर लगते सुन्दर
प्रिय पीड़ित, शोषित जन
जीवन के दैन्यो से जर्जर
मानव - मुख हरता मन।
मूढ, असभ्य, उपेक्षित, दूषित
भू के उपकारक,
धार्मिक, उपदेशक पण्डित,
दानी हैं लोक - प्रतारक।
धर्म नीति औ' सदाचार का
मूल्यांकन है जन हित,

सत्य नही वह, जनता से जो
नही प्राण-सम्बंधित ।
आज सत्य, शिव, सुंदर केवल
वर्गों म हैं सीमित,
ऊर्ध्वमूल संस्कृति का होना
अधोमूल रे निश्चित ।

उद्बोधन

इस विश्री जगती मे कुत्सित
अंतर चितवन स चुन चुनकर
सार भाग जीवन का सुंदर
मानव ! भावी मानव के हित
जीवन पथ कर जाओ ज्योतित ।
अक्षय, शुद्ध, अपाप विद्ध जो
मानव उर का सत्य अपरिमित
उस रूप जग म कर स्थापित
भव जीवन कर जाओ निर्मित ।
क्षुद्र, घणित, भव - भेद - जनित
जो, उस मिटा, भव-संघ भाव भर
देश, काल औ' स्थिति के ऊपर
मानवता को करो प्रतिष्ठित ।
इस कुरूप जगती म कुत्सित
अंतर - बाह्य - प्रकृति पर पा जय,
नव विज्ञान ज्ञान कर संचय
मानव ! भावी मानव क हित
नव संस्कृति कर जाओ निर्मित ।

खोलो

रुद्ध हृदय के द्वार
खोलो फिर इस बार ।
मुक्त निखिल मानवता हो,
जीवन सौंदय प्रसार,—
खोलो फिर इस बार ।
युग-युग के जड़ अंधकार मे
बंदी जन - संसार
रूढ़ि-पाश मे बँधी मनुजता
करती पशु - चीत्कार !—
खोलो फिर इस बार ।
निमम कर आघात मम म
निष्ठुर तडित प्रहार

चूर्ण करो गत संस्कारों को,
लो जन प्राण उबार!—
खोलो फिर इस बार!

गूँज उठे जन-जग में जीवन
उर में प्रणय पुकार,
पुनः पल्लवित हो मानव-जग,
हो वसन्त, पतझार!—
खोलो फिर इस बार!

मार्क्स के प्रति

धन्य कथा, वीरों की गाथा, सत्य, नहीं इतिहास,
सम्राटों की विजय लालसा, ललना भृकुटि-विलास,
दैव नियति का निर्मम क्रीड़ा चक्र न वह उच्छृंखल
धर्म घृणा, नीति, संस्कृति का ही न मात्र समर स्थल!

साक्षी है इतिहास, किया तुमने दुंदुभि से घोषित,—
प्रकृति विजित कर, मानव ने की विश्व सभ्यता स्थापित!

विकसित हो बदले जब जब जीवनोपाय के साधन,
युग बदले, शासन बदले, कर गत सभ्यता समापन!
सामाजिक सम्बन्ध बने नव, अर्थ भित्ति पर नूतन
नव विचार नव रीति नीति, नव नियम, भाव, नव दर्शन!

साक्षी है इतिहास, आज होने को पुनः युगान्तर
श्रमिकों का अब शासन होगा उत्पादन यन्त्रों पर!

वर्ग हीन सामाजिकता देगी सबको सम साधन,
पूरित होंगे जन के भव जीवन के निखिल प्रयोजन!
दिग दिगन्त में व्याप्त निखिल युग युग का चिर गौरव हर,
जन संस्कृति का नव विराट प्रासाद उठेगा भू पर!

धन्य मार्क्स! चिर तमच्छन्न पृथ्वी के उदय शिखर पर,
तुम त्रिनेत्र के ज्ञान चक्षु-से प्रकट हुए प्रलयंकर!

भूत दर्शन

कहता भौतिकवाद, वस्तु जग का कर तत्वान्वेषण—
भौतिक भव ही एक मात्र मानव का अंतर दर्पण!

स्थूल सत्य आधार, सूक्ष्म आधेय, हमारा जो मन
बाह्य विवर्तन से होता युगपत अंतर परिवर्तन!

राष्ट्र, वर्ग, आदर्श, धर्म, गत रीति नीति औ' दर्शन
स्वर्ण पाश हैं मुक्ति योजना सामूहिक जन जीवन!

दर्शन युग का अंत अंत विज्ञानों का संघर्षण,
अब दर्शन विज्ञान सत्य का करता नव्य निरूपण!

नवोद्भूत इतिहास मूर्त सक्रिय, सकरण, जड चेतन
द्वंद्व रूप से अभिव्यक्ति पाता युग-युग में नूतन।

अन्त आज साम्राज्यवाद, धनपति वर्गों का शासन,
प्रस्तर युग की जीर्ण सभ्यता मरणासन्न, समापन।

साम्यवाद के साथ स्वर्ण युग करता मधुर पदार्पण,
मुक्त निखिल मानवता करती मानव का अभिवादन।

साम्राज्यवाद

परिवर्तन ही जग जीवन का नियम चिरन्तन, दुर्जय
साक्षी है इतिहास युगों का प्रत्यावर्तन अभिनय।

नृपतियों के, कुलपति, सामन्त, महन्तों के वैभव क्षण
मिटा गये बहु राज तन्त्र,—सागर में ज्यों बुद्बुद कण।
रजत स्वप्न साम्राज्यवाद का ले नयनों में शोभन
पूँजीवाद निशा भी है होने को आज समापन।

विविध ज्ञान, विज्ञान, कला, यन्त्रों का अद्भुत कौशल
जग को दे बहु जीवन साधन, वाष्प, रश्मि, विद्युत बल,
मरणोन्मुख साम्राज्यवाद कर वह्नि और विष वर्षण,
अन्तिम रण को है सचेष्ट, रच निज विनाश आयोजन।

विश्व क्षितिज में घिरे पराभव के हैं मेघ भयंकर,
नव युग का सूचक है निश्चय यह ताण्डव प्रलयंकर।
जन युग की स्वर्णिम किरणों में होगी भू आलोकित,
नव संस्कृति के नव प्ररोह होंगे शोणित से सिंचित।।

समाजवाद-गांधीवाद

साम्यवाद ने दिया विश्व को नव भौतिक दर्शन का ज्ञान
अर्थशास्त्र औ राजनीति गत विशद ऐतिहासिक विज्ञान।

साम्यवाद ने दिया जगत को सामूहिक जनतन्त्र महान,
भव जीवन के दैन्य दुःख से किया मनुजता का परित्राण।
अन्तर्मुख अद्वैत पड़ा था युग-युग से निष्क्रिय, निष्प्राण,
जग में उसे प्रतिष्ठित करने दिया साम्य ने वस्तु विधान।

गांधीवाद जगत में आया ले मानवता का नव मान,
सत्य अहिंसा से मनुजोचित नव संस्कृति करने निर्माण।
गांधीवाद हमें जीवन पर देता अन्तर्गत विश्वास,
मानव की निःसीम शक्ति का मिलता उसमें चिर आभास।

व्यक्ति पूर्ण बन, जग जीवन में भर सकता है नूतन प्राण,
विकसित मनुष्यत्व कर सकता पशुता से जन का कल्याण।

मनुष्यत्व का तत्व सिखाता निश्चय हमको गांधीवाद,
सामूहिक जीवन विकास की साम्य योजना है अविवाद !

संकीर्ण भौतिकवादियों के प्रति

हाड़ मांस का आज बनाओगे तुम मनुज समाज ?
हाथ पांव संगठित चलावेंगे जग जीवन काज !

दया द्रवित हो गये देख दारिद्र्य असंख्य तनों का ?
अब दुहरा दारिद्र्य उन्हें दोगे निरुपाय मनों का ?

आत्मवाद पर हंसते हो भौतिकता के रट नाम ?
मानवता की मूर्ति गढ़ोगे तुम संवार कर चाम ?

वस्तुवाद ही सत्य, मृषा सिद्धान्तवाद, आदर्श ?
बाह्य परिस्थिति पर आश्रित अन्तर जीवन उत्कर्ष ?

मानव ! कभी भूल से भी क्या सुधर सकी है भूल ?
सरिता का जल मृषा, सत्य केवल उसके दो कूल ?

आत्मा औ' भूतों में स्थापित करता कौन समत्व ?
बहिरन्तर, आत्मा भूतों से है अतीत वह तत्व !

भौतिकता, आध्यात्मिकता केवल उसके दो कूल,
व्यक्ति विश्व से, स्थूल-सूक्ष्म से परे 'सत्य के मूल !

धनपति

वे नृशंस हैं वे जन के श्रमबल से पोषित,
दुहरे धनी, जोंक जग के, भू जिनसे शोषित !
नहीं जिन्हें करनी श्रम से जीविका उपार्जित,
नैतिकता से भी रहते जो अत अपरिचित !
    शय्या की क्रीड़ा कंदुक है जिनको नारी,
    अहम्मन्य वे, मूढ़, अर्थबल के व्यभिचारी !
    सुरांगना, सम्पदा, सुराओं से संसेवित !
    नर पशु वे भू भार मनुजता जिनसे लज्जित !
दर्पी हठी निरंकुश निर्मम, कलुषित, कुत्सित
गत संस्कृति के गरल लोक जीवन जिनसे मृत !
जग जीवन का दुरुपयोग है उनका जीवन,
अब न प्रयोजन उनका अंतिम हैं उनके क्षण !

मध्य वर्ग

संस्कृति का वह दास विविध विश्वास विधायक,
शिक्षित ज्ञान विज्ञान नीतियों का उन्नायक !

उच्च वर्ग की सुविधा का शास्त्रोक्त प्रचारक,
प्रभु सेवक, जन वंचक वह, निज वर्ग प्रतारक।
भोग शील, धनिकों का स्पर्धी, जीवन प्रिय अति,
आत्म बद्ध, संकीर्ण हृदय, तार्किक, व्यापक मति।
पाप पुण्य सन्त्रस्त, अस्थियों का बहु कोमल,
वाक् कुशल, धी दर्पी, अति विवेक से निर्बल।
मध्यवर्ग का मानव, वह परिजन पत्नी प्रिय,
यशकामी, व्यक्तित्व प्रसारक, पर हित निष्क्रिय।
श्रमजीवी वह, यदि श्रमिकों का हो अभिभावक,
नव युग का वाहक हो नेता, लोक प्रभावक।

कृषक

युग-युग का वह भारवाह आकटि नत मस्तक,
निखिल सभ्य संसार पीठ का उसके स्फोटक।
वज्र मूढ़, जड़ भूत, हठी, वृष बांधव कर्षक,
ध्रुव, ममत्व की मूर्ति, रूढ़ियों का चिर रक्षक।
कर जर्जर, ऋण ग्रस्त, स्वल्प पैत्रिक स्मृति भू धन,
निखिल दैन्य, दुर्भाग्य, दुरित, दुख का जो कारण,
वह कुबेर निधि श्रम,-स्वेद सिंचित जिसके कण,
हर्ष शोक की स्मृति के बीते जहाँ अप मण।
विश्व विवर्तनशील, अपरिवर्तित वह निश्चल
वही खेत, गृह द्वार, वही वृष, हँसिया औ' हल।
स्थायर स्थितियों का शिशु, स्थावर, स्थाणु कूपीजल,
दीर्घसूत्र, अति दुराग्रही, सादर औ' वृपल।
है पुनीत सम्पत्ति उसे दैवी निधि निश्चित
सन्ततिवत गो वृषभ, गुल्म, तृण, तरु चिर परिचित।
वह संकीर्ण समूह-कृपण, स्वाश्रित, पर-पीड़ित,
अति निजस्व प्रिय, शोषित, लुण्ठित, दलित क्षुधार्दित।
युग-युग से निःसंग, स्वीय श्रमबल से जीवित,
विश्व प्रगति अनभिज्ञ, कूप-तम में निज सीमित।
कृषक का उद्धार पुण्य इच्छा है कल्पित,
सामूहिक कृषि कायाकल्प, अन्यथा कृषक मृत।

श्रमजीवी

वह पवित्र है वह जग के गर्भ में पोषित,
यह निर्माता श्रेणि, वर्ग धन, बल से शोषित।
मूढ़, अशिक्षित,—सभ्य शिक्षिता ने वह शिक्षित,
विश्व उपेक्षित,—शिष्ट समूहों में मनुजोचित।
दैन्य कष्ट कुण्ठित,—सुन्दर है उसका आनन
गन्दे गात बसन हों पावन श्रम का जीवन।

मनुष्यत्व का तत्व सिखाता निश्चय हमको गाँधीवाद,
सामूहिक जीवन विकास की साम्य योजना है अविवाद।

संकीर्ण भौतिकवादियों के प्रति

हाड़ मांस का आज बनाओगे तुम मनुज समाज?
हाथ पाँव संगठित चलावेंगे जग जीवन काज!

दया द्रवित हो गए देख दारिद्र्य असंख्य तनों का?
अब दुहरा दारिद्र्य उन्हें दीख निरुपाय मनों का?

आत्मवाद पर हँसते हो भौतिकता के रट नाम?
मानवता की मूर्ति गढ़ोगे तुम सँवार कर चाम?

वस्तुवाद ही सत्य, मृषा सिद्धान्तवाद, आदर्श?
बाह्य परिस्थिति पर आश्रित अन्तर जीवन उत्कर्ष?

मानव! कभी भूल से भी क्या सुधर सकी है भूल?
सरिता का जल मृषा, सत्य केवल उसके दो कूल?

आत्मा औ' भूतों में स्थापित करता कौन समत्व?
बहिरन्तर, आत्मा भूतों से है अतीत वह तत्व!

भौतिकता, आध्यात्मिकता केवल उसके दो कूल,
व्यक्ति विश्व से, स्थूल सूक्ष्म से परे सत्य के मूल!

धनपति

वे नृशंस हैं वे जन के श्रमबल से पोषित,
दुहरे धनी जोंक जग के, भू जिनसे शोषित!
नहीं जिन्हें करनी श्रम से जीविका उपार्जित,
नैतिकता से भी रहते जो अतः अपरिचित!
शय्या की क्रीड़ा कन्दुक है जिनको नारी,
अहम्मन्य वे मूढ़, अर्थबल के व्यभिचारी!
सुरांगना, सम्पदा, सुराओं से संसेवित!
नर पशु वे भू भार, मनुजता जिनसे लज्जित!
दर्पी, हठी, निरंकुश, निर्मम, कलुषित, कुत्सित,
गत संस्कृति के गरल, लोक जीवन जिनसे मृत!
जग जीवन का दुरुपयोग है उनका जीवन,
अब न प्रयोजन उनका, अंतिम हैं उनके क्षण!

मध्य वर्ग

संस्कृति का वह दास, विविध विश्वास विधायक,
निखिल ज्ञान, विज्ञान, नीतियों का उन्नायक!

उच्च वग की सुविधा का शास्त्रोक्त प्रचारक,
प्रभु सेवक, जन वचक वह, निज वग प्रतारक।
भोग शील, धनिकों का स्पर्धी, जीवन प्रिय अति,
आत्म वृद्ध, सकीण हृदय, तार्किक, व्यापक मति।
पाप पुण्य सत्रस्त, अस्थियो का बहु कोमल,
वाक् कुशल, धी दर्पी, अति विवेक से निबल।
मध्यवग का मानव, वह परिजन पत्नी-प्रिय,
यशकामी, व्यक्तित्व प्रसारक, पर हित निष्क्रिय।
श्रमजीवी वह, यदि श्रमिको का हो अभिभावक,
नव युग का वाहक हो नेता, लोक प्रभावक।

कृषक

युग - युग का वह भारवाह आकटि नत मस्तक,
निखिल सभ्य ससार पीठ का उसके स्फोटक।
वज्र मूढ, जड भूत, हठी, वृष बाधव कर्षक,
ध्रुव, ममत्व की मूर्ति, रूढियो का चिर रक्षक।
कर जजर, ऋण ग्रस्त, स्वल्प पैत्रिक स्मृति भू धन,
निखिल दैन्य, दुर्भाग्य दुरित, दुख का जो कारण,
वह कुबेर निधि उसे,—स्वेद सिंचित जिसके कण,
हष शोक की स्मृति के बीते जहाँ वष क्षण।
विश्व विवतनशील, अपरिवर्तित वह निश्चल
वही खेत, गह द्वार, वही वष, हसिया औ' हल।
स्थावर स्थितियो का शिशु स्थावर, स्थाणु कृषीबल,
दीघसूत्र, अति दुराग्रही, साशक औ दुबल।
है पुनीत सम्पत्ति उसे दैवी निधि निश्चित
सततिवत गो वृषभ, गुल्म, तृण, तरु चिर परिचित।
वह सकीण, समूह - कृपण, स्वाश्रित, पर-पीडित,
अति निजस्व प्रिय, शोषित, लुण्ठित, दलित क्षुधार्दित।
युग - युग से निसग स्वीय श्रमबल से जीवित,
विश्व प्रगति अनभिज्ञ, कूप-तम मे निज सीमित।
कषक का उद्धार पुण्य इच्छा है कल्पित
सामूहिक कृषि कायकल्प, अन्यथा कृषक मृत।

श्रमजीवी

वह पवित्र है वह जग के कदम स पोषित
वह निर्माता श्रेणि, वग, धन, बल से शोषित।
मूढ, अशिक्षित,—सभ्य शिक्षितो से वह शिक्षित,
विश्व उपेक्षित,—शिष्ट सस्कृतो मे मनुजोचित।
दैन्य कष्ट कुण्ठित—सुदर है उसका आनन,
गदे गात वसन हो पावन श्रम का जीवन।

स्नेह साम्य, सौहार्द्रपूर्ण तप से उसका मन,
वह संगठित करेगा भावी भव का शासन!

भूख प्यास से पीड़ित उसकी भद्दी आकृति
स्पष्ट कथा कहती—कैसी इस युग की संस्कृति!
वह पशु से भी घृणित मनुज—मानव की है कृति!
जिसके श्रम से सिंची समृद्धों की पृथु सम्पति!

मोह सम्पदा अधिकारों का उस न किंचित,
काय कुशल यन्त्री वह, श्रम पटुता से जीवित!
शीत ताप औ' क्षुधा तृषा में सदा संयमित,
दृढ़ चरित्र वह, दुख सहिष्णु, ध्रुव धीर, अभय चित!

लोक क्रांति का अग्रदूत, वर वीर, जनादृत,
नव्य सभ्यता का उन्नायक, शासक, शासित!
चिर पवित्र वह भय अन्याय, घृणा से पालित,
जीवन का शिल्पी,—पावन श्रम में प्रक्षालित!

घन नाद

ठङ ठङ ठन!
लोह नाद से ठोंक पीट घन
निर्मित करता श्रमिकों का मन,
ठङ ठङ ठन!

'क्रम विलष्ट मानव भव जीवन,
श्रम ही जग का शिल्पि चिरंतन,'
कठिन सत्य जीवन का क्षण क्षण
घोषित करता घन वज्र स्वन—
'व्यर्थ विचारों का संघर्षण,
अविरत श्रम ही जीवन साधन,
लोह काष्ठ मय, रक्त मांस मय,
वस्तु रूप ही सत्य चिरंतन!',
ठङ् ठङ् ठन!

अग्नि स्फुलिंगों का कर चुम्बन
जाग्रत करता दिग दिगंत घन,—
'जागो, श्रमिकों, बनो सचेतन,
भू के अधिकारी हैं श्रमजन!
मांस पेशियाँ हृष्ट, पुष्ट, घन,
वटी शिराएँ, श्रम-बलिष्ठ तन,
भू का भव्य करेंगे शासन,
चिर लावण्यपूर्ण श्रम के व्रण!'
ठङ ठङ ठन!

कर्म का मन

भव का जीवन मन का जीवन,
कार्यार्थी को है मन बंधन।
अवचेतन मन से होता रे,
चेतन मन सन्तत संचालित,
मन के दर्पण में भव की छवि,
रंजित होकर होती बिम्बित।
रूप-जगत की प्रतिछाया यह
भाव-जगत मानस का निश्चित,
गत युग का मृत सगुण आज
मानव मन की गति करता कुण्ठित।
अत कर्म को प्रथम स्थान दो,
भाव जगत कर्मों से निर्मित।
निखिल विचार, विवेक, तर्क,
भव रूप कर्म को करो समर्पित!
प्रथम कर्म, कहता जन दर्शन,
पीछे रे सिद्धांत, मन, वचन।

रूप का मन

निर्मित करो रूप का मन,—
रूप का मन।
भव सत्य पीड़ित मानव
मत धरो स्वप्न के चरण,
वाष्प लोक के योग्य तुम्हारा,
भाव सत्य विश्लेषण।
रूप जगत यह रूप कर्म कर,
रूप सत्य कर चिंतन,
रूप करो निर्माण विश्व का,
भरो रूप भव से मन।
भाव भीत तुम, गत भावों के
पहने स्वर्णिम बंधन,
रूप हीन मत भावों को
देते हो सत्य चिरंतन।
देश काल से सीमित
गत संस्कृतियों का संघर्षण
नव्य रूप कर मुक्त
भव्य भव भाव करेगा धारण।
निर्मित करो रूप का नव मन
रूप तत्व कर दर्शन,

रूप भाव का मूल
रूप को भाव करो सब अर्पण !
मुक्त रूप का तत्व
बनेगा जगती का नव जीवन,
रूप मुक्ति ही भाव मुक्ति
यह तात्विक सत्यान्वेषण !

रूप पूजन

करो रूप पूजन, भव मानव ! भाव पुष्प कर अर्पण,
धरो रूप चरणों में नव नव तन, मन, जीवन, यौवन !
निखिल शक्ति बँध रूप पाश में करती संसृति नर्तन,
रूप परिधि में मुक्त प्रकाशित शत शत रवि, शशि, उडुगन !
आज अलंकृत करो धरा को रूप रंग भर नूतन,
युग युग की चिर भाव राशि के पहना वसन, विभूषण !
प्रकृति रूप-इच्छा से उन्मद करती सृजन सनातन,
रूप सृष्टि यह भावों को दो मधुर रूप परिरम्भण !
सच है, जग जीवन विकास में आते ऐसे युग क्षण,
जब मानव इस रूप जगत का करता सूक्ष्म निरूपण !
वह विश्लेषण युग देता निर्माण शक्ति फिर नूतन,
अंतर जग का बहिर्जगत में होता जब परिवर्तन !
आज युगांतर होने को है जगती तल में निश्चित,
नव मानवता की किरणों से विश्व क्षितिज है ज्योतित !
नव्य रूप से करो, भव्य मानव ! स्वरूप जग निर्मित,
अखिल अवनि खिल उठे रूप मानवता से हो कुसुमित !
वरो रूप को, हे नव मानव ! रच भव प्रतिमा जीवित,
अंग अंग में देश दशा की भाव राशि कर अर्पित !
जन जन की विच्छिन्न शक्ति हो जग जीवन में विकसित,
युग युग की अतृप्त आकांक्षा उर उर की परिपूरित !

रूप निर्माण

रम्य रूप निर्माण करो हे, रम्य वस्त्र परिधान,
रम्य बनाओ यह जनपथ, को, रम्य नगर, जनस्थान !
रम्य सृष्टि हो रूप जगत की रम्य धरा शृंगार,
बाह्य रूप हो रम्य वस्तु का, होंगे रम्य विचार !
रम्य रूप हो मानवता का, अखिल मनोरम वेश,
भाषा रम्य मनुजता का मन वहन करे निःशेष !
भेद जनित माया, माया का रूप करो विन्यास,
मानव संस्कृति में विरोध डूबें, हो ऐक्य प्रकाश !
रूप रचो भव मानवता का, रूप भाव आधार,
रम्य रूप मानव समूह हो जीवन रूप विचार !

भूत जगत

जड़ चेतन हैं एक नियम के वश परिचालित,
मात्रा का है भेद, उभय हैं अन्योन्याश्रित।
भूत जगत की पावनता को करो न कलुषित,
निखिल जीव जग की सत्ता इससे परिपालित।
पावन हो भव धाम,—अनिल जल, स्थल, नभ पावन,
पावन हो गृह, वसन,—विभूषण, भाजन पावन।
हृदय बुद्धि हो पावन, देह, गिरा, मन पावन,
पावन दिशि पल, खाद्य श्वास, भव जीवन पावन।
सुंदर ही पावन, संस्कृत ही पावन निश्चय,
सुंदर हो भू का मुख, संस्कृत जीवन संचय।
सुंदर भव आलय, संस्कृत जड़ चेतन समुदय,
सुंदर नव मानव, संस्कृत भव-मानव की जय।

जीवन मांस

मानवता का रक्त मांस जग जीवन से चिर ओत प्रोत,
निखिल विचारों का बहता इस अरुण रुधिर में जीवित स्रोत।
युग युग की चेतना अमर, दिशि दिशि के जीवन का उल्लास,
रक्त मांस में देश देश की संस्कृति का शाश्वत इतिहास।
कहाँ खोजने जाते हो सुंदरता औ' आनंद अपार?
इस मांसलता में है मूर्तित अखिल भावनाओं का सार।
मांस नहीं नश्वर रज, ज्योतित मांस नहीं जड़ जीव विलास,
अंतर बाह्य चतुर्दिक है तम, रूप मांस है अमर प्रकाश।
शत वसंत, शत ग्रीष्म, शरद का मांस बीज में है आवास,
ईश्वर है यह मांस, पूर्ण यह, इसका होता नहीं विनाश।
मांस मुक्ति है भाव मुक्ति औ' भाव मुक्ति जीवन उल्लास,
मांस मुक्ति ही लोक मुक्ति भव जीवन का जो चरम विकास।
मांसों का है मांस मानुषी मांस, करो इसका सम्मान,
निर्मित करो मांस का जीवन, जीवन मांस करो निर्माण।

मानव पशु

मानव के पशु के प्रति
हो उदार नव संस्कृति।
युग युग से रच शत शत नैतिक बंधन
बाँध दिया मानव ने पीड़ित पशु तन।
'विद्रोही हो उठा आज पशु दर्पित,
वह न रहेगा अब नव युग में गर्हित।
नहीं सहेगा रे वह अनुचित ताड़न,
रीति नीतियों का गत निर्मम शासन।

वह भी क्या मानव जीवन का लाछन,
वह, मानव के देव भाव का वाहन!

नही रहे जीवनोपाय तब विकसित,
जीवन यापन कर न सके सब इच्छित!
नैतिक सीमाएँ बहु कर निर्धारित,
जीवन इच्छा, की जन ने मर्यादित!
भू मानव के श्रेयस् के हित निश्चित
पशु ने अपनी बलि दी, देवो के हित!
जीवन के उपकरण अखिल कर अधिकृत
गत युग का पशु हुआ आज मनुजोचित!
देव और पशु, भावो मे जो सीमित
युग युग मे होते परिवर्तित, प्रवसित!
मानव पशु ने किया आज भव अर्जित
मानव देव हुआ अब वह सम्मानित!
मानव के पशु के प्रति
मध्य वर्ग की हो रति!

नारी

मुक्त करो नारी को, मानव! चिर बन्दिनि नारी को,
युग युग की बर्बर कारा से जननि, सखी, प्यारी को!
छिन्न करो सब स्वर्ण पाश उसके कोमल तन मन के,
वे आभूषण नही, दाम उसके बन्दी जीवन के!
पुरुष वासना की सीमा से पीडित नारी जीवन,
नर नारी का तुच्छ भेद है केवल युग्म विभाजन!
उसे मानवी का गौरव दे पूर्ण सत्व दो नूतन,
उसका मुख जग का प्रकाश हो उठे अध अवगुण्ठन!
योनि मात्र रह गयी मानवी निज आत्मा कर अर्पण,
पुरुष प्रकृति की पशुता का पहने नैतिक आभूषण!
नष्ट हो गयी उसकी आत्मा, स्वचा रह गयी पावन,
युग युग से अवगुण्ठित गृहिणी सहती पशु के बन्धन!
खोलो हे मेखला युगो की कटि प्रदेश से, तन से!
अमर प्रेम हो बन्धन उसका, वह पवित्र हो मन से!
अगो की अविकच इच्छाएँ रहें न जीवन पातक,
वे विकास मे बनें सहायक, होवें प्रेम प्रकाशक!
क्षुधा तृषा, ही के समान युग्मेच्छा प्रकृति प्रवर्तित,
कामेच्छा प्रेमेच्छा बनकर हो जाती मनुजोचित!
क्षुधा कामवश गत युग ने पशु बल से कर जन शासित
जीवन के उपकरण सदृश नारी भी कर ली अधिकृत!
मुक्त करो जीवन सगिनि को, जननि देवि को आदृत,
जग जीवन मे मानव के सग हो मानवी प्रतिष्ठित!

प्रेम स्वर्ग हो धरा, मधुर नारी महिमा से मण्डित,
नारी मुख की नव किरणों से युग प्रभात हो ज्योतित।

नर की छाया

पुरुषों ही की आँखों से नित देख देख अपना तन,
पुरुषों ही के भावों से अपने प्रति भर अपना मन—
लो, अपनी ही चितवन से वह हो उठती है लज्जित,
अपने ही भीतर छिप छिप जग से हो गयी तिरोहित।
वह नर की छाया नारी! चिर नमित नयन, पद विजड़ित,
वह चकित, भीत हिरनी सी निज चरण चाप से शंकित।
मानव की चिर सहधर्मिणि, युग युग से मुख अवगुण्ठित,
स्थापित घर के कोने में वह दीप शिखा-सी कम्पित।
करती वह जीवन यापन युग-युग से पशु-सी पालित,
वन्दिनी काम कारा की, आदर्श नीति परिचालित।।

बन्द तुम्हारे द्वार?

मुसकाती प्राची में बन्द तुम्हारे द्वार?
ले किरणों का ऊषा हार,
जागी सरसी में सरोजिनी,
सोयी तुम इस बार?
बन्द तुम्हारे द्वार?
नव मधु में, अस्थिर मलयानिल,
भौंरों में गुंजार,
विहग कण्ठ में गान,
मौन पुष्पों में सौरभ भार,
बन्द तुम्हारे द्वार?
प्राण! प्रतीक्षा में प्रकाश
औ' प्रेम बने प्रतिहार!
पथ दिखलाने को प्रकाश,
तुमसे मिलने को प्यार!
बन्द तुम्हारे द्वार?
गीत हर्ष के पंख मार
आकाश कर रहे पार,
भेद सकेगी नहीं हृदय
प्राणों की मर्म पुकार!
बन्द तुम्हारे द्वार?
आज निछावर सुरभि
खुला जग में मधु का भण्डार,
दबा सकोगी तुम्हीं आज
उर में मधु जीवन ज्वार?
बन्द तुम्हारे द्वार?

सुमन के प्रति

भाव वाणी या रूप, ?
तुम क्या हो चिर मूक सुमन !
किसके प्रतिरूप ?
मौन सुमन !

सुदरता से अनिमिष चितवन
छू कोमल ममस्थल
मूक सत्व के भेद सकल
कह देती, (खुल दल पर दल)—
सहज समझ लेता मन !
विजय रूप की सदा भाव पर,
भाव रूप पर निभर !

मैं अवाक हूँ तुम्हे देखकर
मौन रूपधर !

रूप नही है नश्वर !—
सत्ता का वह पूण, प्रकृति स्वर,
सुदर है वह, अमर !

कवि !

हे राजनीतिविद्, अथविज्ञ !
रच शत शत वाद, विवाद, तन्त्र,
परतन्त्र किया तुमने मानव,
तुम बना न सके उसे स्वतन्त्र !
ह दशनज्ञ, शत तर्कों से,
सच्छास्त्रो से पा गहन ज्ञान,
तुम भी न दे सके मानव को
उसकी मानवता का प्रमाण !
हे चित्रकार, ले रग तूलि,
भर रूप रेख, छायाभ भ्रम,
चित्रित न कर सके मानव में
तुम मानवता के रूप रग !
गायक पा कोमल, मधुर कण्ठ,
रच वाद्य ताल, आलाप, तान,
मानव उर तुम मानव उर म
लय कर न सके, गा मम गान !
हे शिल्पकार वर ! कठिन धातु,
जड प्रस्तर मे भर अमर प्राण
दे सके नही मानव जग को
तुम मानवता का अक्षत मान !

कवि, नव युग की चुन भाव राशि,
नव छन्द, आभरण, रस विधान,
तुम बन न सकोगे जन मन के
जाग्रत भावों के गीत यान ?

प्रकाश !

आओ, प्रकाश, इस युग युग के अवगुण्ठन से मुख दिखलाओ,
आओ हे, मानव के घट के पट खोल मधुर श्री बरसाओ।
आओ, जीवन के आँगन में स्वर्णिम प्रभात जग के लाओ,
मानव उर के प्रस्तर युग के इस अन्ध तमस को बिखराओ।
विज्ञान ज्ञान की शत किरणें जनपथ में बरसाते आओ,
मुरझाये मानव मुकुलों को छूकर नव छवि में विकसाओ।
दिशि पल के भेद विभेदों को तुम डुबा एकता में, आओ,
नव मूर्तिमान मानवता बन जन जन के मन में बस जाओ।

आम्र विहग !

हे आम्र - विहग ! —
तुम ताम्र सुभग
नव पर्णों में
छिपकर, उँडेले कर्णों में
मंजरित मधुर
स्वर ग्राम प्रचुर !
उन्मुक्त नील
तुम पंख ढील,
उड़ उड़ सलील
हो जाते लय
निःसीम शान्ति में चिर सुखमय, —
जब नीड़ - निलय में रुद्ध - हृदय
हो उठता पीड़ातुर अतिशय।
फिर आम्र विहग।
छिप ताम्र सुभग
नव पर्णों में
बरसाते आकुल कर्णों में
मंजरित मधुर
स्वर - गीत विदुर !
मैं भी प्रसार
अपने विचार
भावना - कल्पना छन्द अपार
निःसीम विश्व में हो विलीन

गाता नवीन
मधु में गाने,
जग में नव जीवन बरसाने,
मुरझा मानव - उर विकसाने!
हे आम्र विहग!
तुम सुनो सजग,—
जग का उपवन
मानव जीवन
है शिशिर - त्रस्त
बहु व्याधि ग्रस्त!
ये जीर्ण, शीर्ण, चिर दीर्ण, पर्ण
जो त्रस्त, ध्वस्त, श्री - हत, विवर्ण
क्षय हो समस्त—
युग सूर्य अस्त!
ये राष्ट्र वर्ग
बल शक्ति भग,
बहु जाति - पाँति
कुल वंश ख्याति,
द्रुत हो विनष्ट सब नरक स्वर्ग!
विश्वास अंध,
संघर्ष द्वंद्व,
बहु तर्कवाद,
उर के प्रमाद,
गत रूढ़ि रीति
मृत धर्म नीति
ये हैं जगती की ईति भीति!

हो अन्त
दंभ जग के दुरन्त,
आवे वसन्त,
जीवन दिगन्त
फिर से हो स्मित कुसुमित अनन्त!

हो नग्न भग्न
आनन्द मग्न,
संहार श्रान्त
निर्माण लग्न!
सब क्षुधा - क्षुब्ध
कामना लुब्ध
हो तप्त दृप्त
जग काय लिप्त!
अज्ञान चूर्ण
हो ज्ञान पूर्ण,

मानव समूह
हो एक व्यूह ।
जग के सब भेद-भाव हो लय,
जीवन की बाधाएँ हो क्षय,
जय हो, मानव जीवन की जय ।

उन्मेष

मौन रहेगा ज्ञान,
स्तब्ध निखिल विज्ञान ।
क्रान्ति, पालतू पशु-सी होगी शान्त,
तर्क बुद्धि के वाद लगेंगे भ्रान्त ।
राजनीति औ' अर्थशास्त्र
होंगे सर्प परास्त ।
धर्म, नीति, आचार—
रुकेगी सबकी क्षीण पुकार ।
जीवन के स्वर में हो प्रकट महान
फूटेगा जीवन रहस्य का गान !
क्षुधा तृषा औ स्पृहा, काम से ऊपर
जाति, वर्ग औ' देश, राष्ट्र से उठकर
जीवित स्वर में, व्यापक जीवन गान
सद्य करेगा मानव का कल्याण !

अनुभूति

रक्त-मांस की देह बन गयी जीवन-इच्छा निर्भर,
मधुर भावना, मदिर कल्पना रुधिर-शिराएँ सुन्दर ।
रिक्त पूर्ण हो, शून्य सब, जीवन से आज गया भर,
निश्चल मरण स्पृहा से चंचल कँप कँप उठता थर थर !
तमस नयन की तारा बन चितवन करता आलोकित ।
गत प्रभाव बन गये भाव हो लोक-प्रेम सम्पोषित ।
अखिल अमंगल दैन्य भूलकर वैर विरोध, विनत-फन,
मन्त्र-मुग्ध फणियों-से करते जीवन-स्वर में नर्तन ।

नव संस्कृति

तुम हरित-कंचु,
सित ज्योति किरण छवि वसना,
नव संस्कृति की नव प्रतिमा ।
निर्धन समृद्ध, शासक शासित
तुमको समान संस्कृत प्राकृत,

गत धर्म कर्म, मृत रूढि रीति तम प्रशाना,
नव मानवता की महिमा !

सहार मग्न, शुभ सृजन लग्न,
वर राष्ट्र वर्ग बल भेद भग्न
भरती समत्व जगती मे, तुम दिशि रशना
नव युग की गौरव गरिमा !

वर देश काल औ' प्रकृति विजित,
विज्ञान ज्ञान इतिहास प्रथित,
मानव की विश्व विजय से तुम स्मित - दशना
पृथ्वी की स्वर्ग मधुरिमा !

हरीतिमा

हँसते भू के अँग अँग,
हरित हरित रँग !

दूर्वा पुलकित भूतल
नवोल्लसित तृण तरु दल
इगित करते चचल
जीवन का जीवित रँग
हरित हरित रँग !

श्यामल, कोमल, शीतल
लोचन - प्रिय, प्राणोज्वल,
तन पोषक, मन सम्बल,
सजल सिन्धु शोभित रँग
हरित हरित रग !

हरित वसन, तन छबि सित,
जग जीवन प्रतिमा नित
हरती मानव का चित,
भव सस्कृति भावित रँग,
हरित हरित रँग !

प्रकृति के प्रति

हार गयी तुम
प्रकृति !
रच निरुपम
मानव-कृति !
निखिल रूप, रेखा, स्वर
हुए निछावर
मानव के तन, मन पर !
धातु वर्ण, रस सार,
बने अस्थि, त्वच, रक्त-धार,
कुसुमित अग उभार !

दुर्निवार यह राग, राग का
रूप करो निर्माण,
वेष्टित करो राग से भव,
हो जन - जीवन कल्याण !

राग साधना

जीवन तन्त्री आज सजाओ
अमर राग तारों से,
गूंज उठें नभ धरा
प्रेम की स्वर्गिक झंकारों से !

राग - साधना करो मधुर
उर - उर के अखिल मिला सुर,
प्रतिध्वनित हो राग
हृदय से, रोओं के द्वारों से !

राग विश्व का जीवन,
संसृति का है सार सनातन,
अभिव्यक्त हो राग,
भाव, वाणी औ' आचारों से !
जीवन तन्त्री आज सजाओ
प्रणय राग तारों से !

रूप सत्य

मुझे रूप ही भाता !
प्राण ! रूप ही मेरे उर में
मधुर भाव बन जाता !
मुझे रूप ही भाता !
जीवन का चिर सत्य
नहीं दे सका मुझे परितोष,
मुझे ज्ञान से वस्तु सुहाती,
सूक्ष्म बीज से कोष !

सच है जीवन के वसन्त में
रहता है पतझार,
वर्ण गन्धमय कलि कुसुमों का
पर, ऐश्वर्य अपार !

राशि - राशि सौन्दर्य, प्रेम,
आनन्द, गुणों का द्वार,
मुझे लुभाता रूप रंग
रेखा का यह संसार !

मुझे रूप ही भाता
प्राण! रूप का सत्य
रूप के भीतर नहीं समाता।
मुझे रूप ही भाता।

मुझे स्वप्न दो

मुझे स्वप्न दो, मुझे स्वप्न दो।
हे जीवन के जागरूक।
जीवन के नव - नव मुझे स्वप्न दो।
स्वप्न - जागरण हो यह जीवन,
स्वप्न - पुलक-स्मित तन, मन, यौवन,
मेरे स्वप्नो के प्रकाश मे
जग का अन्धकार जाये सो।

वस्तु - ज्ञान से ऊब गया मैं,
सूखे मरु में डूब गया मैं,
मेरे स्वप्नो की छाया मे
जग का वस्तु सत्य जाये खो।
शिशिर शयित जग जीवन वन मे
हो पल्लवित स्वप्न नव, क्षण मे,
मेरे कार्यों मे, वाणी मे
नव नव स्वप्नो का गुंजन हो।
हे जीवन के जागरूक।
भव जीवन के नव मुझे स्वप्न दो।

मन के स्वप्न

सत्य बनाओ, हे
मेरे मन के स्वप्नो को
सत्य बनाओ।
आज स्वप्न को सत्य,
सत्य को स्वप्न बना नव सृष्टि बसाओ।
निखिल ज्ञान को कर्म,
कर्म को ज्ञान बना नव मूर्ति सजाओ।
आज विश्व को व्यक्ति,
व्यक्ति को विश्व बना जग-जीवन लाओ।

सत्य बनाओ, हे,
मेरे जीवन - स्वप्नो को
सत्य बनाओ।
आज अखिल विज्ञान ज्ञान को
रूप, गन्ध, रस मे प्रकटाओ।

ताम्र रजत, मरकत, विद्रुम के विविध किसलयो का मदु-भार,
सुंदर सलिल समीर आज, सुंदर लगता नभ का विस्तार,
सुंदर निखिल धरित्री, सुंदर खग-मृग युग्मा का अभिसार !
प्रिय कचनार ! प्रिय कचनार !
मानव उर की आकाक्षाओ का है पर सौंदर्य अपार !
आज बसाऊँगा मैं फिर से घर-घर स्वप्नो का ससार !
मुझे गूथने दोगे अपनी स्वण रजत कलियो का हार ?
आम्र रसाल ! ताम्र रसाल !
मधुपो से गुजरित मुझे दोगे न मजरित अपनी डाल ?
आज तुम्हारे अग-अग से फूट रही नव मधु की ज्वाल,
इँगुर के पर्णों मे दिशि दिशि नृत्य कर रहा स्वण सकाल,
मजरियो के मदिर शरो से जर्जर जड चेतन इस काल,
बौरो की उन्मद सुगंध पी मत्त हुई भौरो की माल !
आम्र रसाल ! ताम्र रसाल !
कोकिल की आकुल ध्वनि सुन लद उठे पल्लवो से वन शाल,
आज लुभाऊँगा मैं जग को बुन बुन नव स्वप्नो का जाल !
सखे ! मुझे दोगे स्वप्नो से स्वण मजरित अपनी डाल ?

पलाश !

मरकत वन मे आज तुम्हारी नव प्रवाल श्री डाल
जगा रही उर मे आकुल आकाक्षाओ की ज्वाल !
पीपल, बिलबिल, आम्र, नीम की पल्लव श्री सुकुमार—
स्वण - वण की हरीतिमा का वन मे भरा विकास,
तुम नव मधु की निखिल कामनाओ मे प्रिय उच्छवास !
शत - शत पुष्पो के रगो की रत्नच्छटा पलाश !
प्रकट नही कर सकती यह वैभव पुष्कल उल्लास !
स्वण मजरित आम्र आज औ' रजत ताम्र कचनार,
नील कोकिला की पुकार नव पीत भृग गुजार !
स्वण स्वरो से मुखर तुम्हारे मौन पुष्प शृगार,
यौवन के नव रक्त तेज का जिनमे मदिर उभार !
हृदय रुधिर ही अपित कर मधु को अपण श्री शाल !
तुमने जग मे आज जला दी दिशि दिशि जीवन ज्वाल !

पलाश के प्रति

प्राप्त नही मानव जग को यह मर्मोज्ज्वल उल्लास
जो कि तुम्हारी डाल डाल पर करता सहज विलास !
आज प्रलय-ज्वाला मे ज्यो गल गये विश्व के पाश
जीवन की हिल्लोल लोल उमडी छूने आकाश !

आत्मा की निःसीम मुक्ति को
भव की सीमा में बंधवाओ !
जन की रक्त मांस इच्छा को
मधुर अन्न-फल में उपजाओ !
सत्य बनाओ, हे
मानव उर के स्वप्नों को
सत्य बनाओ !

जीवन स्पर्श

क्यों चंचल, व्याकुल जन ?
फूट रहा मधुवन में जो सौंदर्योल्लास,
कलि कुसुमों में राग रंगमय शक्ति विकास,—
आकुल इसीलिए जन जन मन !

दौड़ रही रक्तिम पलाश में जीवन-ज्वाल,
आम्र मौर में मदिर गंध, तरुओं में तरुण प्रवाल !
विहग-युग्म हो विह्वल सुख से आप
पंखों से प्रिय पंख मिला करते मधु प्रेमालाप !

अखिल विघ्न, भय, बाधाएँ कर पार
शीत, ताप, झंझा के सह बहु बार,
कौन शक्ति सजती जीवन का वासंती शृंगार ?

सभी उसी के हेतु विकल मन !
उसी शक्ति का पाने जीवन स्पर्श
रोम रोम में भरते विद्युत हर्ष,
चिर चंचल, व्याकुल जन !

मधु के स्वप्न

रक्त पलाश ! रक्त पलाश !
सखे, मुझे दोगे सिंदूर के पुष्पों की ज्वाला का हास ?
आज उल्लसित धरा, पल्लवित विटपों में बहु वर्ण विकास,
पीपल, नीम, अशोक, आम्र से फूट रहा हरिताभ हुलास,
गीत निरत हैं युवक, नृत्य रत युवती जन स्मित मुख, सविलास,
फिर भी स्वप्न नहीं आते उड़-उड़ सुख के पंखों में पास !

रक्त पलाश ! रक्त पलाश !
मुझे चाहिए अब जन जन के जीवन में ही नव मधुमास !
जन जीवन में आज चाहता हूँ पाना जीवन उल्लास,
तुम मुझको दोगे जीवन की ज्वाला का जाज्वल्य प्रकाश ?

प्रिय कचनार ! प्रिय कचनार !
मुझे बिना पत्रों के पुष्पों की डाली दोगे उपहार ?
सुंदर मधुऋतु सुंदर है गुंजित दिगंत का हरित प्रसार,

ताम्र, रजत, मरकत, विद्रुम के विविध किसलयो का मृदु-भार,
सुंदर सलिल समीर आज, सुंदर लगता नभ का विस्तार,
सुंदर निखिल धरित्री, सुंदर खग-मृग युग्मो का अभिसार।
प्रिय कचनार! प्रिय कचनार!
मानव उर की आकाक्षाओ का है पर सौंदय अपार!
आज बसाऊँगा मैं फिर से घर-घर स्वप्नो का ससार।
मुझे गूथने दोगे अपनी स्वण रजत कलियो का हार?
आम्र रसाल! ताम्र रसाल!
मधुपो से गुंजरित मुझे दोगे न मजरित अपनी डाल?
आज तुम्हारे अग अग से फूट रही नव मधु की ज्वाल,
इँगुर के पर्णों मे दिशि दिशि नृत्य कर रहा स्वण सकाल,
मजरियो के मदिर शरो से जर्जर जड चेतन इस काल,
बौरो की उन्मद सुगन्ध पी अन्ध हुई भौरो की माल!
आम्र रसाल! ताम्र रसाल!
कोकिल की आकुल ध्वनि सुन लद उठे पल्लवो से वन शाल
आज लुभाऊँगा मैं जग को बुन बुन नव स्वप्नो का जाल!
सखे! मुझे दोगे स्वप्नो से स्वण मजरित अपनी डाल?

पलाश!

मरकत वन मे आज तुम्हारी नव प्रवाल की डाल
जगा रही उर मे आकुल आकाक्षाओ की ज्वाल!
पीपल, चिलबिल, आम्र, नीम की पल्लव श्री सुकुमार—
तुम्ही उठाये हो, पर, वसुधा का मधु-यौवन भार!
वण - वण की हरीतिमा का वन मे भरा विकास,
तुम नव मधु की निखिल कामनाओ के प्रिय उच्छ्वास!
शत - शत पुष्पो के रगो की रत्नच्छटा पलाश!
प्रकट नही कर सकती यह वैभव पुष्कल उल्लास!
स्वण मजरित आम्र आज औं रजत ताम्र कचनार,
नील कोकिला की पुकार नव, पीत भृग गुजार!
वण स्वरो मे मुखर तुम्हारे मौन पुष्प अगार,
यौवन के नव रक्त तेज का जिनमे मदिर उभार!
हृदय रुधिर ही अर्पित कर मधु को अर्पण श्री शाल!
तुमने जग मे आज जला दी दिशि दिशि जीवन-ज्वाल!

पलाश के प्रति

प्राप्त नही मानव जग को यह मर्मोज्वल उल्लास
जो कि तुम्हारी डाल-डाल पर करता सहज विलास!
आज प्रलय-ज्वाला मे ज्यो गल गये विश्व के पाश
जीवन की हिल्लोल लोल उमडी छूने आकाश!

आकांक्षाएँ अखिल अवनि की हुईं पूर्ण उन्मुक्त,
यह रक्तोज्वल तेज धरा के जीवन में उपयुक्त।
उद्भिज के जीवन-विकास में हुआ नवीन प्रभात,
तरुओं का हरितांधकार हो उठा ज्योति अवदात।

नव जीवन का रुधिर शिराओं में कर वहन, पलाश।
तृण-तरु जग से मानव जग में तुमने भरा प्रकाश।
यह शोभा, यह शक्ति, दीप्ति यह यौवन की उद्दाम
भरती मन में ओज, दृगों को लगती प्रिय, अभिराम।
जीवन की आकांक्षाओं का यह सौंदर्य प्रमद,
मानव भी उपभोग कर सके मुक्त, स्वस्थ आनन्द।

कैलिफोर्निया पॉपी

कैसा प्रकाश से प्रेम तुम्हें, छू स्वर्ण-रजत किरणें प्रभात
पीले सुफेद सी फूलों में तुम खिलखिल पड़ती पुलक गात।
जड़ वृन्त मूल। उड़ती होतीं तुम तितली सी सुख से उन्मुख
पृथ्वी के हो ये डाल-पात पर पार्थिव नहीं तुम्हारा सुख।
बंधन में भी हो सहज मुक्त तुम, इसीलिए उड़कर क्षण में,
निज सुख की हो अतिशयता में हो समा गयी मेरे मन में।

बदली का प्रभात

निशि के तम में झर झर
हलकी जल की फुहीं
धरती को कर गयी सजल।
अँधियाली में छनकर
निर्मल जल की फुहीं
तृण तरु को कर उज्ज्वल।

बीती रात,—
धूमिल सजल प्रभात
वृष्टि शून्य, नव स्नात।
अलस उनींदा सा जग,
कोमलाभ, दृग सुभग।
कहाँ मनुज को अवसर
देखे मधुर प्रकृति मुख?
भव अभाव से जर्जर
प्रकृति उसे देगी सुख?

दो मित्र

उस निर्जन टीले पर
दोनों चिलबिल

एक दूसरे से मिल,
मित्रों-से हैं गल,
मौन, मनोहर!
दोनो पादप
सह वर्षातप
हुए साथ ही बड़,
दीर्घ, सुदृढ़तर!

पतझर में सब पत्र गए झर,
नग्न, पवन डालों पर
पतली, टेढ़ी टहनी अगणित
शिरा-जाल-सी फैली अविरल,
तरुओं की रेखा छवि अविरल
भू पर रह छायांकित!
नील निरभ्र गगन पर
चित्रित-से दो तरुवर
आँखों को लगते हैं सुन्दर
मन को सुखकर!

झंझा में नीम

सर सर् मर् मर्
रेशम के-से स्वर भर,
घने नीम दल
लम्बे, पतले, चंचल,
श्वसन-स्पर्श से
रोम हर्ष से
हिल हिल उठते प्रतिपल!

वृक्ष शिखर से भू पर
शत-शत मिश्रित ध्वनि कर
फूट पड़ा, ज्यों, निर्झर—,
मर्मर—कल-कल, झर
झम झम, तुर तुर,
नीम नीम ऊपर निर्झर
झिलमिल [illegible] पर [illegible]
झरना झर झर
झर् झर!

चिर-मूक [illegible] निमिष [illegible]
हरित गुंज में [illegible],—
[illegible] में अविरल
[illegible] वन [illegible]!
सिहर, सिहर नील तर,

भीत, पीत, कृश, निर्बल,
नीम दल सकल
झर झर पडते पल पल ।

ओस के प्रति

विस अवलुप जग से उतरे
तुम प्रतनु ओस ।
तृण, कलि, कुसुम अधर पर बिखरे ?

किसने तुम्हें सजाया,
सुदर, सुघर बनाया ?

रजत-वाष्प की सुभग
जलद सीपी ने ?

ऐसी आभा देखी नही किसी ने ।
सस्मित तुमसे है प्रभात-जग,
स्वर्गिक मोती, अतुल कोष ।

किसकी यह कल्पना ?
तुम्हे जो दिया बना
उज्ज्वल,
कोमल,
चचल,
निर्मल,
निर्दोष ।

चटुल अनिल ने तुम्हें तोल
सबको समान कर गोल गोल,
शशि-छबि से भर
वपु को सुदर,
लुढकाया भू के पलको पर,

हे स्वप्न-सुघर !
तुम पर सहस्र रवि न्योछावर !
स्वर्गीय तुम्हारा लोल लास,
जीवन के पल-पल का हुलास,
निज लघु सत्ता का कर विकास
तुम बने वाष्प आकाश !
ओऽम !
उर-परितोष !
ओ स्पर्श शीत !
छवि गीत
ओस !

ओस बिन्दु

ओस बिन्दु ! लघु ओस बिन्दु !
बहु नीले पीले, हरे, लाल,
चंचल ताराओं से जल-जल,
फैलाते शीतल, सजल ज्वाल !

कलरव करते, किलकार, रार
ये मौन मूक,—तृण तरु दल पर,
तकते अपलक निश्चल सोये,
उड़-उड़ पँखड़ियों पर सुंदर !

ये पक्षी, मधुमक्खी, तितली
जुगनू, मछली, रवि, ऋक्ष, इंदु
निज नाम-रूप खो, जान बूझ,
सब बने हुए हैं ओस बिंदु !

जलद

तूल जलद, ऊर्ण जलद,
घूम घूम जल पूर्ण जलद,
वात मसृण जल-सूत
भू पट पर जीमूत,
हरित काढ़ते तृण, तरु, छद !

स्तनित जलद, तड़ित जलद,
संसृति को कर चकित जलद
इंद्रचाप रँग चित्र,
गज मृग रूप विचित्र,
बनते रवि-शशि तरी सुखद !

धीर जलद, तूर्ण जलद,
श्वेत श्याम छवि पूर्ण जलद,
शिखी नृत्य पर लुब्ध,
दादुर ध्वनि से क्षुब्ध
विरहिणि कृषि के दूत फलद !

अनामिका के कवि के प्रति

छंद बंध ध्रुव तोड़, फोड़कर पर्वत कारा
अचल रूढ़ियों की, कवि, तेरी कविता धारा
मुक्त, अबाध, अमन्द, रजत निर्झर सी निःसृत,—
गलित, ललित आलोक राशि, चिर अकलुष, अविजित !
स्फटिक शिलाओं से तूने वाणी का मंदिर
शिल्पि, बनाया,—ज्योति कलश निज यश का धर चिर !

शिलीभूत सौंदय, ज्ञान, आनंद अनश्वर
शब्द शब्द में तेरे उज्ज्वल जडित हिम शिखर!
शुभ्र कल्पना की उडान भर भास्वर कलरव,
हस, अहा वाणी के, तेरी प्रतिभा नित नव!
जीवन के कर्दम से अमलिन मानस सरसिज
शोभित तेरा, वरद शारदा का आसन निज!
अमृत पुत्र कवि, यशःकाय तव जरामरणजित्,
स्वयं भारती से तेरी हृतंत्री झकृत!

आचार्य द्विवेदी के प्रति

(१)

भारतेंदु ने जिसकी अक्षय अमर नींव पर
प्रथम शिला का गौरव स्थापित किया पूर्वतर,
कुशल शिल्पिगण विविध कीर्ति-स्तम्भों से सुंदर
महिमा सुषमा जिसे दे गये, स्तुत्य यत्न कर,

भारत की वाणी का वह भव्योच्च सौधवर
अंतनयनों में क्या, हे आचार्य, पूर्णतर
उदभासित हो उठा आपके दिव्य रूप धर?
ज्योति विचुम्बित, स्वीय कीर्ति का स्वर्ण कलश वर
जो पहले ही आप रख गये अग्र शिखर पर!

देव, आपके मन स्वप्न को ले पलकों पर
भावी चिर साकार कर सके रूप रग भर,
दिशि दिशि की अनुभूति, ज्ञान, बहु भाव निरंतर,
उसे उठावें युग-युग के सुख दुख अनश्वर,
—आप यही आशीर्वाद दें, देव यही वर!

(२)

भारतेंदु कर गये भारती की वीणा निर्माण,
किया अमर स्पर्शों ने जिसका बहुविधि स्वर सधान,
निश्चय, उसमें जगा आपने प्रथम स्वर्ण झंकार
अखिल देश की वाणी को दे दिया एक आकार!

पखहीन थी क्षुब्ध कल्पना, मूक कण्ठगत गान!
शब्द शून्य थे भाव, रुद्ध प्राणों से वचित प्राण!
सुख दुख की प्रिय कथा स्वप्न बदी थे हृदयोदगार!
एक देश था सही, एक था क्या वाणी व्यापार?

वाग्मि! आपने मूक देश को कर फिर से वाचाल,
रूप रग से पूर्ण कर दिया जीर्ण राष्ट्र ककाल!

शत कण्ठों से फूटें आपके शतमुख गौरव गान
शत शत युग स्तम्भों पर तानें स्वर्णिम कीर्ति वितान।
चिर स्मारक सा उठे युग युग में भारत का साहित्य
आर्य, आपके यश-काय को घेरे सुरक्षित नित्य।

कुसुम के प्रति

झर गये हाय, तुम कान्त कुसुम!
सब रूप-रंग दल गये बिखर,
रह सके न चारु चिरंतन तुम,
जीवन की मधु स्मिति गयी बिसर!

चुपके में झर, तुमने फल को
निज सौंप दिया जीवन, यौवन,
क्षण-भर जो पलकों पर झलका
वह मधु का स्वप्न न रहा स्मरण!

चिर पूर्ण नहीं कुछ जीवन में
अस्थिर है रूप जगत का मद,
बस आत्म त्याग, जीवन-विनिमय
इस संघ-जगत में है सुखप्रद!

करुणा है प्राण वृन्त जग की,
अवलम्बित जिस पर जग जीवन,
भर देती चिर स्वर्गिक करुणा
जीवन का खोया सूनापन!

करुणा रंजित जीवन का सुख,
जग की सुंदरता अश्रु स्नात,
करुणा ही से सार्थक होते
चिर जन्म मरण, संध्या प्रभात!

क्रान्ति

तुम अन्धकार, जीवन को ज्योतित करती,
तुम विष हो, उर में मधुर सुधा सी झरती!
तुम मरण, विश्व में मधुर चेतना भरती,
तुम निखिल भयंकर, भीति जगत की हरती!
तुम शून्य, अतुल ऐश्वर्य सदा बरसाती,
अपरूप, दिगंत सुंदरता सरसाती!
निष्ठुर निर्मम क्षुद्रों को भी अपनाती
तुम दावा वन को हरित भरित कर जाती!
तुम चिर विनाश, नव सजन गोद में लाती,
चिर प्राकृत, नव संस्कृति के ज्वार उठाती!
तुम रुद्र, प्रलय-ताण्डव में ही सुख पाती
जीवन वसंत तुम, पतझड़ बन नित आती!

घूम घूम छा निभर अम्बर,
झूल झूल झझा झोको पर,
हे दुदम उददाम हरो
भव ताप, दाप, अभिमत कर सिंचन !

इन्द्रचाप से कर दिशि चित्रित,
बहभार से केकी पुलकित,
हरित भरित हे करो धरणि को
हो करुणाद्र, घोर वज्र स्वन !

निश्चय

सघर्षों मे शाति बनू मैं !
अधकार मे पड जीवन के,
अधकार की क्राति बनू मैं !

जग जीवन के ज्वारो म बह,
कोमल प्रखर प्रहारो को सह,
भव के क्रदन किलकारो मे
हँसमुख नीरव क्राति बनू मैं !

घृणा उपेक्षा मे रह अविचल,
निदा लाछन से बन उज्ज्वल,
त्रुटियो से ज्योतित कर निज पथ
जन-सेवा की श्राति बनू मैं !

झेल निराशा, कटु निष्फलता
दैन्य, स्वभाव जनित दुबलता,
आगे बढ धीर एकाकी,
भाग्य चक्र की भ्राति बनू मैं !

खोज

आज मनुज की खोज निकालो !
जाति वण सस्कृति समाज से
मूल व्यक्ति को फिर से चालो !

देश राष्ट्र के विविध भेद हर,
धम नीतियो म समत्व भर,
रूढि रीति गत विश्वासो की
अध यवनिका आज उठा लो !

भाषा भूषा के जो भीतर,
श्रेणि वग मे मानव ऊपर,
अखिल अवनि मे रिक्त मनुज को
केवल मनुज जान अपना लो !

राजा प्रजा, धनी औ' निर्धन
सभ्य असंस्कृत, सज्जन दुर्जन
नव मानवता से सबको भर,
खण्ड मनुज को फिर से ढालो !

आवाहन

रूप धरो, नव रूप धरो !
जीवन के घन अंधकार,
नव ज्योतित हो भव रूप धरो !

हे कुरूप, हे कुत्सित, प्राकृत,
हे सुंदर, हे संस्कृत, सस्मित,
आओ जग जीवन परिणय में
परिचित से मिल बाँह भरो !

कोमल कटु, कटु कोमल बनकर,
उज्ज्वल मंद, मंद उज्ज्वलतर,
दिवा निशा के ज्योति तमस मिल
साँझ प्रात अभिसार करो !

पतझर में मधु, मधु में पतझर,
सुख में दुख, दुख में सुख बनकर,
जन्म मृत्यु में, जन्म मृत्युहर !
भव की जीवन भीति हरो !
रूप धरो, नव रूप धरो !

लेन-देन

कातो अंधकार तन मन का !
नव प्रकाश के रजत स्वर्ण से
बुनो तरुण पट नव जीवन का !

युग-युग के बहु भेदों को धुन
बर्बरता, पाशवता को चुन,
नव मानवता से ढँक दो
कुत्सित नग्न रूप जन जन का !

दिशिपल के ताने बाने भर
धूपछाँह रच संस्कृति सुंदर
बीनो स्नेह सुरुचि संयम से
शील वसन नव भव यौवन का !

सजा पुरातन को, कर नूतन
देश देश का रँग अपनापन,
निखिल विश्व की हाट बाट में
लेन-देन हो मानवपन का !

वस्तु सत्य

आज भाव से बनो वस्तु-भव !
चेतनता से रूप गंध रस
शब्द स्पर्श बन उपजो अभिनव !

बनो प्रेम से प्रेमी प्रिय जन,
सुंदरता से सुंदर तन मन,
आज अतुल आनंद राशि से
बनो विपुल जग जीवन उत्सव !

कारण से शुभ कर्म बन सकल,
सूक्ष्म बीज से पत्र, पुष्प, फल,
नित्य मुक्ति में भव बंधन बन,
बनो शक्ति से खाद्य मधु विभव !

सीमा में हे बनो असीमित,
जन्म मरण में ही चिर जीवित,
पल पल के परिवर्तन में तुम
बनो सनातनता का अनुभव !

भव मानव

आज बनो फिर तुम नव मानव !
चुन-चुन सार प्रकृति से अतुलित
जीवन रूप धरो हे अभिनव !

नभ से शांति, कांति रवि से हर,
भूतों में चेतनता दो भर,
निस्तलता जलनिधि से लेकर
भू से विभव मरुत से लो जव !

सुमनों से स्मिति, विहगों से स्वर
शशि से छवि, मधु से यौवन वर,
सुंदरता, आनंद, प्रेम का—
भू पर विचर,—करो नव उत्सव !

आज त्याग तप, संयम साधन
साधक हों, पूजन आराधन,
नीरस दर्शन दर्शनीय—
मानव वपु पाकर मुग्ध करें भव !

निखिल ज्ञान विज्ञान समीक्षा —
करता भव इतिहास प्रतीक्षा,
मूर्तिमान नव संस्कृति बन,
आओ, भव मानव, युग-युग सम्भव !

प्रकृति-शिशु

बढ़े प्रकृति शिशु भव मानव मे !
भय का दे पाथेय प्रकृति ने
भेजा मनुज अपरिचित भव मे !
बँधा मोह बन्धन मे अपने,
उर मे इच्छाओ के सपने
जीवन का ऐश्वय खोजता
वह चिर जीण जगत के शव मे !
जीवन इच्छा को कर मस्कृत,
प्राकृत भय के तम को ज्योतित,
विकसित हो, मानव मानव को
वह अपना-सा पा अनुभव मे !
निज पर मे समता कर निर्मित
मानवता का सार सकलित,
वह भव जीवन का स्रष्टा हो,
द्रष्टा हो, रति हो चिर नव मे !
बढ़े प्रकृति शिशु भव मानव मे !

आवेश

ज्यो मधुवन मे गुजते भ्रमर,
नव आम्र कुज मे पिकी मुखर,
मेरी उर तन्त्री से रह रह
गीतो के मधुर फूटते स्वर !
ज्यो झरते हरसिंगार झर झर,
ज्या हिम फुहार कण फहर फहर,
मेरे मानस से सुन्दरता
निःसृत होती त्यो निखर-निखर !
गिरि उर से ज्यो बहत निझर,
रवि शशि मे तिग्म मधुरतर कर,
मेरे मन की आवेश शान्ति
गीतों मे पडती बिखर बिखर !

आत्म समर्पण

रक्त मास की अचिर देह मे तुमने अपनापन भर
बना दिया इसको चिर पावन नाम रूप ज्योतित वर !
वह जन शून्य, अपरिचित जग मे प्रतिक्षण दे निज परिचय
रहने योग्य कर दिया इसको स्नेह गेह शोभामय !
शान्त अतृप्त आशाऽकाक्षाएँ तुम पर हो न्योछावर
पूर्ण हो गयी आज, जन्म की युग-युग की साधें वर !

निखिल ज्ञान विज्ञान तक औ' जन्म-मरण प्रश्नोत्तर
सार्थक सब हो गये, पूर्ण तन्मय प्रिय तुममें होकर !

तुम ईश्वर

सीमाओं में ही तुम असीम,
बंधन नियमों में मुक्ति सतत,
बहु रूपों में नित एक रूप
संघर्षों में ही शान्ति महत !

कलुषित दूषित में चिर पवित्र,
कुत्सित कुरूप में तुम सुन्दर,
खण्डित कुण्ठित में पूर्ण सदा
क्षणभंगुर में तुम नित्य अमर !

तुम पतित क्षुद्र में चिर महान,
परित्यक्तों के जीवन सहचर,
तुम विपथगामियों के सत पथ
जीवन मृत के नव जीवन वर !

तुम बाधा विघ्नों में हो बल,
जीवन के तम में चिर भास्वर
असफलताओं में इष्ट सिद्धि,
तुम जीवों ही में हो ईश्वर !

वाणी

वाणी, वाणी,
जीवन की वाणी दो मुझको भास्वर !
मौन गगन को भेद
बोलते जिस वाणी में उडुचर,
जिसमें नीरव गिरि से निःसृत
होते मुखरित निर्झर !
जिस वाणी में मेघ गरजते,
लहरा उठते सागर,
जिसमें नित दामिनी दमकती,
मोर नाचते सुन्दर !

वाणी, वाणी,
मुझे वस्तु-वाणी दो पूर्ण चिरन्तन !
जिस वाणी में छू मलयानिल
पुलकों से भरता तन,
जिसमें मृदु मुख कुसुम खोलते,
अणु - अणु करते नर्तन !

जिस वाणी में क्षुधा, तृषा
औ' काम दीप्त करते तन,
जिसमें इच्छा, सुख दुख उठते,
आते शैशव, यौवन!

वाणी, वाणी,
मुझे सृष्टि की वाणी दो अविनश्वर!
जो बहु वर्ण, गंध, रूपों में
करती सृजन निरंतर,
जिस वाणी में अनुभव करते
चुपके निखिल चराचर!
जो वाणी चिर जन्म मरण
तम औ' प्रकाश से है पर,
जो वाणी जीवन की जीवन,
शाश्वत, सुंदर, अक्षर!
वाणी, वाणी,
मुझको दो घट-घट की वाणी के स्वर!

युग नृत्य

नृत्य करो, नृत्य करो!
शिशिर समीर
मत्त अधीर,
प्रलयंकर नृत्य करो,
मृत्यु से न व्यर्थ डरो!
जीर्ण शीर्ण विश्व पर्ण
हे विदीर्ण, हे विवर्ण,
काल भीत, रक्त पीत,
मर्मर भर सजल गीत,
प्रलयंकर नृत्य करो,
निखिल विश्व बंध हरो!
अनिल अनल नभ जल स्थल,
अचल चपल, दिशि औ' पल,
ज्योति ग्रंथ, सूर्य चंद्र,
तार मंद्र, गीति छंद
निगम ज्ञान, स्मृति पुराण,
प्रलयंकर नृत्य करो
निखिल विश्व बंध हरो!
रूढ़ि रीति, न्याय नीति,
वैर प्रीति, ईति भीति,
क्षुधा तृषा, सत्य मृषा,
लज्जा, भय, रोष, विनय,

राग द्वेष, हर्ष क्लेश,
प्रलयंकर नृत्य करो,
जीवन जड सिंधु तरो।

देश राष्ट्र, लौह काष्ट,
श्रेणि वर्ग, नरक स्वर्ग,
जाति पाँति, यश ख्याति,
धनी निधन, भूपति जन,
आत्मा मन, वाणी तन,
प्रभयंकर नृत्य करो,
नव युग को प्रखिल वरो।

नृत्य करो, नृत्य करो,
शिशिर समीर,
क्षुब्ध प्रधीर,
ताण्डव गति नृत्य करो,
भूतल कृतकृत्य करो।

ग्राम्या

[प्रथम प्रकाशन-वर्ष १९४०]

प्रिय नरेन्द्र को

निवेदन

ग्राम्या' मे मेरी 'युगवाणी' के बाद की रचनाए सग्रहीत हैं। इनमे पाठको को ग्रामीणो के प्रति केवल बौद्धिक सहानुभूति ही मिल सकती है। ग्राम्य जीवन मे मिलकर, उसके भीतर से, ये अवश्य नही लिखी गयी हैं। ग्रामो की वतमान दशा म वैसा करना केवल प्रतिक्रियात्मक साहित्य को जन्म देना होता। 'युग', 'सस्कृति' आदि शब्द इन रचनाओ मे वतमान और भविष्य दोनो के लिए प्रयुक्त हुए हैं, जिसे समझने मे पाठको को कठिनाई नही होगी, 'ग्राम्या' की पहली कविता 'स्वप्न पट' से यह बात स्पष्ट हो जाती है। 'बापू' और 'महात्माजी के प्रति', 'चरखा गीत' और 'सूत्रधर' जैसी कुछ कविताओ मे बाहरी दृष्टि से एक विचार वषम्य जान पडता है, पर यदि हम 'आज' और 'कल' दोनो को देखेंगे तो वह विरोध नही रहेगा।

अन्त मे मेरा निवेदन है कि 'ग्राम्या' मे ग्राम्य दोषो का होना अत्यन्त स्वाभाविक है, सहृदय पाठक उनसे विचलित न हो।

नक्षत्र
कालाकाँकर (अवध)
१ माच, १६४० ई०

सुमित्रानन्दन पत

स्वप्न पट

ग्राम नही वे ग्राम आज औ' नगर न नगर जनाऽकर,
मानव कर से निखिल प्रकृति जग सस्कृत, सायक, सुन्दर।
देश राष्ट्र वे नही, जीर्ण जग पतझर त्रास समापन,
नील गगन है हरित धरा नव युग नव मानव जीवन।
आज मिट गये दैन्य दुख, सब क्षुधा तृषा के क्रदन
भावी स्वप्नो के पट पर युग जीवन करता नर्तन।
डूब गये सब तक वाद, सब देशो राष्ट्रो के रण,
डूब गया रव घोर क्रान्ति का शान्त विश्व सघर्षण।
जाति वर्ण की, श्रेणि वर्ग की तोड भित्तियाँ दुर्धर
युग युग के बन्दीगृह से मानवता निकली बाहर।
नाच रहे रवि शशि, दिगन्त मे,—नाच रहे ग्रह उडुगण,
नाच रहा भूगोल, नाचते नर नारी हर्षित मन।
फुल्ल रक्त शतदल पर शोभित युग लक्ष्मी लोकोज्ज्वल
अयुत करों से लुटा रही जन हित, जन बल, जन मगल।
ग्राम नही वे, नगर नही वे,—मुक्त दिशा औ' क्षण से
जीवन की क्षुद्रता निखिल मिट गयी मनुज जीवन से।
(दिसम्बर '३९)

ग्राम कवि

यहा न पल्लव वन मे मर्मर, यहा न मधु विहगो मे गुजन,
जीवन का सगीत बन रहा यहाँ अतृप्त हृदय का रोदन।
यहाँ नही शब्दो मे बँधती आदर्शों की प्रतिमा जीवित,
यहा व्यर्थ है चित्र गीत म सुन्दरता को करना सचित।
यहा धरा का मुख कुरूप है, कुत्सित गर्हित जन का जीवन,
सुन्दरता का मूल्य वहाँ क्या जहा उदर है क्षुब्ध, नग्न तन?—
जहा दैन्य जर्जर असख्य जन पशु-जघन्य क्षण करते यापन,
कीडो से रेंगते मनुज शिशु, जहाँ अकाल वृद्ध है यौवन।
सुलभ यहाँ रे कवि को जग मे युग का नही सत्य शिव सुन्दर,
कप-कँप उठते उसके उर की व्यथा विमूर्छित वीणा के स्वर।
(दिसम्बर '३९)

ग्राम

बृहद ग्रन्थ मानव जीवन का, काल ध्वस से कवलित,
ग्राम आज है पृष्ठ जनो की करुण कथा का जीवित।

युग युग का इतिहास सभ्यताओं का इसमें संचित,
संस्कृतियों की ह्रास वृद्धि जन शोषण से रेखांकित!
हिंस्र विजेताओं, भूपों के आक्रमणों की निर्दय,
जीर्ण हस्तलिपि यह नृशंस गृह समर्षों की निश्चय!
धर्मों का उत्पात, जातियों, वर्गों का उत्पीडन,
इसमें चिर संकलित रूढ़ि, विश्वास, विचार सनातन!
घर घर के बिखरे पन्नों में नग्न, क्षुधार्त कहानी,
जन मन के दयनीय भाव कर सकता प्रकट न वाणी!
मानव दुर्गति की गाथा से ओतप्रोत मर्मांतक
सदियों के अत्याचारों की सूची यह रोमांचक!
मनुष्यत्व के मूल तत्त्व ग्रामों ही में अंतर्हित,
उपादान भावी संस्कृति के भरे यहाँ हैं अविकृत!
शिक्षा के सत्याभासों से ग्राम नहीं हैं पीड़ित,
जीवन के संस्कार अविद्या-तम में जन के रक्षित!

(जनवरी '४०)

ग्राम दृष्टि

देख रहा हूँ आज विश्व को मैं ग्रामीण नयन से
सोच रहा हूँ जटिल जगत पर, जीवन पर जन मन से!
ज्ञान नहीं है, तर्क नहीं है, कला न भाव विवेचन,
जन हैं, जग है, क्षुधा, काम, इच्छाएँ, जीवन साधन!
रूप जगत है, रूप दृष्टि है, रूप बोधमय है मन,
माता पिता, बंधु, बांधव, परिजन पुरजन, भू गो धन!
रूढ़ि रीतियों के प्रचलित पथ, जाति पाँति के बंधन,
नियत कर्म हैं, नियत कर्मफल,—जीवन चक्र सनातन!
जन्म मरण के, सुख दुख के ताने बानों का जीवन,
निठुर नियति के धूपछाँह जग का रहस्य है गोपन!
देख रहा हूँ निखिल विश्व को मैं ग्रामीण नयन से,
सोच रहा हूँ जग पर मानव जीवन पर जन-मन से!
रूढ़ि नहीं है रीति नहीं है, जातिवर्ण केवल भ्रम,
जन जन में है जीव जीव जीवन में सब जन हैं सम!
ज्ञान वृथा है, तर्क वृथा, संस्कृतियाँ व्यर्थ पुरातन,
प्रथम जीव है मानव में, पीछे है सामाजिक जन!
मनुष्यत्व के मान वृथा, विज्ञान वृथा रे दर्शन,
वृथा धर्म, गणतंत्र,—उन्हें यदि प्रिय न जीव जन जीवन!

(दिसम्बर '३९)

ग्राम चित्र

यहाँ नहीं है चहल-पहल वैभव विस्मित जीवन की
यहाँ डोलती वायु म्लान सौरभ मर्मर ले वन की!

आता मौन प्रभात अकेला, संध्या भरी उदासी,
यहाँ घूमती दोपहरी मे स्वप्नो की छाया सी!
यहाँ नही विद्युत दीपो का दिवस निशा मे निर्मित,
अँधियाली मे रहती गहरी अँधियाली भय कल्पित!
यहाँ खर्व नर(वानर ?)रहते युग युग से अभिशापित,
अन्न वस्त्र पीडित असभ्य, निर्बुद्धि, पंक मे पालित!
यह तो मानव लोक नही रे, यह है नरक अपरिचित,
यह भारत का ग्राम,—सभ्यता, संस्कृति से निर्वासित!
भाड फूस के विवर —यही क्या जीवनशिल्पी के घर?
कीडो-से रेंगते कौन ये ? बुद्धि-प्राण नारी नर ?
अकथनीय क्षुद्रता विवशता भरी यहा के जग मे
गृह गृह मे है कलह, खेत मे कलह, कलह है मग मे ?
यह रवि शशि का लोक,—जहाँ हँसते समूह मे उडुगण,
जहा चहकते विहग, बदलते क्षण क्षण विद्युत प्रभ घन!
यहाँ वनस्पति रहते, रहती खेतो की हरियाली,
यहाँ फूल हैं, यहाँ ओस, कोकिला, आम की डाली!
ये रहते है यहाँ,—और नीला नभ, बोयी धरती
सूरज का चौडा प्रकाश, ज्योत्स्ना चुपचाप विचरती!
प्रकृतिधाम यह तृण तृण,कण कण जहा प्रफुल्लित जीवित,
यहाँ अकेला मानव ही रे चिर विपण्ण जीवन मृत!!

(दिसम्बर '३९)

ग्राम युवती

उन्मद यौवन से उभर
घटा-सी नव असाढ की सुन्दर
अति श्याम वरण,
श्लथ, मंद चरण,
इठलाती आती ग्राम युवति
वह गजगति
सर्प डगर पर!

सरकाती पट,
खिसकाती लट,—
शरमाती झट
वह नमित दृष्टि से देख उरोजो के युग घट!
हँसती खलखल
अबला चचल
ज्यो फूट पडा हो स्रोत सरल
भर फेनोज्ज्वल दशनो से अधरो के तट!

वह मग मे रुक
मानो कुछ झुक,

आँचल सँभालती, फेर नयन मुख,
पा प्रिय पद की आहट ।
आ ग्राम युवक,
प्रेमी याचक
जब उसे ताकता है इकटक,
उल्लसित,
चकित,
वह लेती मूद पलक पट ।

पनघट पर
मोहित नारी नर ।—
जब जल से भर
भारी गागर
खींचती उबहनी वह, बरबस
चोली से उभर-उभर कसमस
खिंचते सग युग रस भरे कलश,—
जल छलकाती,
रस बरसाती,
बल खाती वह घर को जाती,
सिर पर घट
उर पर धर पट ।

कानो मे गुडहल
खोस,—धवल
या कुँई कनेर, लोध पाटल,
वह हरसिंगार से कच सँवार,
मृदु मौलसिरी के गूथ हार,
गउओ सँग करती वन विहार,
पिक चातक के सँग दे पुकार,—
वह कुद, कास से,
अमलतास से,
आम्र मौर, सहजन, पलाश से,
निर्जन मे सज ऋतु सिंगार ।
तन पर यौवन सुषमाशाली
मुख पर श्रमकण, रवि की लाली,
सिर पर धर स्वर्ण शस्य डाली,
वह मेडो पर आती जाती,
उरु मटकाती,
कटि लचकाती
चिर वर्षातप हिम की पाली ।
धनि श्याम वरण,
अति क्षिप्र चरण,
अधरो से धर पकी बाली ।

रे दो दिन का
उसका यौवन !
सपना छिन का
रहता न स्मरण !
दु खो से पिस,
दुर्दिन मे घिस,
जजर हो जाता उसका तन !
ढह जाता असमय यौवन धन !
बह जाता तट का तिनका
जो लहरों से हँस खेला कुछ क्षण !!

(दिसम्बर '३६)

ग्राम नारी

स्वाभाविक नारी जन की लज्जा से वेष्टित,
नित कम निष्ठ, अगो की हृष्ट पुष्ट सु दर,
श्रम से हैं जिसके क्षुधा काम चिर मर्यादित,
वह स्वस्थ ग्राम नारी, नर की जीवन सहचर !
वह शोभा पात्र नही कुसुमादपि मृदुल गात्र,
वह नैसगिक जीवन सस्कारो स चालित,
सत्याभासो मे पली न छाया मूर्ति मात्र
जीवन रण मे सक्षम, सघर्षों से शिक्षित !
वह वग नारियो - सी न मुग्ध, सस्कृत, कृत्रिम,
रजित कपोल भ्रू अधर, अग सुरभित वासित,
छाया प्रकाश की सृष्टि,—उसे सम ऊष्मा हिम,
वह नही कुलो की काम वदिनी अभिशापित !
स्थिर, स्नेह स्निग्ध है उसका उज्ज्वल दृष्टिपात,
वह द्वद्व ग्रथि स मुक्त मानवी है प्रकृत
नागरियों का नट रग प्रणय उसको न ज्ञात,
सम्मोहन, विभ्रम, अग भगिमा म अपठित !
उसम यत्नो से रक्षित, वैभव स पोषित
सौदय मधुरिमा नही, न शोभा सौकुमाय,
वह नही स्वप्नशायिनी प्रेयसी ही परिचित
वह नर की सहधर्मिणी, सदा प्रिय जिसे काय !
पिक चातक की मादक पुकार से उसका मन
हो उठता नही प्रणय स्मतियो स आदोलित,
चिर क्षुधा शीत की चीत्कारें, दुख का क्रदन
जीवन के पथ से उस नही करत विचलित !
मदु मास पेशियो म उसके दृढ कामलता,
सयोग अवयवो मे अश्लथ उसके उरोज,
कृत्रिम रति की है नही हृदय मे आकुलता,
उद्दीप्त न करता उसे भाव कल्पित मनोज !

वह स्नेह, शील, सेवा, ममता की मधुर मूर्ति,
यद्यपि चिर दैन्य, अविद्या के तम से पीड़ित,
कर रही मानवी के अभाव की आज पूर्ति,
अग्रजा नागरी की,—यह ग्राम वधू निश्चित !
(दिसम्बर '३६)

कठपुतले

ये जीवित हैं या जीवन्मृत ! या किसी काल विष से मूर्छित ?
ये मनुजाकृति ग्रामिक अगणित ! स्थावर, विषण्ण, जड़वत स्तम्भित !
किस महारात्रि तम में निद्रित ये प्रेत ?—स्वप्नवत संचालित
किस मोह मन्त्र से रे कीलित ये दैव दग्ध, जग के पीड़ित !!

बाम्हन, ठाकुर, लाला, कहार, कुर्मी, अहीर, बारी, कुम्हार,
नाइ, कोरी, पासी, चमार, शोषित किसान या जमींदार,—
ये हैं खाते पीते, रहते, चलते फिरते, रोते हँसते,
लड़ते मिलते, सोते जगते, आनन्द, नृत्य, उत्सव करते,—

पर जैसे कठपुतले निर्मित, छल प्रतिमाएँ भूषित सज्जित !
युग युग की प्रेतात्मा अविदित, इनकी गतिविधि करती यन्त्रित !
ये छाया तन, ये माया जन, विश्वास मूढ नर नारी गण,
चिर रूढ़ि रीतियों के शोषण सूत्रों में बँध करते नर्तन !

पा गत संस्कारों के इंगित ये क्रियाचार करते निश्चित,
कल्पित स्वर में मुखरित, स्पन्दित क्षण भर को ज्यों लगते जीवित !
ये मनुज नहीं हैं रे जाग्रत जिनका उर भावों से दोलित,
जिसमें महदाकाक्षाएँ नित होती समुद्र-सी आलोड़ित !

जो बुद्धिप्राण, करते चिन्तन, सत्यान्वेषण, सत्यालोचन
जो जीवन शिल्पी चिर शोभन संचारित करते भव जीवन !
ये दारु मूर्तियाँ हैं चित्रित, जो घोर अविद्या में मोहित,
ये मानव नहीं, जीव शापित, चेतना विहीन, आत्म विस्मृत !
(दिसम्बर '३६)

वे आँखें

अन्धकार की गुहा सरीसी
उन आँखों से डरता है मन,
भरा दूर तक उनमें दारुण
दैन्य दुख का नीरव रोदन !
अह, अथाह नैराश्य, विवशता का
उनमें भीषण सूनापन,
मानव के पाशव पीड़न का
देतीं वे निर्मम विज्ञापन !
फूट रहा उनमें गहरा आतंक,
क्षोभ, शोषण, संशय, भ्रम,

डूब बालिमा मे उनकी
कँपता मन, उनमे मरघट का तम।
ग्रस लेती दर्शक को वह
दुर्ज्ञेय दया की भूखी चितवन,
झूल रहा उस छाया-पट मे
युग-युग का जर्जर जन जीवन।
वह स्वाधीन किसान रहा,
अभिमान भरा आँखो म इसका,
छोड उसे मझधार आज
ससार कगार सदृश वह खिसका।
लहराते वे खेत दृगो म
हुआ बेदखल वह अब जिनस,
हँसती थी उसके जीवन की
हरियाली जिनके तन-तृन स।
आँखो ही मे घूमा करता
वह उसकी आँखो का तारा,
कारकुनो की लाठी से जो
गया जवानी ही म मारा।
बिका दिया घर द्वार,
महाजन ने न ब्याज की कौडी छोडी,
रह-रह आँखो मे चुभती वह
कुर्क हुई बरधो की जोडी।
उजरी उसके सिवा किसे कब
पास दुहाने आने देती?
अह, आँखो मे नाचा करती
उजड गयी जो सुख की खेती।
बिना दवा दपन के घरनी
स्वरग चली,—आँखें आती भर,
देख-रेख के बिना दुधमुही
बिटिया दो दिन बाद गयी मर।
घर मे विधवा रही पतोहू,
लछमी थी यद्यपि पति घातिन,
पकड मँगाया कोतवाल ने,
डूब कुएँ म मरी एक दिन।
खैर, पर की जूती, जोरू
न सही एक, दूसरी आती,
पर जवान लडके की सुध कर
साँप लोटते, फटती छाती।
पिछले सुख की स्मृति आँखो मे
क्षण भर एक चमक है लाती,
तुरत शून्य मे गड वह चितवन
तीखी नोक सदृश बन जाती।

वह स्नेह, शील, सेवा, ममता की मधुर मूर्ति,
यद्यपि चिर दैन्य, अविद्या के तम से पीड़ित,
कर रही मानवी के अभाव की आज पूर्ति,
अग्रजा नागरी की,—यह ग्राम वधू निश्चित!
(दिसम्बर '३९)

कठपुतले

ये जीवित हैं या जीवन्मृत! या किसी काल विष से मूर्छित?
ये मनुजाकृति ग्रामिक अगणित! स्थावर, विषण्ण, जड़वत् स्तम्भित!
किस महारात्रि तम में निद्रित ये प्रेत?—स्वप्नवत् सचालित
किस मोह मन्त्र से रे कीलित ये दैव दग्ध, जग के पीड़ित!!

बाम्हन, ठाकुर, लाला, कहार, कुर्मी, अहीर, बारी, कुम्हार,
नाई, कोरी, पासी, चमार, शोषित किसान या जमींदार,—
ये हैं खाते पीते, रहते, चलते फिरते, रोते हँसते,
लड़ते मिलते, सोते जगते, आनन्द, नृत्य, उत्सव करते,—

पर जैसे कठपुतले निर्मित, छल प्रतिमाएँ भूषित सज्जित!
युग युग की प्रेतात्मा अविदित, इनकी गतिविधि करती यन्त्रित!
ये छाया तन, ये माया जन, विश्वास मूढ़ नर नारी गण,
चिर रूढ़ि रीतियों के शोषण सूत्रों में बँध करते नर्तन!

पा गत संस्कारों के इंगित ये क्रियाचार करते निश्चित,
कल्पित स्वर में मुखरित, स्पन्दित क्षण-भर को ज्यों लगते जीवित!
ये मनुज नहीं हैं रे जाग्रत जिनका उर भावों से दोलित,
जिसमें महदाकांक्षाएँ नित होतीं समुद्र - सी आलोड़ित!
जो बुद्धिप्राण, करते चिन्तन, तत्त्वान्वेषण, सत्यालोचन,
जो जीवन शिल्पी चिर शोभन सचारित करते भव जीवन!
ये दारु मूर्तियाँ हैं चित्रित, जो घोर अविद्या में मोहित,
ये मानव नहीं, जीव शापित, चेतना विहीन, आत्म विस्मृत!
(दिसम्बर '३९)

वे आँखें

अधकार की गुहा सरीसी
उन आँखों से डरता है मन,
भरा दूर तक उनमें दारुण
दैन्य दुख का नीरव रोदन!
अह, अथाह नैराश्य, विवशता का
उनमें भीषण सूनापन,
मानव के पाशव पीड़न का
देतीं वे निर्मम विज्ञापन!
फूट रहा उनसे गहरा आतंक,
क्षोभ, शोषण, संशय, भ्रम,

डूब कालिमा मे उनकी
कँपता मन, उनमे मरघट का तम !
ग्रस लेती दर्शक को वह
दुर्बोध दया की भूखी चितवन,
झूल रहा उस छाया पट मे
युग-युग का जर्जर जन जीवन !
वह स्वाधीन किसान रहा,
अभिमान भरा आँखो म इसका,
छोड उसे मझधार आज
ससार कगार सदृश वह खिसका !
लहराते वे खेत दृगो म
हुआ बेदखल वह अब जिनसे,
हँसती थी उसके जीवन की
हरियाली जिनके तन-तृन से !
आँखो ही मे घूमा करता
वह उसकी आँखो का तारा,
कारकुनो की लाठी से जो
गया जवानी ही मे मारा !
बिका दिया घर द्वार,
महाजन ने न ब्याज की कौडी छोडी,
रह-रह आँखो मे चुभती वह
कुर्क हुई बरधो की जोडी !
उजरी उसके सिवा किसे कब
पास दुहाने आने देती ?
अह, आँखो मे नाचा करती
उजड गयी जो सुख की खेती !
बिना दवा दर्पन के घरनी
स्वरग चली,—आँखें आती भर,
देख-रेख के बिना दुधमुही
बिटिया दो दिन बाद गयी मर !
घर मे विधवा रही पतोहू,
लछमी थी, यद्यपि पति घातिन,
पकड मँगाया कोतवाल ने,
डूब कुएँ मे मरी एक दिन !
खैर, पर की जूती, जोरू
न सही एक दूसरी आती
पर जवान लडके की सुध कर
साँप लोटते फटती छाती !
पिछले सुख की स्मृति आँखो म
क्षण-भर एक चमक है लाती,
तुरत शून्य मे गड वह चितवन
तीखी नोक सदृश बन जाती !

बैठ, टेक धरती पर माथा, वह सलाम करता है झुककर,
उस धरती से पाँव उठा लेने को जी करता है क्षण भर।
घुटनों से मुड़ उसकी लम्बी टाँगें जाँघें सटी परस्पर,
झुका बीच में शीश, झुर्रियों का झाँझर मुख निकला बाहर।
हाथ जोड़, चौड़े पंजों की गुँथी अँगुलियों को कर सम्मुख,
मौन त्रस्त चितवन से, कातर वाणी से वह कहता निज दुख।
गर्मी के दिन, धरे उपरनी सिर पर, लुंगी से ढाँपे तन,—
नंगी देह भरी बालों से,—वन मानुस सा लगता वह जन।
भूखा है: पैसे पा, कुछ गुनमुना, खड़ा हो, जाता वह घर
पिछले पैरों के बल उठ जैसे कोई चल रहा जानवर।
काली नारकीय छाया निज छोड़ गया वह मेरे भीतर,
पैशाचिक-सा कुछ: दुःखों से मनुज गया शायद उसमें मर।

(जनवरी '४०)

धोबियों का नृत्य

लो, छन छन, छन छन,
छन छन, छन छन,
नाच गुजरिया हरती मन।
उसके पैरों में घुँघरू कल,
नट की कटि में घण्टियाँ तरल
वह फिरकी सी फिरती चंचल,
नट की कटि खाती सौ सौ बल।
लो, छन छन छन छन
छन छन, छन छन
ठुमुक गुजरिया हरती मन।
उड़ रहा ढोल धाधिन, धातिन,
औ' हुड़क घुड़कता ढिम ढिम ढिन,
मंजीर खनकते खिन खिन खिन,
मद मस्त रजक, होली का दिन।
लो, छन छन, छन छन,
छन छन छन छन
थिरक गुजरिया हरती मन।
वह काम शिखा सी रही सिहर,
नट की कटि में लालसा भँवर,
कँप कँप नितम्ब उसके थर थर
भर रहे घण्टियों में रति स्वर,
लो छन छन, छन छन,
छन छन छन छन,
मत्त गुजरिया हरती मन।
फहराता लँहगा लहर लहर,
उड़ रही ओढ़नी फर फर फर,

घोती के मदुक रहे उपर,
(स्त्री नहीं गुजरिया, वह है नर!)

लो, छन छन, छन छन,
छन छन, छन छन,
हुलस गुजरिया हरती मन!

उर की अतृप्त वासना उभर
इस ढोल मंजीरे के स्वर पर
नाचती, गान के फैला पर,
प्रिय जन गण को उत्सव अवसर,—

लो, छन छन, छन छन,
छन छन, छन छन,
चतुर गुजरिया हरती मन!

(जनवरी '४०)

ग्राम वधू

जाती ग्राम वधू पति के घर!
मा से मिल, गोदी पर सिर धर,
गा गा बिटिया रोती जी भर,
जन जन का मन करुणा कातर,
जाती ग्राम वधू पति के घर!
भीड लग गयी लो स्टेशन पर,
सुन यात्री ऊँचा रोदन स्वर
झाँक रहे खिडकी से बाहर,
जाती ग्राम वधू पति के घर!
चिंतातुर सब, कौन गया मर
पहियो से दब, कट पटरी पर,
पुलिस कर रही कहो पकड धर!
जाती ग्राम वधू पति के घर!
मिलती ताई से गा रोकर,
मौसी से वह आपा खोकर,
बारी बारी रो, चुप होकर,
जाती ग्राम वधू पति के घर!
बिदा फुआ से ले हा हाकर,
सखियो से रो धो बतियाकर,
पडोसिनो पर टूट, रँभाकर
जाती ग्राम वधू पति के घर!
मा कहती,—रखना सँभाल घर,
मौसी,—धनि, लाना गोदी भर,
सखियाँ —जाना हमे मत बिसर
जाती ग्राम वधू पति के घर!

झर रहे ढाक, पीपल के दल,
हो उठी कोकिला मतवाली !
महके कटहल, मुकुलित जामुन,
जंगल में झरबेरी झूली,
फूले आड़ू, नीबू, दाड़िम,
आलू, गोभी, बैंगन, मूली !
पीले मीठे अमरूदों में
अब लाल लाल चित्तियाँ पड़ी,
पक गये सुनहले मधुर बेर,
अँवली से तरु की डाल जड़ी !
लहलह पालक, महमह धनिया,
लौकी औ' सेम फली फैली,
मखमली टमाटर हुए लाल,
मिरचों की बड़ी हरी थैली !
गंजी को मार गया पाला,
अरहर के फूलों को झुलसा,
हाँका करती दिन-भर बंदर
अब मालिन की लड़की तुलसा !
बालाएँ गजरा काट काट,
कुछ कह गुपचुप हँसती किन किन,
चाँदी की-सी घण्टियाँ तरल
बजती रहती रह रह खिन खिन् !
छायातप के हिलकोरों में
चौड़ी हरीतिमा लहराती,
ईखों के खेतों पर सफेद
कासों की झण्डी फहराती !
ऊँची अरहर में लुका छिपी
खेलती युवतियाँ मदमाती,
चुम्बन पा प्रेमी युवकों के
श्रम से श्लथ जीवन बहलाती !
बँगिया के छोटे पेड़ों पर
सुंदर लगते छोटे छाजन,
सुंदर गेहूँ की बालों पर
मोती के दानों-से हिमकन !
प्रात ओझल हो जाता जग,
भू पर आता ज्यों उतर गगन,
सुंदर लगते फिर कुहरे से
उठते-से खेत, बाग, गृह वन !
बालू के साँपों से अंकित
गंगा की सतरंगी रेती
सुंदर लगती सरपत छायी
तट पर तरबूजों की खेती !

अँगुली की कघी से बगुले
कलँगी सँवारते हैं कोई
तिरते जल मे सुरखाब, पुलिन पर
मगरौठी रहती सोयी!
डुबकियाँ लगाते सामुद्रिक,
धोती पीली चोचें धोबिन,
उड अबाबील, टिटिहरी, बया,
चाहा चुगते कदम, कृमि, तन!
नीले नभ मे पीलो के दल
आतप मे धीरे मँडराते,
रह रह काले, भूरे, सुफेद
चल पखो के रँग झलकाते!
लटके तरुग्रो पर विहग नीड
वनचर लडको को हुए ज्ञात,
रेखा - छवि विरल टहनियो की
ठूठे तरुग्रो के नग्न गात!
आगन मे दौड रहे पत्ते
घूमती भँवर - सी शिशिर वात,
बदली छँटने पर लगती प्रिय
ऋतुमती धरित्री सद्य स्नात।
हँसमुख हरियाली हिम - आतप
सुख से अलसाये - से सोये,
भीगी अँधियाली मे निशि की
तारक स्वप्नो मे - से खोये,—
मरकत डिब्बे - सा खुला ग्राम—
जिस पर नीलम नभ आच्छादन,—
निरुपम हिमान्त मे स्निग्ध शात
निज शोभा से हरता जन मन!
(फरवरी '४०)

नहान

जन पर्व मकर सक्रांति आज
उमडा नहान को जन समाज
गगा तट पर सब छोड काज!

नारी नर कई कोस पैदल
आ रहे चले लो, दल के दल
गगा दर्शन को पुण्योज्वल!

लडके, बच्चे, बूढे, जवान,
रोगी, भोगी, छोटे, महान,
क्षेत्रपति, महाजन औ किसान!

दादा, नानी, चाचा, ताई,
मौसा, फूफी, मामा, माई,
मिल ससुर, बहू, भावज, भाई।
गा रहीं स्त्रियाँ मंगल कीर्तन,
भर रहे तान नवयुवक मगन
हँसते, बतलाते बालक गण।
अतलस, सिंगी, केला औ' सन
गोटे गोखुरू टँगे,—स्त्री जन
पहनी छींटें, फुलवर, साटन।
बहु काले लाल, हरे, नीले,
बैंगनी, गुलाबी, पट पीले,
रँग-रँग के हलके, चटकीले।
सिर पर है चँदवा शीशफूल,
कानों में झुमके रहे झूल,
बिरिया, गलचुमनी, कर्णफूल।
माथे के टीके पर जन मन,
नासा में नथिया, फुलिया, कन,
बेसर, बुलाक, झुलनी, लटकन।
गल में कटवा, कण्ठा, हँसली,
उर में हुमेल, कल चम्पकली,
जुगनी, चौकी, मूँगे नक्ली।
बाँहों में बहु बहुँटे, जोशन
बाजूबंद, पट्टी, बाँक सुपम,
गहने ही गँवारिनों के धन।
कँगने, पहुँची, मृदु पहुँचों पर,
पिछला, मँझुवा, अगला क्रमतर
चूड़ियाँ फूल की मठियाँ वर।
हथफूल पीठ पर कर के धर,
उँगलियाँ मुँदरियों से सब भर,
आरसी अँगूठे में देकर—
वे कटि में चल करधनी पहन,
पाँवों में पायजेब, झाँझन,
बहु छड़े, कड़े, बिछिया शोभन,—
यों सोने चाँदी से झंकृत,
जातीं वे पीतल गिलट खचित
बहु भाँति गोदना से चित्रित।
ये शत, सहस्र नर नारी जन
लगते प्रहृष्ट सब, मुक्त, प्रमन,
हैं आज न नित्य कर्म बंधन।
विश्वास मूढ़, निःसंशय मन,
करने आये ये पुण्यार्जन,
युग युग से मार्ग भ्रष्ट जनगण।

इनमे विश्वास अगाध, अटल,
इनको चाहिए प्रकाश नवल,
भर सके नया जो इनमे बल !

ये छोटी बस्ती मे कुछ क्षण
भर गये आज जीवन स्पदन,—
प्रिय लगता जनगण सम्मेलन ! (फरवरी '४०)

गगा

अब आधा जल निश्चल, पीला,
आधा जल चचल औ' नीला,—
गीले तन पर मृदु सध्यातप
सिमटा रेशम पट सा ढीला !

ऐसे सोने के साँझ प्रात
ऐसे चाँदी के दिवस रात,
ले जाती बहा कहाँ गगा
जीवन के युग क्षण,—किसे ज्ञात !

विश्रुत हिम पवत से निगत,
किरणोज्वल चल कल ऊर्मि निरत,
यमुना, गोमती आदि से मिल
होती यह सागर मे परिणत !

यह भौगोलिक गगा परिचित,
जिसके तट पर बहु नगर प्रथित,
इस जड गगा से मिली हुई
जन गगा, एक और जीवित !

वह विष्णुपदी, शिव मौलि स्रुता,
वह भीष्म प्रसू औ' जह्नु सुता,
वह देव निम्नगा, स्वगगा,
वह सगर पुत्र तारिणी श्रुता !

वह गगा यह केवल छाया,
वह लोक चेतना, यह माया,
वह आत्म वाहिनी ज्योति सरी,
यह भू पतिता, कचुक काया !

वह गगा जन मन से नि सृत
जिसमे बहु बुदबुद युग नर्तित,
वह आज तरगित ससृति के
मृत सैकत को करने प्लावित !

दिशि दिशि का जन मत वाहित कर,
वह बनी अकूल अतल सागर
भर देगी दिशि पल पुलिनो मे

वह नव जीवन की रज उवर !

अब नभ पर रेखा शशि शोभित,
गगा का जल श्यामल कम्पित
लहरो पर चाँदी की किरणें
करती प्रकाशमय कुछ अकित ! (फरवरी '४०)

चमारो का नाच

अररर
मचा खूब हुल्लड हुडदग,
धमक धमाधम रहा मृदग,
उछल कूद, बकवाद झडप मे
खेल रही खुल हृदय उमग
यह चमार चौदस का ढग !

ठनक कसावर रहा ठनाठन,
थिरक चमारिन रही छनाछन,
झूम झम बाँसुरी करिगा
बजा रहा, बेसुध सब हरिजन
गीत नत्य के सग है प्रहसन !

मजलिस का मसखरा करिगा
बना हुआ है रग बिरगा,
भरे चिरकुटो से वह सारी
देह हँसाता खूब लफगा,
स्वाँग युद्ध का रच बेढगा !

बँधा चाम का तवा पीठ पर
पहुँचे पर बद्धी का हण्टर,
लिये हाथ मे ढाल, टेडही
दुमुँहा सी बलखाई सुदर—
इतराता वह बन मुरलीधर !

जमीदार पर फबती कसता,
बाम्हन ठाकुर पर है हँसता,
बातो मे वक्रोक्ति काकु औ'
श्लेष बोल जाता वह सस्ता,
बल काँटा की कह बलकत्ता !

घमासान हो रहा है समर,
उस बुलाने आये अफसर,
गोला फटकर आँख उडा दे
छिपा हुआ वह उमे यही डर,
खौफ न मरने का रत्ती भर !

'बाबा' उसका है साथी नट,
गदने उस पर जमा पटापट,

उसे टोकता—'गोली खाकर
आख जायगी क्यो बे नटखट ?
भुन न जायगा मुनगे सा झट ?'
'गोली खायी ही है !' 'चल हट !'
'कई—भाँग की !' 'वा, मेरे भट !
'सच काका !' भगवान राम
'सीसे की गोली !' 'रामधे ?' 'विकट !'
गदका उस पर पडता चटपट !
वह भी फौरन बढ़ी कसकर
काका को देता प्रत्युत्तर,
खेत रह गये जब सब रण मे
वह तब निधडक गुस्से मे भर
लडने को निकला था बाहर !
लट्टू उसके गुन पर हरिजन,
छेड रहा वशी फिर मोहन,
तिरछी चितवन से जन-मन हर
इठला रही चमारिन छन छन,
ठनक कसावर बजता ठन ठन !
ये समाज के नीच अधम जन,
नाच कूद कर बहलाते मन,
वर्णों के पद दलित चरण ये
मिटा रहे निज कसक औ' कुढन
कर उच्छृखलता उद्धतपन !
अररर
शोर, हँसी, हुल्लड, हुडदग,
धमक रहा धाग्डाग मृदग
मार पीट बकवास झडप मे
रग दिखाती महुआ भग
यह चमार चौदस का ढग !

(जनवरी '४०)

कहारो का रुद्र नृत्य

रग-रग के चीरो से भर अग, चीस्वासा से,
दैन्य शून्य मे अप्रतिहत जीवन की अभिलाषा से,
जटा घटा सिर पर यौवन की श्मश्रु छटा आनन पर,
छोटी बडी तूबिया, रँग रँग की गुरियाँ सज तन पर,
हुलस नृत्य करते तुम अटपट धर पटु पद, उच्छृहल
आकाक्षा से समुच्छ्वसित जन मन का हिला धरातल !
फडक रहे अवयव आवेश विवश मुद्राएँ अकित,
प्रखर लालसा की ज्वालाग्रा सी अगुलियाँ कम्पित,
उष्ण देश के तुम प्रगाढ जीवनोल्लास-से निर्भर,

बहुभार उद्दाम कामना के-से खुले मनोहर!
एक हाथ में ताम्र डमरु धर, एक शिवा की कटि पर,
नृत्य तरंगित रुद्र पुरुष-से तुम जन-मन के सुखकर!
वाद्यों के उन्मत्त घोष से, गायन स्वर से कम्पित
जन इच्छा का गाढ़ चित्र कर हृदय पटल पर अंकित,
खोल गये संसार नया तुम मेरे मन में, क्षण भर
जन संस्कृति का तिग्म स्फीत सौंदर्य स्वप्न दिखलाकर!
युग-युग के सत्याभासों से पीड़ित मेरा अंतर
जन मानव गौरव पर विस्मित मैं भावी चिंतन पर!

(फरवरी '४०)

भारतमाता

भारतमाता

ग्रामवासिनी!
खेतों में फैला है श्यामल
धूल भरा मैला सा आँचल
गंगा यमुना में आँसू जल
मिट्टी की प्रतिमा
उदासिनी!

दैन्य जड़ित अपलक नत चितवन
अधरों में चिर नीरव रोदन,
युग युग के तम से विषण्ण मन,
वह अपने घर में
प्रवासिनी!

तीस कोटि संतान नग्न तन,
अर्ध क्षुधित, शोषित निरस्त्र जन,
मूढ़, असभ्य, अशिक्षित, निर्धन,
नत मस्तक
तरु तल निवासिनी!

स्वर्ण शस्य पर-पद-तल लुण्ठित,
धरती सा सहिष्णु मन कुंठित,
क्रन्दन कम्पित अधर मौन स्मित,
राहु ग्रसित
शरदेंदु हासिनी!

चिंतित भृकुटि क्षितिज तिमिरांकित,
नमित नयन नभ वाष्पाच्छादित,
आनन श्री छाया शशि उपमित,
ज्ञान मूढ़
गीता प्रकाशिनी!

सफल आज उसका तप संयम,
पिला अहिंसा स्तन्य सुधोपम,
हरती जन मन भय, भव तम भ्रम,
जन जननी
जीवन विकासिनी।

चरखा गीत

(जनवरी '४०)

भ्रम, भ्रम, भ्रम,—
घूम घूम भ्रम भ्रम रे चरखा
कहता मैं जन का परम सखा
जीवन का सीधा सा नुसखा—
श्रम, श्रम, श्रम।

कहता 'हे अगणित दरिद्रगण!
जिनके पास न अन्न, धन, वसन
मैं जीवन उन्नति का साधन—
क्रम, क्रम क्रम!

भ्रम, भ्रम, भ्रम,—
धुन रूई, निर्धनता दो धुन,
कात सूत, जीवन पट लो बुन,
अकर्मण्य, सिर मत धुन, मत धुन,
थम, थम, थम!

नग्न गात यदि भारत मा का,
तो खादी समृद्धि की राका,
हरो देश की दरिद्रता का
तम, तम, तम!'

भ्रम, भ्रम, भ्रम—
कहता चरखा प्रजातंत्र से,
मैं कामद हूँ सभी मंत्र से,
कहता हँस आधुनिक यंत्र से
नम नम, नम!'

सेवक पालक शोषित जन का
रक्षक मैं स्वदेश के धन का,
कातो हे काटो तन मन का
भ्रम भ्रम, भ्रम!'

(दिसम्बर '३९)

महात्माजी के प्रति

निर्वाणोन्मुख आदर्शों के अंतिम दीप शिखोदय ! —
जिनकी ज्योति छटा के क्षण मे प्लावित आज दिगचल,—
गत आदर्शों का अभिभव ही मानव आत्मा की जय,
अत पराजय आज तुम्हारी जय स चिर लोकोज्ज्वल !
मानव आत्मा के प्रतीक ! आदर्शों से तुम ऊपर,
निज उद्देश्यों से महान, निज यश से विशद, चिर तन,
सिद्ध नही, तुम लोक सिद्धि के साधन बने महत्तर,
विजित आज तुम नर वरेण्य, गणजन विजयी साधारण !
युग युग की सस्कृतियो का चुन तुमने सार सनातन
नव मस्कृति का शिलान्याम करना चाहा भव शुभकर,
साम्राज्यो ने ठुकरा दिया युगो का वैभव पाहन—
पदाघात स मोह मुक्त हो गया आज जन अन्तर !
दलित देश के दुर्दम नेता, हे ध्रुव, धीर, धुरन्धर,
आत्मशक्ति से दिया जाति शव को तुमने जीवन बल,
विश्व सभ्यता का होना था नखशिख नव रूपातर !
रामराज्य का स्वप्न तुम्हारा हुआ न यों ही निष्फल !
विकसित व्यक्तिवाद के मूल्यो का विनाश था निश्चय,
वद्ध विश्व सामन्त काल का था केवल जड खडहर
हे भारत के हृदय ! तुम्हारे साथ आज नि सशय
चूण हो गया विगत सास्कृतिक हृदय जगत का जर्जर !
गत सस्कृतियो का, आदर्शों का था नियत पराभव,
वग व्यक्ति की आत्मा पर थे सौध धाम जिनके स्थित,
तोड युगो के स्वण पाश अब मुक्त हो रहा मानव,
जन मानवता की भव सस्कृति आज हो रही निर्मित !
किये प्रयोग नीति सत्यो के तुमने जन जीवन पर,
भावादश न सिद्ध कर सके सामूहिक जीवन हित,
अधोमूल अश्वत्थ विश्व, शाखाए सस्कृतियाँ वर
वस्तु विभव पर ही जनगण का भाव विभव अवलम्बित।
वस्तु सत्य का करते भी तुम जग मे यदि आवाहन,
सबमे पहले विमुख तुम्हारे होता निधन भारत,
मध्य युगो की नैतिकता म पोषित शोषित जनगण
बिना भाव-स्वप्नो को परखे कब हो सकते जाग्रत ?
सफल तुम्हारा सत्यान्वेषण, मानव सत्यान्वेषक !
धम नीति के मान अचिर सब, अचिर शास्त्र, दशन मत,
शासन, जनगण तन्त्र अचिर युग स्थितियाँ जिनकी प्रेरक,
मानव गुण, भव रूप नाम होते परिवर्तित युगपत !
पूण पुरुष, विकसित मानव तुम जीवन सिद्ध अहिंसक,
मुक्त हुए तुम मुक्त हुए जन हे जग वन्द्य महात्मन !
देख रहे मानव भविष्य तुम मनश्चक्षु बन अपलक
धन्य तुम्हारे श्री चरणो स धरा आज चिर पावन !
(दिसम्बर ३६)

राष्ट्र गान

जन भारत हे!
भारत हे!

स्वर्ग स्तम्भवत गौरव मस्तक
उन्नत हिमवत् हे,
जन भारत हे
जाग्रत भारत हे!

गगन चुम्बि विजयी तिरंग ध्वज
इन्द्रचापवत हे,
कोटि कोटि हम श्रमजीवी सुत
सम्भ्रम युत नत हे,
सब एक मत, एक ध्येय रत,
सब श्रेय व्रत हे
जन भारत हे,
जाग्रत भारत हे!

समुच्चरित शत शत कण्ठों से
जन युग स्वागत हे,
सिन्धु तरंगित, मलय श्वसित,
गंगाजल ऊर्मि निरत हे,
शरद इन्दु स्मित अभिनन्दन हित,
प्रतिध्वनित पर्वत हे
स्वागत हे स्वागत हे,
जन भारत हे,
जाग्रत भारत हे!

स्वर्ग खण्ड षड ऋतु परिक्रमित,
आम्र मंजरित, मधुप गुंजरित,
कुसुमित फल द्रुम पिक कल कूजित,
उर्वर, अभिमत हे,
दश दिशि हरित शस्य श्री हर्षित
पुलक राशिवत हे,
जन भारत हे,
जाग्रत भारत हे!

जाति धर्म मत, वर्ग श्रेणि शत,
नीति रीति गत हे
मानवता में सकल समागत
जन मन परिणत हे,
अहिंसास्त्र जन का मनुजोचित
चिर अप्रतिहत हे,

बल के विमुख, सत्य के सम्मुख
हम श्रद्धानत हे,
जन भारत हे,
जाग्रत भारत हे!

किरण केलि रत रक्त विजय ध्वज
युग प्रभातवत् हे,
कीर्ति स्तम्भवत् उन्नत मस्तक
प्रहरी हिमवत हे,
पद तल छू शत फेनिलोर्मि फन
दीपोदधि नत हे,
वर्ग मुक्त हम श्रमिक कृषक जन
चिर शरणागत हे,
जन भारत हे,
जाग्रत भारत हे!

(जनवरी '४०)

ग्राम देवता

राम राम,
हे ग्राम देवता, भूति ग्राम!
तुम पुरुष पुरातन, देव सनातन, पूर्णकाम,
शिर पर शोभित वर छत्र तड़ित स्मित घन श्याम
वन पवन मर्मरित व्यजन, अन्न फल श्री ललाम!

तुम कोटि बाहु, वर हलधर, वृष वाहन बलिष्ठ,
मित असन, निर्वसन, क्षीणोदर, चिर सौम्य शिष्ट,
शिर स्वर्ण शस्य मंजरी मुकुट, गणपति वरिष्ठ,
वाग्युद्ध वीर, क्षण क्रुद्ध धीर, नित कर्मनिष्ठ!

पिक वयनी मधुऋतु से प्रति वत्सर अभिनंदित,
नव आम्र मंजरी मलय तुम्हें करता अर्पित,
प्रावृट में तव प्रांगण घन गर्जन से हर्षित,
मरकत कल्पित नव हरित प्ररोहों में पुलकित!
शशि मुखी शरद करती परिक्रमा कुन्द स्मित,
वेणी में खोंसे काँस, कान में कुईं लसित,
हिम तुम्हें करता तुहिन मोतियों से भूषित,
बहु सोन चाव युग्मों से तव सरि सर कूजित!

अभिराम तुम्हारा बाह्य रूप मोहित कवि मन,
नभ के नीलम सम्पुट में तुम मरकत शोभन!
पर, खोल आज निज अन्तःपुर के पट गोपन
चिर मोह मुक्त कर दिया, देव! तुमने यह जन!

राम राम

हे ग्राम देवता, रूढि धाम!
तुम स्थिर, परिवतन रहित, कल्पवत एक याम,
जीवन सघपण विरत, प्रगति पथ के विराम,
शिक्षक तुम, दस वर्षों स मैं सेवक, प्रणाम!
कवि अल्प, उडुप मति, भव तितीर्षु,—दुस्तर अपार,
कल्पना पुत्र मैं, भावी द्रष्टा निराधार,
सौदय स्वप्नचर,—नीति दण्डधर तुम उदार,
चिर परम्परा के रक्षक, जन हित मुक्त द्वार!
दिखलाया तुमने भारतीयता का स्वरूप,
जन मर्यादा का स्रोत शू य चिर अ घ कूप,
जग स अबोध, जानता न था मैं छाह धूप,
तुम युग - युग के जन विश्वासो का जीण स्तूप,
यह वही अवध! तुलसी की सस्कृति का निवास!
श्री राम यही करते जन मानस मे विलास!
अह, सतयुग के खँडहर का यह दयनीय ह्रास!
वह अकथनीय मानसिक दै य का बना ग्रास!!
ये श्रीमानो के भवन आज साकेत धाम!
सयत तप के आदश बन गये भोग काम!
आराधित सत्त्व यहाँ, पूजित धन, वश नाम!
यह विकसित व्यक्तिवाद की सस्कृति! राम राम!!
श्री राम रहे साम त काल के ध्रुव प्रकाश,
पशुजीवी युग म नव कृषि सस्कृति के विकास,
कर सका मध्य युग नही जनो का तम विनाश,
वे रहे सनातनता के तब मे क्रीत दास!
पशु युग मे थे गणदेवो के पूजित पशुपति,
थी रुद्रचरो से कुण्ठित कृषि युग की उन्नति!
श्री राम रुद्र की शिव मे कर जन हित परिणति,
जीवित कर गय अहल्या को, थे सीतापति!
वाल्मीकि बाद आये श्री व्यास जगत व दित,
वह कृषि सस्कृति का चरमोन्नत युग था निश्चित,
बन गये राम तब कृष्ण, भेद, मात्रा का मित,
वभव युग की वशी स कर जन मन मोहित!
तब से युग युग के हुए चित्रपट परिवर्तित
तुलसी ने कृषि मन युग अनुरूप किया निर्मित,
खो गया सत्य का रूप, रह गया नामामत,
जन समाचरित वह सगुण बन गया आराधित!
गत सक्रिय गुण बन रूढि रीति के जाल गहन
कृषि प्रमुख देश के लिए हो गये जड ब धन,
जन नही य त्र जीवनोपाय के अब वाहन,
सस्कृति के केद्र न वग अधिप, जन साधारण!

बल के विमुख, सत्य के सम्मुख
हम श्रद्धानत हैं,
जन भारत है,
जाग्रत भारत है!

किरण केलि रत रक्त विजय ध्वज
युग प्रभातवत है,
कीर्ति स्तम्भवत उन्नत मस्तक
प्रहरी हिमवत् है,
पद तल छू शत फेनिलोर्मि फन
शेषोदधि नत है,
वग मुक्त हम श्रमिक कृषक जन
चिर शरणागत है,
जन भारत है,
जाग्रत भारत है!

(जनवरी '४०)

ग्राम देवता

राम राम,
हे ग्राम देवता, भूति ग्राम!
तुम पुरुष पुरातन, देव सनातन पूर्णकाम,
शिर पर शोभित वर छत्र तडित स्मित घन श्याम
वन पवन मर्मरित व्यजन, अन्न फल श्री ललाम!

तुम कोटि बाहु, वर हलधर, वृष वाहन बलिष्ठ,
मित अशन, निवसन, क्षीणोदर, चिर सौम्य शिष्ट,
शिर स्वर्ण शस्य मंजरी मुकुट, गणपति वरिष्ठ,
वाग्युद्ध वीर, क्षण क्रुद्ध धीर, नित कर्मनिष्ठ!

पिक बयनी मधुऋतु से प्रति वत्सर अभिनंदित,
नव आम्र मंजरी मलय तुम्हें करता अर्पित,
प्रावट में तव प्रांगण घन गर्जन से हर्षित,
मरकत कल्पित नव हरित प्ररोहों में पुलकित!
शशि मुखी शरद करती परि[illegible]
वेणी में खोंसे काँस [illegible]
हिम तुमको करता तुहिन
बहु सोन चाक युग्मों से
अभिराम तुम्हारा बाह्य रूप, मो[illegible]
नभ के नीलम सम्पुट में तुम
पर, खोल आज निज अंतपुर
चिर मोह मुक्त कर दिया, देव

राम राम,
हे ग्राम देव, लो हृदय थाम,
अब जन स्वातन्त्र्य युद्ध की जग में धूम धाम।
उद्यत जनगण युग क्रान्ति के लिए बाँध लाम,
तुम रूढ़ि रीति की खा अफीम, लो चिर विराम।
यह जन स्वातन्त्र्य नहीं, जनैक्य का वाहक रण,
यह अर्थ राजनीतिक न, सांस्कृतिक संघर्षण।
युग-युग की खण्ड मनुजता, दिशि दिशि के जनगण
मानवता में मिल रहे,—ऐतिहासिक यह क्षण।
नव मानवता में जाति वर्ग होंगे सब क्षय,
राष्ट्रों के युग वर्गान्त परिधि में जग की लय।
जन आज अहिंसक, होंगे कल स्नेही सहृदय
हिन्दू ईसाई मुसलमान,—मानव निश्चय।
मानवता अब तक देश काल के थी आश्रित,
संस्कृतियाँ सकल परिस्थितियों से थीं पीड़ित।
गत देश काल मानव के बल ने आज विजित,
सब धर्म विगत नैतिकता मनुष्यता विकसित।
छायाएँ हैं संस्कृतियाँ मानव की निश्चित
वह केन्द्र परिस्थितियों के गुण उनमें बिम्बित,
मानवी चेतना खोल युगों के गुण कवलित
अब नव संस्कृति के वसनों से होगी भूषित।
विश्वास, धर्म संस्कृतियाँ, नीति रीतियाँ गत
जन संघर्षण में होंगी ध्वंस लीन, परिणत,
बंधन विमुक्त हो मानव आत्मा अप्रतिहत
नव मानवता का सद्य करेगी युग स्वागत।

राम राम
हे ग्राम देवता, रूढ़िधाम!
तुम पुरुष पुरातन, देव सनातन, पूर्ण काम,
जड़वत, परिवर्तन शून्य, कल्प शत एक याम,
शिक्षक हो तुम, मैं शिष्य, तुम्हें शत शत प्रणाम।

(जनवरी '४०)

सन्ध्या के बाद

सिमटा पंख साँझ की लाली
जा बैठी अब तरु शिखरों पर
ताम्रपर्ण पीपल से, शतमुख
झरते चंचल स्वर्णिम निर्झर।
ज्योति स्तम्भ सा धँस सरिता में
सूर्य क्षितिज पर होता ओझल
वृहद जिह्म विश्लथ केंचुल सा
लगता चितकबरा गंगाजल।

उच्छिष्ट युगों का आज सनातनवत् प्रचलित,
बन गयीं चिरंतन रीति नीतियाँ, स्थितियाँ मृत।
गत संस्कृतियाँ थीं विकसित वर्ग व्यक्ति आश्रित,
तब वर्ग व्यक्ति गुण, जन समूह गुण अब विकसित।
अति मानवीय था निश्चित विकसित व्यक्तिवाद
मनुजों में जिसने भरा देव पशु का प्रमाद,
जन जीवन बना न विशद, रहा वह निराह्लाद,
विकसित नर नर अपवाद नहीं, जन गुण विवाद।
तब था न वाष्प विद्युत का जग में हुआ उदय,
ये मनुज यंत्र, युग पुरुष सहस्र हस्त बलमय,
अब यंत्र मनुज के कर पद बल, सेवक समुदय,
सामंत मान अब व्यर्थ, समृद्ध विश्व अतिशय।
अब मनुष्यता को नैतिकता पर पानी जय,
गत वर्ग गुणों को जन संस्कृति में होना लय,
देशों राष्ट्रों को मानव जग बनना निश्चय,
अंतर जग को फिर लेना बहिर्जगत आश्रय।

राम राम,
हे ग्राम्य देवता यथा नाम।
शिक्षक हो तुम, मैं शिष्य, तुम्हें सविनय प्रणाम।
विजया, महुआ, ताड़ी, गाँजा पी सुबह शाम
तुम समाधिस्थ नित रहो, तुम्हें जग से न काम।
पण्डित, पण्डे, ओझा, मुखिया औ' साधु सन्त
दिखलाते रहते तुम्हें स्वर्ग अपवर्ग पंथ,
जो था, जो है, जो होगा,—सब लिख गये ग्रंथ,
विज्ञान ज्ञान से बड़े तुम्हारे मंत्र तंत्र।
युग युग से जनगण, देव। तुम्हारे पराधीन,
दारिद्र्य दुःख के कर्दम में कृमि सदृश लीन।
बहु रोग शोक पीड़ित, विद्या बल बुद्धि हीन,
तुम रामराज्य के स्वप्न देखते उदासीन।
जन अमानुषी आदर्शों के तम से कवलित,
माया उनको जग, मिथ्या जीवन देह अनित,
वे चिर निवृत्ति के भोगी,—त्याग विराग विहित,
निज आचरणों में नरक जीवियों तुल्य पतित।
वे देव भाव के प्रेमी,—पशुओं से कुत्सित,
नैतिकता के पोषक—मनुष्यता से वंचित
बहु नारी सेवी,—पतिव्रता ध्येयी निज हित,
वैधव्य विधायक—बहु विवाह वादी निश्चित।
सामाजिक जीवन के अयोग्य, ममता प्रधान,
संघर्षण विमुख, अटल उनको विधि का विधान,
जग से अलिप्त वे, पुनर्जन्म का उन्हें ध्यान,
मानव स्वभाव के द्रोही, श्वानों के समान।

राम राम,
हे ग्राम देव, लो हृदय थाम,
अब जन स्वातन्त्र्य युद्ध की जग में धूम धाम।
उद्यत जनगण युग क्रान्ति के लिए बाँध लाम,
तुम रूढ़ि रीति की खा अफीम लो चिर विराम।
यह जन स्वातन्त्र्य नहीं, जनैक्य का वाहक रण,
यह अर्थ राजनीतिक न, सांस्कृतिक संघर्षण।
युग युग की खण्ड मनुजता, दिशि दिशि के जनगण
मानवता में मिल रहे,—ऐतिहासिक यह क्षण!
नव मानवता में जाति वर्ग होंगे सब क्षय,
राष्ट्रों के युग वृत्तांश परिधि में जग की लय।
जन आज अहिंसक, होंगे कल स्नेही सहृदय,
हिन्दू, ईसाई, मुसलमान,—मानव निश्चय।
मानवता अब तक देश काल के थी आश्रित,
संस्कृतियाँ सबल परिस्थितियों से थीं पीड़ित,
गत देश काल मानव के बल से आज विजित,
सब खर्व विगत नैतिकता मनुष्यता विकसित।
छायाएँ हैं संस्कृतियाँ मानव की निश्चित
वह केन्द्र, परिस्थितियाँ के गुण उसमें बिम्बित,
मानवी चेतना खोल युगों के गुण कवलित
अब नव संस्कृति के वसनों से होगी भूषित।
विश्वास, धर्म, संस्कृतियाँ, नीति रीतियाँ गत
जन संघर्षण में होंगी ध्वंस, लीन, परिणत,
बंधन विमुक्त हो मानव आत्मा अप्रतिहत
नव मानवता का सद्य करेगी युग स्वागत।

राम राम
हे ग्राम देवता, रूढ़िधाम।
तुम पुरुष पुरातन, देव सनातन पूर्ण काम,
जड़वत्, परिवर्तन शून्य, कल्प शत एक याम,
शिक्षक हो तुम, मैं शिष्य, तुम्हें शत शत प्रणाम।
(जनवरी '४०)

सन्ध्या के बाद

सिमटा पंख साँझ की लाली
जा बैठी अब तरु शिखरों पर
ताम्रपर्ण पीपल से, शतमुख
झरते चंचल स्वर्णिम निर्झर।
ज्योति स्तम्भ सा धँस सरिता में
सूर्य क्षितिज पर होता ओझल
बृहद जिह्म विश्लथ केंचुल-सा
लगता चितकबरा गंगाजल।

धूपछाँह के रँग की रेती
अनिल ऊर्मियों से सर्पांकित,
नील लहरियों में लोडित
पीला जल रजत जलद से बिम्बित !
सिकता, सलिल, समीर सदा से
स्नेह पाश में बँधे समुज्ज्वल,
अनिल पिघलकर सलिल, सलिल
ज्यों गति द्रव खो बन गया लवापन !
शंख घण्ट बजते मंदिर में
लहरों में होता लय कम्पन,
दीप शिखा सा ज्वलित कलश
नभ में उठकर करता नीराजन !
तट पर बगुलों-सी वृद्धाएँ
विधवाएँ जप ध्यान में मगन,
मंथर धारा में बहता
जिनका अदृश्य गति अंतर रोदन !
दूर तमस रेखाओं-सी,
उड़ते पंखों की गति सी चित्रित
सोन खगों की पाँति
आर्द्र ध्वनि से नीरव नभ करती मुखरित !
स्वर्ण चूर्ण-सी उड़ती गोरज
किरणों की बादल-सी जलकर,
सनन् तीर सा जाता नभ में
ज्योतित पंखों कण्ठों का स्वर !
लौटे खग, गायें घर लौटीं,
लौटे कृषक श्रांत श्लथ डग धर
छिपे गृहों में म्लान चराचर
छाया भी हो गयी अगोचर,
लौट पैंठ से व्यापारी भी
जाते घर, उस पार नाव पर,
ऊँटों, घोड़ों के सँग बैठे
खाली बोरों पर, हुक्का भर !
जाड़ों की सूनी द्वाभा में
झूल रही निशि छाया गहरी,
डूब रहे निष्प्रभ विषाद में
खेत बाग, गृह तरु, तट, लहरी !
बिरहा गाते गाड़ी वाले,
भूँक-भूँक कर लड़ते कूकर,
हुआ हुआ करते सियार
देते विषण्ण निशि बेला को स्वर !
माली की मँडई से उठ,
नभ के नीचे नभ सी धूमाली

मंद पवन में तिरती
नीली रेशम की सी हलकी जाली।
बत्ती जला दुकानों में
बैठे सब कस्बे में व्यापारी,
मौन मन्द आभा में
हिम की ऊँघ रही लम्बी अँधियारी।
धुआँ अधिक देती है
टिन की ढबरी, कम करती उजियाला,
मन से कढ अवसाद श्रांति
आँखों के आगे बुनती जाला।
छोटी-सी बस्ती के भीतर
लेन देन के थोथे सपने
दीपक के मण्डल में मिलकर
मँडराते घिर सुख दुख अपने।
काँप काँप उठते लौ के सँग
कातर उर क्रन्दन, मूक निराशा,
क्षीण ज्योति ने चुपके ज्यों
गोपन मन को दे दी हो भाषा।
लीन हो गयी क्षण में बस्ती,
मिट्टी खपरे के घर आँगन,
भूल गये लाला अपनी सुधि,
भूल गया सब ब्याज, मूलधन।
सकुची सी परचून किराने की ढेरी
लग रहीं तुच्छतर,
इस नीरव प्रदोष में आकुल
उमड रहा अंतर जग बाहर।
अनुभव करता लाला का मन,
छोटी हस्ती का सस्तापन
जाग उठा उसमें मानव,
औ' असफल जीवन का उत्पीडन।
दैन्य दुःख अपमान ग्लानि
चिर क्षुधित पिपासा, मृत अभिलाषा,
बिना आय की क्लान्ति बन रही
उसके जीवन की परिभाषा।
जड अनाज के ढेर सदृश ही
वह दिन-भर बैठा गद्दी पर
बात बात पर झूठ बोलता
कौडी की स्पर्धा में मर मर।
फिर भी क्या कुटुम्ब पलता है?
रहते स्वच्छ सुघर सब परिजन?
बना पा रहा वह पक्का घर?
मन में सुख है? जुटता है धन?

खिसक गयी कंधों से कथड़ी
ठिठुर रहा अब सर्दी से तन,
सोच रहा बस्ती का बनिया
घोर विवशता का निज कारण!
शहरी बनियों सा वह भी उठ
क्यों बन जाता नहीं महाजन?
रोक दिये हैं किसने उसकी
जीवन उन्नति के सब साधन?
यह क्या सम्भव नहीं
व्यवस्था में जग की कुछ हो परिवर्तन?
कर्म और गुण के समान ही
सकल आय व्यय का हो वितरण?
घुसे घरौंदों में मिट्टी के
अपनी अपनी सोच रहे जन,
क्या ऐसा कुछ नहीं,
फूँक दे जो सबमें सामूहिक जीवन?
मिलकर जन निर्माण करें जग,
मिलकर भोग करें जीवन का,
जन विमुक्त हो जन शोषण से,
हो समाज अधिकारी धन का?
दरिद्रता पापों की जननी,
मिटें जनों के पाप, ताप, भय,
सुन्दर हो अधिवास, वसन, तन
पशु पर फिर मानव की हो जय?
व्यक्ति नहीं, जग की परिपाटी
दोषी जन के दुःख क्लेश की,
जन का श्रम जन में बँट जाये,
प्रजा सुखी हो देश देश की!
टूट गया वह स्वप्न वणिक का,
आयी जब बुढ़िया बेचारी,
आध पाव आटा लेने,—
लो, लाला ने फिर डण्डी मारी!
चीख उठा घुघ्घू डालों में
लोगों ने पट दिये द्वार पर,
निगल रहा बस्ती को धीरे,
गाढ़ अलस निद्रा का अजगर!
(दिसम्बर '३९)

खिड़की से

पूस निशा का प्रथम प्रहर खिड़की से बाहर
दूर क्षितिज तक स्तब्ध आम्र वन सोया क्षणभर

दिन का भ्रम होता पूना न तण तरुओ पर
चाँदी मढ दी है, भू को स्वप्नो स जडकर !
चारु चद्रिकातप से पुलकित निखिल धरातल
चमक रहा है, ज्यो जल मे विम्बित जग उज्ज्वल !
स्पष्ट दीखते,—खिडकी की जाली मे विजडित
कटहल, लीची, ग्राम,—धूक गेंदुर से कम्पित,
फाटक ग्रौ' हाते के खम्भे, बगिया के पथ,
ग्राधी जगत कुए की, कुरिया की छाजन श्लथ,
ग्रस्पताल का भाग, मेहराबें, दरवाजे,
स्फटिक सदश जो चमक रहे चूने से ताजे !
ग्रौ' टेढी मेढी दिगत रेखा के ऊपर
पास पास दो पेड ताड के खडे मनोहर !
ग्राधी खिडकी पर ग्रगणित ताराग्रो से स्मित
हरित धरा के ऊपर नीलाम्बर छायाकित !
कचपचिया (कृत्तिका) सामने शोभित सुन्दर
मोती के गुच्छे सी भरणी ज्यो त्रिकोण वर !
पास रोहिणी, प्रिय मिलनातुर बाँह खोलकर,
सेंदुर की बेंदी दे, जुडवो का गोदी भर !
लुब्ध दृष्टि लुब्धक, समीप ही, छोड रहा शर
ग्रादि काल से मृग पर मृगशिर सहज मनोहर !
उधर जडे पुखराज लाल स गुरु ग्रौ मगल
साथ साथ, जिनमे ग्रवश्य गुरु सबसे उज्ज्वल !
हसता है प्रत्यक्ष कठिन वश्चिक का मिलना,
वह शायद ग्रार्द्रा, कहता हिमजल सा हिलना !
ज्योति फेन सी स्वगगा नभ बीच तरगित,
परियो की माया सरसी सी छायालोकित,
ज्वलित पुज ताराग्रो के बाष्पो से सस्मित
नीलम के नभ मे रत्नप्रभ पुल सी निर्मित !
खोज रहा हू कहाँ उदित सप्तर्षि गगन मे
ग्ररुधती को लिये साथ विस्मित-से मन मे !
प्रश्न चिह्न से जो ग्रनादि से नभ मे ग्रकित,
उत्तर मे स्थिर ध्रुव की ग्रोर किये चिर इगित—
पूछ रहे हो ससति का रहस्य ज्यो ग्रविदित,
'क्या है वह ध्रुव सत्य ? गहन नभ जिससे ज्योतित !'
ज्योत्स्ना मे विकसित सहस्रदल भू पर ग्रम्बर
शाभित ज्यो लावण्य स्वप्न ग्रपलक नयनो पर !
यह प्रतिदिन का दश्य नही छल से वातायन
ग्राज खुल गया ग्रप्सरियो के जग मे मोहन !
चिर परिचित माया बल से बन गये ग्रपरिचित
निखिल वास्तविक जगत कल्पना से ज्यो चित्रित !
ग्राज ग्रसुन्दरता, कुरूपता भू से ग्रोझल—,
सब कुछ सुन्दर ही सुन्दर, उज्ज्वल ही उज्ज्वल !

एक शक्ति से, कहते, जग प्रपच यह विकसित,
एक ज्योति कर से समस्त जड चेतन निर्मित,
सच है यह आलोक पाश मे बँधे चराचर
आज आदि कारण की ओर खीचते अतर।
क्षुद्र आत्म पर मूल, भूत सब हुए समन्वित,
तृण, तरु से तारालि—सत्य है एक अखण्डित।
मानव ही क्यो इस असीम समता से वचित?
ज्योति भीत, युग युग से तमस विमूढ, विभाजित।

(दिसम्बर '३९)

रेखाचित्र

चाँदी की चौडी रेती, फिर स्वर्णिम गगा धारा,
जिसके निश्चल उर पर विजडित रत्न छाय नभ सारा।
फिर बालू का नासा लम्बा ग्राह तुण्ड-सा फला,
छितरी जल रेखा—कछार फिर गया दूर तक मैला।
जिस पर मछुओ की मँडई, औ' तरबूजो के ऊपर,
बीच बीच म, सरपत के मूठे खग-से खोले पर।
पीछे, चित्रित विटप पाँति लहरायी साध्य क्षितिज पर
जिससे सटकर नील धूम्र रेखा ज्यो खिची समातर।
बह पुच्छ से जलद पख अम्बर मे बिखरे सुदर
रग रग की हलकी गहरी छायाएँ छिटकाकर।
सबसे ऊपर निर्जन नभ मे अपलक सध्या तारा,
नीरव औ' निसग, खोजता-सा कुछ, चिर पथहारा।
साँझ,—नदी का सूना तट, मिलता है नही किनारा,
खोज रहा एकाकी जीवन साथी, स्नेह सहारा।

(जनवरी '४०)

दिवा स्वप्न

दिन की इस विस्तृत आभा मे, खुली नाव पर
आर पार के दृश्य लग रहे साधारणतर।
केवल नील फलक सा नभ, सैकत रजतोज्ज्वल,
और तरल बिल्लौर वेशमतल सा गगा जल—
चपल पवन के पदाचार से अहरह स्पदन—
शात हास्य से अतर को करते आह्लादित।
मुक्त स्निग्ध उल्लास उमड जल हिलकोरो पर
नृत्य कर रहा, टकरा पुलकित तट छोरो पर।
यह सैकत तट पिघल पिघल यदि बन जाता जल
बह सकती यदि धरा दिगत
यदि न डुबाता जल, रह तर
तो मैं नाव छोड, गगा पर

आज लौटता, ज्योति जडित लहरो सँग जी भर।
किरणो स खेलता मिचौनी में लुक छिपकर,
लहरो के अचल मे फेन पिरोता सुदर,
हँसता कल-कल मत्त नाचता, भूल पग भर।
कसा सुदर होता बदन न होता गीला
लिपटा रहता सलिल रेशमी पट सा ढीला।
यह जल गीला नही, गलित नभ केवल चचल
गीला लगता हमे न भीगा हुआ स्वय जल।
हाँ चित्रित से लगते तण - तरु भू पर बिम्बित
मेरे चल पद चूम धरणि हो उठती कम्पित।
एक सूय होता नभ मे, सौ भू पर विजडित
सिहर सिहर क्षिति मारुत को करती आलिंगित।
निशि मे ताराओ से होती धरा जब खचित
स्वप्न देखता स्वग लोक म मैं ज्योत्स्ना स्मित।
गुन के बल चल रही प्रतनु नौका चढाव पर
बदल रहे तट दृश्य चित्रपट पर ज्यो सुदर।
वह जल से सटकर उडते हैं चटुल पनेवा
इन पखो की परियो को चाहिए न खेवा।
दमक रही उजियारी छाती करछौंह पर
श्याम घनो से झलक रही बिजली क्षण क्षण पर।
उधर कगारे पर अटका है पीपल तरुवर
लम्बी, टेढी जडें जटा सी छितरी बाहर।
लोट रहा सामने सूस रसडुब्बी सा तिर,
पूछ मार जल म चमकीली करवट खा फिर।
सोन कोक के जोडे बालू की चादो पर
चाचो से सहला पर क्रीडा करते सुखकर।
बैठ न पाती, चक्कर देती देव दिलाई
तिरती लहरो पर सफेद काली परछाईं।
लो मछरगा उतर तीर-सा नीचे क्षण म
पकड तडपती मछली को उड गया गगन मे।
नरकुल की चोचें ले चाहा फिरते फर फर,
मँडराते सुरखाब व्योम मे आत नाद कर,—
काले, पीले खैरे, बहुरगे चित्रित पर
चमक रहे बारी-बारी स्मित आभा म भर।
वह, टीले के ऊपर तूबी सा बबूल पर,
सरपत का घासला बया का लटका सुदर।
दूर उधर, जगल मे भीटा एक मनोहर
दिखलायी देता है वन देवो का सा घर,
जहाँ खेलते छायातप मारुत तरु ममर
स्वप्न देखती विजन शाति म मौन दोपहर।
वन की परियाँ धूपछाह की साडी पहने
जहाँ विचरती चुनने ऋतु कुसुमो के गहने।

वहाँ मत्त करती मन नव मुकुलों की सौरभ,
गुंजित रहता सतत द्रुमों का हरित श्वसित नभ !
वहाँ गिलहरी दौड़ा करती तरु डालों पर
चंचल लहरी सी, मृदु रोमिल पूँछ उठाकर
और वन्य विहँगों-कीटों के सौ सौ प्रिय स्वर
गीत वाद्य से बहलाते शोकाकुल अंतर !
वहीं कहीं जी करता, मैं जाकर छिप जाऊँ
मानव जग के क्रन्दन से छुटकारा पाऊँ
प्रकृति नीड में व्योम खगों के गाने गाऊँ
अपने चिर स्नेहातुर उर की व्यथा भुलाऊँ !
(जनवरी '४०)

सौन्दर्य कला

नव वसंत की रूप राशि का ऋतु उत्सव यह उपवन,
सोच रहा हूँ, जन जग से क्या सचमुच लगता शोभन !
या यह केवल प्रतिक्रिया, जो वर्गों के संस्कृत जन
मन में जागृत करते, कुसुमित अग, कण्टकावृत मन !
रंग रंग के खिले फ्लॉक्स वरवीना, छपे डियांथस,
नत दृग ऐंटिह्निनम तितली सी पंजी पॉपी सालस,
हँसमुख कैंडीटफ्ट रेशमी चटकीले नैस्टरशम,
खिली स्वीट पी,—एवडस, फ्लिबास्केट, औ' ब्लू बेटम !
दुहरे कार्नेशंस, स्वीट सुलतान सहज रोमांचित,
ऊँचे हॉली हॉक, लाकस्पर पुष्प स्तम्भ से शोभित,
फूले बहु मखमली, रेशमी, मृदुल गुलाबों के दल,
धवल मिसेज एडू कार्नेगी, ब्रिटिश क्वीन हिम उज्ज्वल !
जोसेफ हिल, सनबर्स्ट पीत, स्वर्णिम लेडी हेलिंडन,
ग्रैंड मुगल, रिचमण्ड, विकच ब्लैक प्रिंस नील लोहित तन,
फेयरी क्वीन, मारगेरेट मृदु वीलियम शीन चिर पाटल
बटन रोज बहु लाल, ताम्र माखनी रंग के कोमल !
विविध आयताकार, वृत्त षटकोण क्यारियाँ सुयमित,
वर्तुल, अण्डाकृति नव रुचि से कटी छटी, दूर्वावृत,
विभ्रित से उपवन में शत रंगों में आतप छाया,
सुरभि श्वसित मारुत, पुलकित कुसुमों की कम्पित काया !
नव वसंत की श्री शोभा का दर्पण सा यह उपवन,
सोच रहा हूँ, क्या विवर्ण जन जग से लगता शोभन !
इस मटमैली पृथ्वी ने सतरंगी रवि किरणों से
खींच लिये किस माया बल से सब रँग आभरणों-से ?
युग युग से चिर सूक्ष्म बीज कोषों से विकसित होकर
राशि राशि ये रूप रंग भू पर हो रहे निछावर !
जीवन ये भर सके नहीं मृण्मय तन में धरती के,
सुंदरता के सब प्रयोग लग रहे प्रकृति के फीके !

जग विकास क्रम मे सुदरता कब की हुई पराजित,
तितली पक्षी, पुष्प वग इसके प्रमाण हैं जीवित !
हृदय नही इस सुदरता के, भावोमेष न मन मे
अगो का उल्लास न चिर रहता, कुम्हलाना क्षण मे !
हुआ सृष्टि मे बुद्ध हृदय जीवो का तभी पदार्पण,
जड सुदरता को निसर्ग कर सका न आत्म समर्पण !
मानव उर मे भर ममत्व जीवो के जीवन के प्रति
चिर विकास प्रिय प्रकृति देखती तब से मानव परिणति !
आज मानवी सस्कृतिया हैं वग चयन से पीडित,
पुष्प पक्षियो - सी वे अपने ही विकास मे सीमित !
इस विशाल जन जीवन के जग से हो जाति विभाजित
व्यापक मनुष्यत्व से वे सब आज हो रही वचित !
हृदय हीन, अस्तित्व मुग्ध ये वर्गों के जन निश्चित,
वेश वसन भूषित बहु पुष्प वनस्पतियो-से शोभित !
हुआ कभी सौदय कला युग अत प्रकृति जीवन मे,
मानव जग से जाने को वह अब युग परिवतन मे !
हृदय, प्रेम के पूण हृदय से निखिल प्रकृति जग शासित,
जीव प्रेम के सम्मुख रे जीवन सौदय पराजित !
नव वसत की वग कला का दशन गृह यह उपवन,
सोच रहा हूँ विश्री जन जग से लगता क्या शोभन !

(फरवरी '४०)

स्वीट पी के प्रति

कुल वधुओ सी अयि सलज्ज, सुकुमार !
शयन कक्ष, दशन गृह की शृगार !

उपवन के यत्नो स पालित,
पुष्प पात्र मे शोभित रक्षित,
कुम्हलाती जाती हो तुम निज शोभा ही के भार !
कुल वधुओ सी अयि सलज्ज सुकुमार !

सुभग रेशमी वसन तुम्हारे
सुरँग, सुरुचिमय,—
अपलक रहते लोचन !
फूट फूट अगो स सारे
सौरभ अतिशय
पुलकित कर देती मन !
उन्नत वग वन पर निभर,
तुम सस्कृत हो सहज सुघर,
औ निश्चय वानस्पत्य चयन म
दोनो निर्विनेप हो सुदर !
निबल शिराओ मे, मदु तन मे

बहती-युग युग से जीवन के सूक्ष्म रुधिर की धार !
कुल वधुओं सी अयि सलज्ज, सुकुमार !

मृदुल मलय के स्नेह स्पर्श से
होता तन मे कम्पन,
जीवन के ऐश्वर्य हर्ष से
करता उर नित नर्तन—
केवल हास विलास मयी तुम
शोभा ही मे शोभन,
प्रणय कुंज मे साँझ प्रात
करती हो गोपन कूजन !
जग मे चिर अज्ञात,
तुम्हे बाँधे निकुंज गृह द्वार !
कुल वधुओं सी अयि सलज्ज सुकुमार !

हाय, न क्या आदोलित होता
हृदय तुम्हारा
सुन जगती का क्रदन ?
क्षुधित व्यथित मानव रोता
जीवन पथ हारा
सह दुःसह उत्पीडन !
छोड स्वर्ण पिंजर
न निकल आओगी बाहर
खोल वक्ष अवगुण्ठन !
युग - युग से दुख कातर
द्वार खडे नारी नर
देते तुम्हें निमत्रण !
जग प्रागण मे क्या न करोगी तुम जन हित अभिसार ?
कुल वधुओं सी अयि सलज्ज, सुकुमार !

क्या न बिछाओगी जन पथ पर
स्नेह सुरभि मय
पलक पँखडियो के दल !
स्निग्ध दृष्टि से जन मन हर
आँचल से ढँक दोगी न शूल चय ?
जर्जर मानव पदतल !
क्या न करोगी जन स्वागत
सस्मित मुख से ?
होने को आज युगान्तर ?
शोपित दलित हो रहे जाग्रत,
उनके सुख से
समुच्छवसित क्या नही तुम्हारा अन्तर ?
क्या न, विजय से फूल बनोगी तुम जन उर का हार ?
कुल वधुओं सी अयि सलज्ज सुकुमार !

हाय, नहीं करुणा ममता है मन में वही तुम्हारे !
तुम्हें बुलाते
रोते गाते
युग युग से जन हारे !
ऊँची डाली से तुम क्षण भर
नहीं उतर सकती जन भू पर !
फूली रहती
भूली रहती
शोभा ही के मारे !
केवल हास हुलास मयी तुम !
केवल मनोविलास मयी तुम !
विभव भोग उल्लास मयी तुम !
तुमको अपनाने के सारे
व्यर्थ प्रयत्न हमारे !
बधिरा तुम निष्ठुरा,—जनों की विफल सकल मनुहार !
कुल वधुओं सी अयि सलज्ज सुकुमार !
(फरवरी '४०)

कला के प्रति

तुम भाव प्रवण हो !
जीवन प्रिय हो, सहनशील, सहृदय हो, कोमल मन हो !
ग्राम तुम्हारा वास रूढ़ियों का गढ़ है चिर जर्जर,
उच्च वंश मर्यादा केवल स्वर्ण-रत्नप्रभ पिंजर !
जीर्ण परिस्थितियाँ ये तुममें आज हो रहीं बिम्बित,
सीमित होती जाती हो तुम, अपने ही में अवसित !
तुम्हें तुम्हारा मधुर शील कर रहा अजान पराजित,
वृद्ध हो रही हो तुम प्रतिदिन, नहीं हो रही विकसित !

नारी की सुंदरता पर मैं होता नहीं विमोहित,
शोभा का ऐश्वर्य मुझे करता अवश्य आनन्दित !
विशद स्त्रीत्व का ही मैं मन में करता हूँ नित पूजन,
जब आभा देही नारी आह्लाद प्रेम कर वर्षण
मधुर मानवी की महिमा से भू को करती पावन !

तुममें सब गुण हैं तोड़ो अपने भय कल्पित बंधन
जड़ समाज के कर्दम से उठकर सरोज सी ऊपर
अपने अंतर के विकास से जीवन के दल दो भर !
सत्य नहीं बाहर नारी का सत्य तुम्हारे भीतर,
भीतर ही से करो नियंत्रित जीवन को, छोड़ो डर !

(दिसम्बर '३९

स्त्री

यदि स्वर्ग कहीं है पृथ्वी पर, तो वह नारी उर के भीतर,
दल पर दल खोल हृदय के अस्तर
जब बिठलाती प्रसन्न होकर
वह अमर प्रणय के शतदल पर!
मादकता जग में कहीं अगर, वह नारी अधरों में सुखकर,
क्षण में प्राणों की पीड़ा हर,
नव जीवन का दे सकती वर
वह अधरों पर धर मदिराधर!
यदि कहीं नरक है इस भू पर, तो वह भी नारी के अन्दर,
वासनावर्त में डाल प्रखर
वह अन्ध गर्त में चिर दुस्तर
नर को ढकेल सकती सत्वर!

(जनवरी '४०)

आधुनिका

पशुओं से मृदु चर्म, पक्षियों से ले प्रिय रोमिल पर,
ऋतु कुसुमों से सुरंग सुरुचिमय चित्र वस्त्र ले सुन्दर,
सुभग रूज, लिपस्टिक, ब्रोस्टिक, पौडर से कर मुख रंजित,
अंगराग, क्यूटेक्स अलक्तक से बन नख-शिख शोभित,
'सागर तल से ले मुक्ताफल, खानों से मणि उज्ज्वल'—
रजत स्वर्ण में भ्रमित तुम फिरती अप्सरि-सी चंचल!
शिक्षित तुम संस्कृत युग के सत्याभासों में पोषित,
समकक्षिणी नरों की तुम, निज द्वन्द्व मूल्य पर गर्वित,
नारी की सौन्दर्य मधुरिमा औ' महिमा से मण्डित,
तुम नारी उर की विभूति से, हृदय सत्य से वंचित!
प्रेम, दया, सहृदयता, शील, क्षमा, पर दुख कातरता,
तुममें तप, संयम, सहिष्णुता नहीं त्याग तत्परता!
लहरी-सी तुम चपल लालसा श्वास वायु से नर्तित,
तितली सी तुम फूल फूल पर मँडराती मधुलव हित!
मार्जारी तुम, नहीं प्रेम को करती आत्म समर्पण,
तुम्हें सुहाता रंग प्रणय, धन पद मद आत्म प्रदर्शन!!!
तुम सब कुछ हो, फूल, लहर, तितली, विहगी, मार्जारी,
आधुनिके, तुम नहीं अगर कुछ नहीं सिर्फ तुम नारी!

(फरवरी '४०)

मजदूरनी के प्रति

नारी की संज्ञा भुला, नरों के संग बैठ,
चिर जन्म सुहृद सी जन हृदयों में सहज पैठ,

जो बँटा रहीं तुम जग जीवन का काम काज
तुम प्रिय हो मुझे न छूती तुमको काम लाज।

सर से आँचल खिसका है,—धूल भरा जूड़ा,—
अधखुला वक्ष,—ढोती तुम सिर पर धर कूड़ा,
हँसती बतलाती सहोदरा सी जन जन मे,
यौवन का स्वास्थ्य झलकता आतप-सा तन से।

कुल वधू सुलभ सरक्षण से तुम हो वचित,
निज बधन खो, तुमने स्वतत्रता की अर्जित।
स्त्री नही, आज मानवी बन गयी तुम निश्चित,
जिसके प्रिय अगो को छू अनिलातप पुलकित।

निज द्वन्द्व प्रतिष्ठा भूल जनो के बैठ साथ,
जो बँटा रही तुम काम काज मे मधुर हाथ,
तुमने निज तन की तुच्छ कचुकी को उतार
जग के हित खोल दिये नारी के हृदय द्वार।

(फरवरी '४०)

नारी

हाय, मानवी रही न नारी लज्जा से अवगुण्ठित,
वह नर की लालस प्रतिमा, शोभा सज्जा से निर्मित।
युग-युग की वदिनी, देह की कारा मे निज सीमित,
वह अदृश्य अस्पृश्य विश्व से, गृह पशु सी ही जीवित।

सदाचार की सीमा उसके तन से है निर्धारित,
पूत योनि वह मूल्य चर्म पर केवल उसका अकित,
अग अग उसका नर के वासना चिह्न से मुद्रित,
वह नर की छाया, इगित सचालित, चिर पद लुण्ठित।

वह समाज की नही इकाई,—शून्य समान अनिश्चित,
उसका जीवन मान, मान पर नर के है अवलम्बित।
मुक्त हृदय वह स्नेह प्रणय कर सकती नही प्रदर्शित,
दृष्टि, स्पर्श सज्ञा से वह हो जाती सहज कलकित।

योनि नही है रे नारी, वह भी मानवी प्रतिष्ठित,
उसे पूर्ण स्वाधीन करो, वह रहे न नर पर अवसित।
द्वन्द्व क्षुधित मानव समाज पशु जग से भी है गर्हित,
नर नारी के सहज स्नेह से सूक्ष्म वृत्ति हो विकसित।

आज मनुज जग से मिट जाये कुत्सित, लिंग विभाजित
नारी नर की निखिल क्षुद्रता, आदिम मानो पर स्थित।
सामूहिक-जन भाव स्वास्थ्य से जीवन हो मर्यादित
नर नारी की हृदय मुक्ति से मानवता हो सस्कृत।

(दिसम्बर '३६)

द्वन्द्व प्रणय

धिक रे मनुष्य, तुम स्वच्छ, स्वस्थ, निश्चल चुम्बन
अंकित कर सकते नहीं प्रिया के अधरों पर ?
मन में लज्जित, जन से शंकित, चुपके गोपन
तुम प्रेम प्रकट करते हो नारी से, कायर !

क्या गुह्य, क्षुद्र ही बना रहेगा, बुद्धिमान !
नर नारी का स्वाभाविक, स्वर्गिक आकर्षण ?
क्या मिल न सकेंगे प्राणों से प्रेमार्त प्राण
ज्यों मिलते सुरभि समीर, कुसुम अलि, लहर किरण ?

क्या क्षुधा तृषा औ' स्वप्न जागरण सा सुन्दर
है नहीं काम भी नैसर्गिक जीवन द्योतक ?
बन जाता अमृत न देह-गरल छू प्रेम अधर ?
उज्ज्वल करता न प्रणय सुवर्ण, तन का पावक ?

पशु पक्षी से फिर सीखो प्रणय कला, मानव !
जो आदि जीव जीवन संस्कारों से प्रेरित,
खग युग्म गान गा करते मधुर प्रणय अनुभव,
मृग मिथुन शृङ्ग से अंगों को कर मृदु मर्दित !

मत कहो मांस की दुर्बलता, हे जीव प्रवर !
है पुण्य तीर्थ नर नारी जन का हृदय मिलन,
आनन्दित होओ, गर्वित, यह जीवन का वर,
गौरव दो द्वन्द्व प्रणय को, पृथ्वी हो पावन !

(दिसम्बर '३९)

१९४०

समर भूमि पर मानव शोणित से रंजित निर्भीक चरण धर
अभिनन्दित हो दिग घोषित तोपों के गर्जन से प्रलयंकर,
शुभागमन नव वर्ष कर रहा, हालाडोला पर चढ दुर्धर,
वृहद विमानों के पंखों से बरसाकर विष वह्नि निरन्तर !

इधर अड़ा साम्राज्यवाद, शत शत विनाश के ले आयोजन,
उधर प्रतिक्रिया रुद्ध शक्तियाँ क्रुद्ध दे रहीं युद्ध निमन्त्रण !
सत्य न्याय के बाने पहने सत्व लुब्ध लड़ रहे राष्ट्रगण,
सिंधु तरंगों पर उठ गिर नय विनय स्पर्धा करती नर्तन !

घूं घूं करती वाष्प शक्ति, विद्युत ध्वनि करती दीर्ण दिगंतर
ध्वंस भ्रंश करते विस्फोटक धनिक सभ्यता के गढ जर्जर !
तुमुल वर्ग संघर्ष में निहित जनगण का भविष्य लोकोत्तर,
इन्द्रचाप पुल सा नव वत्सर शोभित प्रलय भ्रम मेघों पर !

आओ हे दुर्धर्ष वर्ष ! लाओ विनाश के साथ नव सृजन,
विंश शताब्दी का महान विज्ञान ज्ञान ले, उत्तर यौवन !

(जनवरी '४०)

सूत्रधार

तुम धन्य, वस्त्र व्यवसाय कला के सूत्रधार,
बर्बर जन के तन से हर वल्कल चर्म भार,
तुमने आदिम मानव की हर नव द्वन्द्व लाज,
बन शीत ताप हित कवच, बचाया जन समाज!
तकली, चरखे, करघे से अब आधुनिक यन्त्र
तुम बने यन्त्र बल धर ही मानव लोक तन्त्र
स्थापित करने को अब मानवता का विकास
यन्त्रों के सग हुआ, सिखलाता न इतिहास!
जड नही यन्त्र वे भाव रूप सस्कृति द्योतक
वे विश्व शिराएँ, निखिल सभ्यता के पोषक!
रेडियो, तार औ' फोन,—वाष्प, जल वायु यान,
मिट गया दिशावधि का जिनसे व्यवधान मान,—
धावित जिनमे दिशि दिशि का मन,—वार्ता, विचार,
सस्कृति, सगीत गगन मे झकृत निराकार!
जीवन सौदर्य प्रतीक यन्त्र जन के शिक्षक,
युग क्रांति प्रवर्त्तक औ भावी के पथ दर्शक!
वे कृत्रिम, निर्मित नही, जगत क्रम मे विकसित,
मानव भी यन्त्र, विविध युग स्थितियो मे वर्धित!
दार्शनिक सत्य यह नही—यन्त्र जड, मानवकृत,
वे हैं अमूर्त जीवन विकास की कृति निश्चित!
(फरवरी '४०)

सस्कृति का प्रश्न

राजनीति का प्रश्न नही रे आज जगत के सम्मुख,
अर्थ साम्य भी मिटा न सकता मानव जीवन के दुख!
व्यर्थ सकल इतिहासो, विज्ञानो का सागर मन्थन
वहाँ नही युग लक्ष्मी, जीवन सुधा, इन्दु जन मोहन!
आज बृहत सास्कृतिक समस्या जग के निकट उपस्थित,
खण्ड मनुजता को युग युग की होना है नव निर्मित,
विविध जाति, वर्गों, धर्मों को होना सहज समन्वित,
मध्य युगो की नैतिकता को मानवता मे विकसित!
जग जीवन के अन्तर्मुख नियमो मे स्वय प्रवर्तित,
मानव का अवचेतन मन हो गया आज परिवर्तित!
बाह्य चेतनाओ मे उसके क्षोभ क्रांति उत्पीडन,
विगत सभ्यता दन्त शून्य फणि-सी करती युग नर्तन!
व्यर्थ आज राष्ट्रो का विग्रह औ' तोपो का गर्जन,
रोक न सकते जीवन की गति शत विनाश आयोजन,
नव प्रकाश मे तमस युगो का होगा स्वय निमज्जित
प्रतिक्रियाएँ विगत गुणो की होगी शनै पराजित!
(जनवरी '४०)

सास्कृतिक हृदय

कृषि युग से वाहित मानव का सास्कृतिक हृदय
जो गत समाज की रीति नीतियो का समुदय,
आचार विचारो म जो वह देता परिचय,
उपजाता मन मे सुख दुख, आशा, भय, सशय,
जो भले बुरे का ज्ञान हम देता निश्चित
सामन्त जगत मे हुआ मनुज मे वह निर्मित।
उन युग स्थितियो का आज दृश्य पट परिवर्तित,
प्रस्तर युग की सभ्यता हो रही अब अवसित।
जो अन्तर जग था बाह्य जगत पर अवलम्बित
वह बदल रहा युगपत युग स्थितियों से प्रेरित।
वहु जाति धर्म औ' नीति कर्म मे पा विकास
गत सगुण आज लय होने को औ' नव प्रकाश
नव स्थितियो के सजन से हो अब शनै उदय
बन रहा मनुज की नव आत्मा, सास्कृतिक हृदय।

(फरवरी '४०)

भारत ग्राम

सारा भारत है आज एक रे महा ग्राम।
हैं मान चित्र ग्रामा के, उसके प्रथित नगर
ग्रामीण हृदय मे उनके शिक्षित सस्कृत नर,
जीवन पर जिनका दृष्टिकोण प्राकृत, बर्बर
वे सामाजिक जन नही, व्यक्ति हैं अहकाम।

है वही क्षुद्र चेतना, व्यक्तिगत राग द्वेष,
लघु स्वार्थ और अधिकार सत्व तृष्णा अशेष,
आदर्श, अधविश्वास वही,—हा सम्यवेश,
सचालित करते जीवन जन का क्षुधा काम।

वे परम्परा प्रेमी, परिवर्तन से विभीत,
ईश्वर परोक्ष से ग्रस्त भाग्य के दास क्रीत,
कुल जाति कीर्ति प्रिय उन्हे, नही मनुजत्व प्रीत,
अब प्रगति मार्ग मे उनके पूर्ण धरा विराम।

लौकिक से नही अलौकिक स है उन्ह भीति,
वे पाप पुण्य सत्रस्त, कर्म गति पर प्रतीति,
उपचेतन मन से पीडित, जीवन उन्हे ईति,
है स्वर्ग मुक्ति कामना, मर्त्य से नही काम।

आदिम मानव करता अब भी जन मे निवास
सामूहिक सत्ता का जिसकी न हुआ विकास,
जन जीवी जन दारिद्रय दुख के बने ग्रास,
परवश यहाँ की चर्म सती ललना ललाम।

जन द्विपद कर सके देश काल को नहीं विजित,
वे वाष्प वायु यानो से हुए नही विकसित,
वे वग जीव, जिनसे जीवन साधन अधिकृत,
लालायित करते उन्हें वही धन, धरणि धाम !

ललकार रहा जग को भौतिक विज्ञान आज
मानव को निर्मित करना होगा नव समाज,
विद्युत औ' वाष्प करेंगे जन निर्माण काज,
सामूहिक मगल हो समान समदृष्टि राम !

(दिसम्बर '३६)

स्वप्न और सत्य

आज भी सुन्दरता के स्वप्न हृदय मे भरते मधु गुञ्जार,
वग कवियो ने जिनको गूथ रचा भू स्वग, स्वण ससार !

आज भी आदर्शों के सौध मुग्ध करते जन-मन अनजान,
देश देश के कालिदास गा चुके जिनके गौरव गान !

मुहम्मद, ईसा, मूसा, बुद्ध केन्द्र सस्कृतियो के, श्री राम,
हृदय म श्रद्धा, सम्भ्रम, भक्ति जगाते विकसित व्यक्ति ललाम !

धम, बहु दशन नीति, चरित्र सूक्ष्म चिर का गाते इतिहास,
व्यवस्थाएँ, सस्थाए, तत्र बांधते मन वन स्वर्णिम पाश !

आज रे, जग जीवन का चक्र दिशा गति बदल चुका अनिवार,
सिन्धु मे जन युग के उद्दाम उठ रहा नव्य शक्ति का ज्वार !

आज मानव जीवन का सत्य धर रहा नये रूप आकार,
आज युग का गुण है—जन रूप रूप जन सस्कृति के आधार !

स्थूल, जन आदर्शों की सृष्टि कर रही नव सस्कृति निर्माण,
स्थूल–युग का शिव, सुदर, सत्य स्थूल ही सूक्ष्म आज, जन प्राण !

(दिसम्बर '३६)

बापू !

चरमोन्नत जग मे जब कि आज विज्ञान ज्ञान,
बहु भौतिक साधन यत्र यान, वैभव महान,
सेवक हैं विद्युत वाष्प शक्ति धन बल नितान्त,
फिर क्यो जग मे उत्पीडन ? जीवन यो अशान्त ?
मानव ने पायी देश काल पर जय निश्चय,
मानव के पास नही मानव का आज हृदय !
चर्वित उसका विज्ञान ज्ञान वह नही पचित
भौतिक मद से मानव आत्मा हो गयी विजित !
है श्लाघ्य मनुज का भौतिक सचय का प्रयास,
मानवी भावना का क्या पर उसमे विकास ?

चाहिए विश्व को आज भाव का नवोन्मेष,
मानव उर में फिर मानवता का हो प्रवेश।
बापू! तुम पर हैं आज लगे जग के लोचन,
तुम खोल नहीं जाओगे मानव के बंधन?
(दिसम्बर '३६)

अहिंसा

बंधन बन रही अहिंसा आज जनों के हित,
वह मनुजोचित निश्चित, कब? जब जन हो विकसित।
भावात्मक आज नहीं वह, वह अभाव वाचक
उसका भावात्मक रूप प्रेम केवल साधक।
हिंसा विनाश यदि, नहीं अहिंसा मात्र सृजन,
वह लक्ष्य शून्य अब भर न सकी जन में जीवन,
निष्क्रिय उपचेतन ग्रस्त एक देशीय परक,
सांस्कृतिक प्रगति से रहित आज जन हित दुर्गम।
हैं सृजन विनाश सृष्टि के आवश्यक साधन
यह प्राणि शास्त्र का सत्य नहीं, जीवन दर्शन।
इस द्वंद्व जगत में द्वंद्वातीत निहित संगति,
है जीव जीव का जीवन,—रोक न सका प्रगति।
भव तत्व प्रेम साधन हैं उभय विनाश सृजन,
साधन बन सकते नहीं सृष्टि गति में बंधन।
(फरवरी '४०)

पतझर

झरो, झरो, झरो।
जंगम जग प्रांगण में,
जीवन संघर्षण में
नव युग परिवर्तन में
मन के पीले पत्तो।
झरो, झरो, झरो।

सन् सन् शिशिर समीरण
देता क्रांति निमंत्रण।
यही जीवन विस्मृति क्षण—
जीर्ण जगत के पत्तो।
टरो, टरो, टरो।
कँपकर, उड़कर, गिरकर,
दबकर, पिसकर, चर मर,
मिट्टी में मिल निर्भर
अमर बीज के पत्तो।
मरो, मरो, मरो।

तुम पतझर, तुम मधु—जय!
पीले दल, नव किसलय,
तुम्ही सृजन, वर्धन, लय,
आवागमनी पत्तो!
सरो, सरो, सरो!

जाने से लगता भय?
जग मे रहना सुखमय?
फिर आओगे निश्चय!
निज चिरत्व से पत्तो!
डरो, डरो, डरो!

जन्म मरण से होकर,
जन्म मरण को खोकर,
स्वप्नो मे जग सोकर,
मधु पतझर के पत्तो!
तरो, तरो, तरो!

(फरवरी '४०)

उद्बोधन

खोलो वासना के वसन,
नारी नर!
वाणी के बहु रूप, बहु वेश, बहु विभूषण
खोलो सब, बोलो सब
एक वाणी,—एक प्राण, एक स्वर!
वाणी केवल भावो—विचारो की वाहन,
खोलो भेद भावना के मनोवसन
नारी नर!

खोलो जीर्ण विश्वासों, संस्कारो के शीर्ण वसन,
रूढियो रीतियो, आचारो के अवगुण्ठन,
छिन्न करो पुराचीन संस्कृतियो के जड बंधन,—
जाति वर्ण, श्रेणि वर्ग से विमुक्त जन नूतन
विश्व सभ्यता का शिलान्यास करें अब शोभन,
देश राष्ट्र मुक्त धरणि पुण्य तीर्थ हो पावन!
मोह पुरातन का वासना है, वासना दुस्तर,
खोलो सनातनता के शुष्क वसन
नारी नर!

समरागण बना आज मानव उपचेतन मन,
नाच रहे युग युग के प्रेत जहा छाया तन,
धर्म वहाँ, कर्म वहाँ, नीति रीति, रूढि चलन,
तर्क वाद, सत्य न्याय शास्त्र वहाँ षड दर्शन,
खण्ड - खण्ड मे विभक्त विश्व चेतना प्रागण,

भित्तियाँ खड़ी हैं वहाँ देश काल की दुर्धर !
ध्वंस करो, भ्रंश करो, खँडहर हैं ये खँडहर,
खोलो विगत सभ्यता के क्षुद्र वसन
नारी नर !

नव चेतन मनुज आज करें धरणि पर विचरण,
मुक्त गगन में समूह शोभन ज्यों तारागण,
प्राणों प्राणों में रहे ध्वनित प्रेम का स्पंदन,
जन से जन में रे बहे, मन से मन में जीवन,
मानव हो मानव—हो मानव में मानवपन
अन्न वस्त्र से प्रसन्न, शिक्षित हों सब जन,
सुंदर हो वेश, सबके निवास हों सुंदर,
खोलो परम्परा के कुरूप वसन,
नारी नर !

(दिसम्बर '४०)

नव इन्द्रिय

नव जीवन की इंद्रिय दो हे, मानव को,
नव जीवन की नव इंद्रिय,
नव मानवता का अनुभव कर सके मनुज
नव चेतनता से सक्रिय !
स्वर्ग खण्ड इस पुण्य भूमि पर
प्रेत युगों के करते ताण्डव,
भव मानव का मिलन तीर्थ
बन रहा रक्त चण्डी का रौरव !
अनिर्वाप्य साम्राज्य लालसा
अगणित नर आहुति देती नव,
जाति वर्ग औ' देश राष्ट्र में
आज छिड़ा प्रलयंकर विप्लव !
नव युग की नव आत्मा दो पशु मानव को,
नव जीवन की नव इंद्रिय,
नव मानवता का साम्राज्य बने भू पर
दस दिशि के जनगण को प्रिय !

(दिसम्बर '३६)

कवि किसान

जोतो हे कवि, निज प्रतिभा से
फल से निष्ठुर मानव अंतर
चिर जीर्ण विगत की खाद डाल,
जन भूमि बनाओ सम सुंदर !
बोओ, फिर जन-मन में बोओ
तुम ज्योति पंख नव बीज अमर,

जग जीवन अंकुर हँस हँस
भू को हरीतिमा से दें भर!
पृथ्वी से खोद निकालो, कवि,
मिथ्या विश्वासों के तृण खर,
सींचो अमृतोपम वाणी की
धारा से मन, भव हो उर्वर!
नव मानवता का स्वर्ण शस्य-
सौंदर्य लुनाओ जन सुखकर,
तुम जग गृहिणी, जीवन किसान
जन हित भण्डार भरो निर्भर!
(जनवरी '४०)

वाणी!

तुम वहन कर सको जन मन में मेरे विचार,
वाणी मेरी, चाहिए तुम्हें क्या अलंकार!
भव कर्म आज युग की स्थितियों से है पीड़ित,
जग का रूपान्तर भी जनैक्य पर अवलम्बित,
तुम रूप कर्म से मुक्त, शब्द के पंख मार,
कर सको सुदूर मनोनभ में जन के विहार,
वाणी मेरी, चाहिए तुम्हें क्या अलंकार!
चित् शून्य,—आज जग नव निनाद से हो गुंजित,
मन जड़—उसमें नव स्थितियों के गुण हों जागृत,
तुम जड़ चेतन की सीमाओं के आर पार
झंकृत भविष्य का सत्य कर सको स्वराकार,
वाणी मेरी, चाहिए तुम्हें क्या अलंकार!
युग कर्म शब्द, युग रूप शब्द, युग सत्य शब्द,
शब्दित कर भावी के सहस्र शत मूक शब्द,
ज्योतित कर जन मन के जीवन का अंधकार,
तुम खोल सको मानव उर के निःशब्द द्वार,
वाणी मेरी, चाहिए तुम्हें क्या अलंकार!
(फरवरी '४०)

नक्षत्र

[अपनी कॉटेज के प्रति]

मेरे निकुंज, नक्षत्र वास!
इस छाया मर्मर के वन में
तू स्वप्न नीड़ सा निर्जन में
है बना प्राण पिक का विलास!

लहरी पर दीपित ग्रह समान
इस भू उभार पर भासमान,

तू बना मूक चेतनावान
पा मेरे सुख दुख, भाव' च्छवास!

आती जग की छवि स्वर्ण प्रात,
स्वप्नों की नभ सी रजत रात,
भरती दश दिशि की चारवात
तुझमे वन-वन की सुरभि साँस!

कितनी आशाएँ मनोल्लास,
सकल्प महत उच्चाभिलाष,
तुझमे प्रतिक्षण करते निवास,—
है मौन श्रेय साधन प्रयास!

तू मुझे छिपाये रह अजान
निज स्वर्ण मर्म मे खग समान
होगा अग जग का कण्ठ गान
तेरे इन प्राणो का प्रकाश!
मेरे निकुज, नक्षत्र वास!

(१९३२)

आँगन से

रोमांचित हो उठे आज नव वर्षा के स्पर्शों से!
छोटे से आँगन मेरे, तुम रीते थे वर्षों से!
नव दूर्वा के हरे प्ररोहो से अब भरे मनोहर
मरकत के टुकड़े से लगते तुम विजड़ित भू उर पर!
जन निवास से दूर, नीड में वन तरुओं के छिपकर
भू उरोज-से उभरे इस एकान्त मौन भीटे पर
कोमल शाद्वल अचल पर लेटा मैं स्मित, चिन्तन पर,
जीवन की हँसमुख हरीतिमा को देखूँ आँखें भर!
एक ओर गहरी खाई मे सोया तरुओं का तम
केका रव से चकित, बसेर सुख स्वप्नो का सम्भ्रम!
और दूसरी ओर मजरित आम्र विपिन कर मुखरित
मधु मे पिक, पावस मे पी-खग करे हृदय को हर्षित!
हरित भरित वन नीम उच्छवसित शाखाओ का विह्वल
वक्षभार, हाँ, रहे झुकाये मेरे ऊपर कोमल!

(अगस्त '३६)

याद

बिदा हो गयी साँझ, विनत मुख पर झीना आँचल धर,
मेरे एकाकी आँगन म मौन मधुर स्मृतिया भर!
वह केसरी दुकूल अभी भी फहरा रहा क्षितिज पर
नव असाढ के मेघो मे घिर रहा बराबर अम्बर!

मैं बरामदे मे लेटा, शय्या पर, पीडित अवयव,
मन का साथी बना बादला का विषाद है नीरव।
सक्रिय यह सकरुण विषाद,—मेघो से उमड उमडकर
भावी के बहु स्वप्न, भाव बहु व्यथित कर रहे अतर।
मुखर विरह दादुर पुकारता उत्कण्ठित भेकी को,
बहुभार से मोर लुभाता मेघ-मुग्ध केकी को,
आलोकित हो उठता सुख से मेघो का नभ चचल,
अतरतम मे एक मधुर स्मृति जग जग उठती प्रतिपल।
कम्पित करता वक्ष धरा का घन गभीर गजन स्वर,
भू पर ही आ गया उतर शत धाराओ मे अम्बर।
भीनी भीनी भाप सहज ही साँसो मे घुलमिल कर
एक और भी मधुर गध से हृदय दे रही है भर।
नव असाढ की सन्ध्या म, मेघो के तम मे कोमल,
पीडित एकाकी शय्या पर, शत भावो मे विह्वल,
एक मधुरतम स्मृति पल भर विद्युत-सी जलकर उज्ज्वल
याद दिलाती मुझे हृदय मे रहती जो तुम निश्चल।

(जुलाई '३९)

गुलदावदी

शय्या ग्रस्त रहा मैं दो दिन, फूलदान मे हँसमुख
चन्द्र मल्लिका के फूलो को रहा देखता सम्मुख।
गुलदावदी कहूँ,—कोमलता की सीमा ये कोमल।
शैशव स्मिति इनमे जीवन की भरी स्वच्छ, सद्योज्वल।
पुज पुज उल्लास, लीन लावण्य राशि मे अपने,
मदु पखडियो के पलको पर देख रहा हो सपने।
उज्ज्वल सूरज का प्रकाश, ज्योत्स्ना भी उज्ज्वल, शीतल,
उज्ज्वल सौरभ अनिल, और उज्ज्वल निमल सरसी जल,
इन फूलो की उज्ज्वलता छू लेती अतर के स्तर,
मधुर अवयवो मे बँध वह ज्यो हो आ गयी निकटतर।
मदुल दलो के अगजाल से फूट त्वचा कोमल सुख
सहृदय मानवीय स्पर्शों से हर लेता मन का दुख।
तण-तण मे औ' निखिल प्रकृति मे जीवन की है क्षमता,
पर मानव का हृदय लुभाती मानव करुणा ममता।

(दिसम्बर '३९)

विनय

विज्ञान ज्ञान बहु सुलभ, सुलभ बहु नीति धम
सकल्प कर सकें जन, इच्छा अनुरूप कम।
उपचेतन मन पर विजय पा सके चेतन मन,
मानव को दो यह शक्ति पूण जग के कारण।

मनुजो की लघु चेतना मिटे, लघु अहकार,
नव युग के गुण से विगत गुणो का अपकार !
हो शान्त जाति विद्वेष, वर्ग गत रक्त समर,
हो शात युगो के प्रेत, मुक्त मानव अतर !

सस्कृत हो सब जन, स्नेही हो, सहृदय, सुदर,
सयुक्त कर्म पर हो सयुक्त विश्व निर्भर !
राष्ट्रों से राष्ट्र मिलें, देशो से देश आज,
मानव से मानव,—हो जीवन निर्माण काज !

हो धरणि जनो की, जगत् स्वर्ग,—जीवन का घर,
नव मानव को दो, प्रभु ! भव-मानवता का वर !

(फरवरी '४०)

स्वर्ण किरण

[प्रथम प्रकाशन-वर्ष १९४७]

स्वर्गीय
डॉक्टर एन सी जोशी
को

विज्ञापन

अपनी दीर्घ अस्वस्थता के बाद स्नेही पाठकों को 'स्वर्ण किरण' से अभिनन्दन करने में मुझे हर्ष हो रहा है। उनके वातायनों में यदि 'स्वर्ण किरण' प्रवेश पा सकी तो मैं अपना श्रम सफल समझूँगा।

सुमित्रानन्दन पंत

द्वितीय संस्करण

इस संस्करण में मैंने 'स्वर्ण किरण' की अनेक रचनाओं में इधर उधर छोटे मोटे परिवर्तन कर दिये हैं, आशा है कि वे पाठकों को रुचिकर प्रतीत होंगे।

१८/७ बी स्टेनले रोड
इलाहाबाद
मार्च १९५६

सुमित्रानन्दन पंत

अभिवादन

हँसी, लो, स्वर्ण किरण,
शिखर आलोक वरण।
विचरती स्वण किरण
धरा पर ज्योति चरण।
जगे तरु नीड सबल
खगों की भीड विकल,
पवन में गीत नवल
गगन में पंख चपल।
अधखिले स्वप्न नयन
घूमती स्वण किरण।

सरों में हँसी लहर
ज्योति का जगा प्रहर,
चेतना उठी सिहर
स्पर्श यह दिव्य अमर।
तुहिन के स्वर्णिम क्षण
वितरती स्वण किरण।

विजय से दीप्त गगन
ध्वजा - सी मुक्त पवन,
धरा रज नव चेतन
खिला मन का लोचन।
युगों का तमस हरण
करे यह स्वर्ण किरण।

खुला अब ज्योति द्वार
उठा नव प्रीति ज्वार,
सजन शोभा अपार।
कौन करता अभिसार ?
धरा पर ज्योति भरण,
हँसी, लो, स्वण किरण।

सम्मोहन

जादू बिछा दिया जन भू पर।
तुमने सोने की किरणों को
जीवन हरियाली बो बोकर।

फूलो से उड फूल, रंगो से
निभर सूक्ष्म रंग उर के भीतर
बुनते स्वप्न मधुर सम्मोहन,
स्वर्ण रुधिर मे अतर थर् थर्!

स्पंदित आज हृदय कण कण मे,
भाषा बनी द्रुमों की मर्मर,
लहरें उर पर देती आँचल,
कमल मुखों से जीवित-से सर!

प्रणय दृष्टि दी मुग्ध दृगो को,
प्राणो मे सगीत दिया भर,
स्वर्ण कामना का नव घूघट
डाल धरा के मुख पर सुदर!

निज जीवन का कटु सघर्षण
भूल गया अब मानव अतर
जग जीवन के नव स्वप्नो की
ज्योति दृष्टि मे अमर स्नान कर!

स्वर्ण ज्वाल मे सुमन जीवन
लिपटा लिया, हृदय मे हँसकर,
मम प्रीति का झरता अविरल
इन प्राणो मे स्वर्णिम निर्झर!

स्वर्ग धरा को बाँध पाश मे
स्वर्ण चेतना के चिर सुखकर
स्वप्नो को तुमने जीवन की
देही दे दी, मरण शोक हर!

रजतातप

[आत्म निर्माण]

आज चेतना के प्लावन - सा
निखर रहा रजतातप सुदर,
ऊषा सन्ध्या के स्वप्नो के
स्वर्णिम पुलिनो को मज्जित कर!
चद्रातप - सी स्निग्ध नीलिमा
यज्ञ धूम सी छायी ऊपर,
किरणो के स्पर्शों से गुम्फित
ज्योति वत्त सा खिचा दिगतर!
जिन स्वर्गिक शिखरो को छूकर
बहता रजत समीरण मथर!
गध हीन, निज सूक्ष्म गध से
सहसा प्राणोज्वल कर अतर!

निर्मलता ही जल धारा-सी
बह-बह धोती भू में रज कण,
भूतों की चिर पावनता में
हृदय सहज करता अवगाहन ।
लौट मुग्ध विस्मित लोचन मन
अंतर्मुख करते अवलोकन,
निमत स्पर्श पाकर निसर्ग का
आत्मा गोपन करती चिंतन ।
श्रान्त इन्द्रियाँ अनुप्राणित हो
देवों का करती आवाहन,
अंतर्नभ के दुग्धामृत से
भरें पुन वे इनमें जीवन ।
दीप शिखा - सी जगे चेतना
मिट्टी के दीपक से उठकर,
तैल धारवत मम स्नेह पा
स्वर्ग विभा से भूतल दे भर ।
अंतरतम की नीरवता में
जाग्रत हो सुर मादन गुंजन,
खण्डित भव विशृंखलता को
बाँध अमर गति लय में चेतन ।
फिर श्रद्धा विश्वास प्रेम से
मानव अंतर हो अंत स्मित,
संयम तप की सुंदरता से
जग जीवन शतदल दिक प्रहसित ।
व्यक्ति विश्व में व्यापक समता
हो जन के भीतर से स्थापित,
मानव के देवत्व से ग्रथित
जन समाज जीवन हो निर्मित ।
करें आत्म निर्माण लोकगण
आत्मोज्वल, भू मंगल के हित,
बहिरंतर जड़ चेतन वैभव
संस्कृति में कर निखिल समन्वित ।
सहृदयता का सागर हो मन
हृदय शिला हो प्रेरणा सरित
भू जीवन के प्रति रुचि जन में
मानव के प्रति मानव प्रेरित ।
प्राणों के स्तर में पुलकित
अमर भावनाएँ हों विकसित,
प्रीति पाश में बँध सुंदरता
काम भीति से हो अकलंकित ।
देव वृत्तियों के संगम में
डूबें भू विप्लव, संघर्षण,

जीवन के सगीत म प्रमित
परिणत हो धरती का क्रन्दन।

ऊर्ध्वग शृगा के समीर को
प्राग्रो, सासा से उर म भर
इस पवित्रता स हम तन का
मन का पोषण करें निरन्तर।
मुक्त चेतना के प्लावन - सा
उमड रहा रजतातप निर्झर,
प्राज सत्य की बेला बहती
स्वप्नो के पुलिना के ऊपर।

हिमाद्रि

मानदण्ड भू के प्रखण्ड है,
पुण्य धरा के स्वर्गारोहण,
प्रिय हिमाद्रि, तुमको हिमकण-से
घेरे मेरे जीवन के क्षण।
मुझ प्रचलवासी को तुमने
शैशव म प्राशी दी पावन,
नभ म नयनो को खो, तब से
स्वप्नो का प्रभिलाषी जीवन।
प्रब स शब्दो के शिखरो मे
तुम्हे चाहता करना चित्रित
शुभ्र शान्ति म समाधिस्थ हे
शाश्वत सुदरता के मूर्त।
यात्य चेतना भरी तुमम
जडीभूत प्रानन्द तरगित,
तुम्हे देख सौदय साधना
महाश्चय से मेरी विस्मित।

जिन शिखरो को स्वण किरण नित
ज्योति मुकुट स करती मण्डित,
जिन पर सहसा स्खलित तडित
हो उठती निज प्रालोक से चकित।
जिन शिखरो पर रजत पूर्णिमा
सिधु ज्वार सी लगती स्तम्भित
जिनकी नीरवता मे मेरे
गीत स्वप्न रहते थे झकृत।
जिनकी शीतल ज्वाला मे जल
बनी चेतना मेरी निमल,
प्राण हुए प्रालोकित जिनके
स्वर्गोनत सौदय से [illegible]

हृदय चाहता काव्य कल्पना को
किरीट पहनाना उज्ज्वल
स्मृति मे ज्योति तरगित स्वर्गिक
शृगो के आलोक का तरल ?
वसुधा की महदाकांक्षा-से
स्वर्ग क्षितिज से भी उठ ऊपर
अतर आलोकित से स्थित तुम
अमरो का उल्लास पान कर।
उरोभार-से गौर, धरणि के,
सोया स्वर्ग शीश धर जिस पर
तुम भारत के शाश्वत गौरव
प्रहरी सी जागरित निरतर ?
रवि की किरणें जिसे स्पर्श कर
हो उठती आलोक निनादित,
जिस पर ऊषा सन्ध्या की छबि
आदि सृष्टि सी ही स्वर्णांकित।
इन्दु ज्वलित तुम स्फटिक धवलिमा
के क्षीरोदधि से हिल्लोलित
ज्योत्स्ना मे थे स्वप्न मौन
अप्सरा लोक स लगते मोहित।
सुरग प्रवालो की रत्नश्री
अहरह रहती जहां मर्मरित,
देवदारु की चारु सूचि स
मरकत तलहटिया रोमाचित।
मौन स्वर्ग मुख पर अकित तुम
शुचि दिगत स्मिति से चिरशोभित,
आदि तत्त्व-से, अपनी ही शोभा
विलोक रहते अनिमेषित।
नीली छायाएँ थी तन पर
लगती आभा की-सी सिकुडन,
इन्द्र धनुष मण्डल से दीपित
उडते थे शत हँसमुख हिमकण।
स्वर्दूतो के पखो से स्मित
तडित् चकित हिम के रोमिल घन
रगो से वेष्टित रखते थे
तुमको हे आलोक निरजन।
प्रति वत्सर आती थी मधुऋतु
सद्य स्फुट देही ले कुसुमित
चीर रश्मियो को, फूलो के
अगो पर निज कर शत रजित।
खुलती पखडियो की कचुक
सौरभ श्वासो स थी स्पदित

मेरे शैशव को नित उसकी
गोद कोकिला रखती मूर्छित !
वसन्त, स्वप्नातप, सुरधनु पट,
शशि मुख, हिम स्मित, लाज म ग्रथित,
षड्ऋतु करती थी परिक्रमा
अप्सरियाँ-सी सुरपति प्रेरित !
शरद चन्द्रिका हा! जाती थी
स्वप्नों के शृंगों पर विजड़ित,
हिम की परियाँ का चपल उड़
भू को कर लेता था परिवृत !
रंग रंग के चित्रित पंखी
उड़ते नभ म गीत तरंगित,
नील पीत भृंगों का गुंजन
मौन क्षणों को रखता मुखरित !
ऊष्मा का सूर्यातप सुखमय
लगता शीतलता-सा मूर्तित,
इन्द्रचाप पुल पर, वर्षा म,
सुरबालाएँ आ जातीं नित !
जग अच्छाय गुहाओं म, नव
बाष्पों के गज भरते गर्जन,
चपल विद्युत् लेखाएँ थीं
लिपट दृगों से जातीं तत्क्षण !
ताराओं के साथ सहज
शैशव स्वप्नों से भर जाता मन,
उठते थे शुभ अन्तर म
सौन्दर्य स्वप्न शृंगों पर मोहन !
मेघों की छाया के संग संग
हरित घाटियाँ चलतीं प्रतिक्षण,
वन के भीतर उड़ता चपल
चित्र तितलियों का कुसुमित वन !
रँग रँग के उपलों पर रुनझुन
उछल उछल करते कल गायन
झरनों के स्वर जम-से जाते
रजत हिमानी सूत्रों म घन !
भीम विशाल शिलाओं का वह
मौन हृदय मे अब तक अंकित
फेनों के जल स्तम्भों-से वे
निर्झर रभस वेग से मुखरित !
चीड़ों के तरु वन का तम
साँसें भरता मन मे आन्दोलित
दरियों की गहरी छायाएँ
ज्योतिरिंगणों से थीं गुम्फित !

गाते उर मे क्षिप्र स्रोत,
लहराते सर तुषार के निमल,
सौरभ की गुजित अलको से
छू समीर उर करता शीतल।
नीला पीला हरा लाल नभ
चपलाओ का जगता चचल,
रजत कुहासे मे, क्षण मे,
माया प्रान्तर हो जाता ओझल।

सम्भव, पुरा तुम्हारी द्रोणी
किन्नर मिथुनो से हो कूजित,
छाया निमत गुहाएँ उन्मद
रति सौरभ से सतत उच्छवसित।
ओषधियाँ जल - जल दरियो के
स्वप्न कक्ष करती हो दीपित,
ओसो के वन मे मिलते हो
स्तन हारो के मुक्ताफल स्मित।

मदन दहन की भस्म अनिल मे
उड अब तक तन करती पुलकित,
सती अपर्णा के तप से
वनश्री अवाक सी लगती विस्मित।
अब भी ऊषा वहाँ दीखती
वधू उमा के मुख सी लज्जित,
बढती चन्द्र कला भी गिरिजा-सी
ही गिरि के क्रोड मे उदित।

अब भी वही वसन्त विचरता
पुष्प शरो से भर दिगन्त स्मित,
गन्धोद्दाम धरा वह ही, पाषाण
शिलाएँ पुलक पल्लवित।
अब भी प्रिय गौरा का शैशव
वर्णन करते खग पिक मुखरित,
देवदारु के ऊर्ध्व शिखर
बसे ही शकर-से समाधि स्थित।

अभी उतरता कूर्म सानु पर
वप्र क्रीडा परिणत गज घन
वातायन से मन्द स्वनित कर
देता कवि सन्देश आर्द्र स्वन।
अब भी अलकें उठा देखती
ग्राम वधू उसको सरल नयन,
शुभ्र बलाको के दल नभ मे
कल ध्वनि भर करते अभिवादन।

× × × ×

आज जीवनोदधि के तट पर
खड़ा प्रवंचित, क्षुब्ध, उपेक्षित
देख रहा मैं क्षुद्र अहम् की
शिखर महत्ता का रथ कुंठित !
सोच रहा, जिसके गौरव से
मेरा यह अन्तर जग निर्मित,
लगता तब, हे प्रिय हिमाद्रि,
तुम मेरे शिक्षक रहे अपरिचित !

और, पूछता मैं मन से, क्या
यह धरती रह सकती जीवित
जो तुम स्वर्गिक गरिमा भू पर
बरसाते रहते न अपरिमित !
शिखर शिखर ऊपर उठ तुमने
मानव आत्मा कर दी ज्योतित,
हे असीम आत्मानुभूति से
लीन ज्योति शृंगों के भूभृत् !

घनीभूत अध्यात्म तत्त्व-से,
जिससे ज्योति सरित शत निःसृत
प्राणों की हरियाली में स्मित
पृथ्वी तुमसे महिमा मण्डित !
स्फटिक सौध-से श्री शोभा के
रश्मि रेख शृंगों से कल्पित,
स्वर्ग खण्ड तुम इस वसुधा पर,
पुण्य तीर्थ हे देव प्रतिष्ठित !

इन्द्रधनुष

[जीवन निर्माण]

स्वर्ग धरा के मध्य रश्मि वैभव से चित्रित
स्वप्नों से रत्नस्मित सम्मोहन से ज्योतित,
इन्द्रधनुष सा, देखो, विश्व क्षितिज आलिंगित,
विजय केतु-सा वह प्रकाश का तम पर शोभित !

असतो मा सद् गमय,
तमसो मा ज्योतिर्गमय,
मृत्योर्माऽमृत गमय !

आर्ष मन्त्र के ज्योति तरंगित ये उदात्त स्वर
ध्वनित आज भी अंतनभ में दिव्य स्फुरण भर,
असत तमस के मृत्यु सलिल से हमें पार कर
सत्य, ज्योति, अमृतत्व धाम दो, जीवन ईश्वर !
अग्रकेत लो, सलिल आज लहराया दुस्तर,
ज्योति केतु फहराओ फिर से, मर्त्य हो अमर !

बाँधो हे, इस इन्द्रधनुष को धरती की वेणी पर
जीवन के तम की कबरी हो स्वर्ग विभा से भास्वर!
किरणों की सतरँग स्मिति से हो भू के रज-कण रंजित,
अन्धकार हो पुन दिशाओं का प्रकाश मे कुसुमित!

जब-जब घिरते विश्व क्षितिज पर युग परिवर्तन के घन,
मेघो के क्षण रन्ध्रजाल से कोई शुभ्र किरण छन
ज्योति सेतु-सी सर्जित हो द्रुत इन्द्रचाप मे मोहन,
स्वर्गिक स्वप्नो मे लेती लिपटा वसुधा के दिशि-क्षण,
बरस धरा पर गर्जन मथित नभ से शतमुख जीवन
प्राणो की हरियाली से रोमाचित करता जन - मन!

आज उदधि के नीलाचल मे बँधे निखिल देशान्तर,
वायु वत्म से, पख खोल, आने को नव्य युगान्तर!
आज तडित् के पद नूपुर में ध्वनित विश्व सम्भाषण,
लो, सम्भव विद्युत् कटाक्ष से अब दूरागत दर्शन!

आज वाष्प औ' विद्युत विश्व किरण मानव के वाहन,
भूत शक्ति का मूल स्रोत भी अणु ने किया समर्पण,
मातृ प्रकृति ने सौंप दिया मानव को विभव अपरिमित,
हरित नील जव भी भविष्य मे कर लेगा वह सचित!
आज वनस्पति पशु जग को कर सकता मानव वर्धित,
गर्भाशय मे जीवन अणु को ऊर्जित, विद्युत गर्भित!
भूत रसायन प्राणि वनस्पति शास्त्र विविध अब विकसित।
दिशा काल का परिणय करा रे मानव आज पुरोहित!

आओ, सोचें द्विपद जीव कैसे बन सकता मानव,
शक्ति - मत्त भूदेव कहीं बन जाय नहीं भू - दानव!
मानव संस्कृति का क्या स्वर्ग बसायेगा वह भू पर,
भीषण अणु का भू प्रकम्प या छोडेगा प्रलयकर!
नव मनुष्यता होगी भू प्रतिनिधि या राष्ट्र विभाजित,
अन्तर्देवों से प्रेरित या भूत दैत्य से शासित!
धरा बनेगी शाति धाम या रक्त क्षेत्र रण जर्जर,
अमत व्योम से बरसेगा? विष वह्नि विनाश भयकर!

लोक समस्याओ पर आओ मिलकर करें विवेचन,
विश्व सभ्यता के मुख पर से हटा मत्यु अवगुण्ठन!
सर्वप्रथम, हम जठर वह्नि को हवि दें श्रम की पावन,
शत सहस्र कर पद हो, यन्त्रो से कर सघोत्पादन!

नग्न क्षुधातुर जीवमृत भू के असख्य शोषित जन,
मानव तन को शोभाऽऽवृत कर नव युग करे पदार्पण!
आज यन्त्र कौशल से अर्जित विश्व योजना कल्पित,
जीव नियति मनुजो पशुओ की भी कृतार्थ हो निश्चित!
युग्म प्रीति हित फिर प्राणो की आहुति करें निरूपित
अर्जित पचशर के हित मोहक ज्योति व्यूह रच विस्तृत!

फूलों के बाणों से जीवन का मधु हो चिर सचित,
यौवन के शोभा तोरण मे युवति - युवक विचरें स्मित ।
शोभा का मुख काम लाज के पट से कर तमसावृत
उज्मित मानव देह मोह औ' देह द्रोह से कवलित ।।
स्वस्थ हृदय तारुण्य प्रणय को करें युग्म निज अर्पित,
भावी सतति को दें जीवन हृव्य प्रीति का दीपित ।
मातृ द्वार श्रद्धा प्रतीत के पुष्पो से हो पूजित,
प्राणो के स्वप्नो से जीवन की डाली हो मुकुलित ।
सर्वाधिक रे जन शिक्षा का प्रश्न महत, आवश्यक,
मानव के अतर्जीवन का गत इतिहास भयानक ।
जनता के उर अधकार की कथा करुण मर्मान्तक,
शिक्षा ही बहिरतर जनमगल की मात्र विधायक ।
अध जगत अवगुण्ठित, तमसावत रे लोक असख्यक,
अध सभ्य, लव विद्य शेष, जो जाति वर्ण के पोषक ।
तर्कों वादो सिद्धान्तो से बुद्धिप्राण जन पीडित,
नीति रीति शाखा पन्थो मे धमप्राण मति सीमित,
द्रव्य मान पद के अर्जन मे रत स्त्री - प्रिय नव शिक्षित,
महामृत्यु के पूजन मे वैज्ञानिक, राज्य नियोजित ।
शिलान्यास मानव शिक्षा का करना हमको नूतन,
आत्म ऐक्य औ' व्यक्ति मुक्ति का स्वर्ग सौध रच शोभन ।
वाग् यन्त्रो से, वाक चित्रो से वाहित कर सचित मन
जनगण मे भर सकते हम चेतना रुधिर का प्लावन ।
ललित कलाओ से धरती का रूप बने मनुजोचित,
शोभा के स्रष्टा हो जन, जीवन के शिल्पी जीवित ।
भावी स्वप्न दृगो मे, उर मे हो सौदर्य अपरिमित,
काव्य चित्र सगीत नृत्य से जन जीवन सुख स्पन्दित ।
हमे विश्व सस्कृति धरती पर करनी आज प्रतिष्ठित,
मनुष्यत्व के नव द्रव्यो से मानव उर कर निर्मित,
मानवीय रे ऐक्य जातिगत मन मे करना स्थापित,
मन स्वर्ग की किरणो से मानव मुख श्री कर मण्डित ।
बहिर्चेतना जाग्रत जग मे अतर्मानव निद्रित,
बाह्य परिस्थितियाँ जीवित, अतर्जीवन मूछित मत ।
भौतिक वैभव औ आत्मिक ऐश्वय नहीं सयोजित,
दर्शन औ' विज्ञान विश्व जीवन मे नहीं समन्वित ।
खोयी - सी है मानवता, खोयी वसुधा प्रनिर्बधित,
जाति पाँति हैं, रूढि रीति हैं देश प्रदेश विभाजित ।
एकत्रित कर मन शक्ति चेतन मानव को निश्चय
ग्लानि पराभव मृत्यु अमगल पर पानी शाश्वत जय ।
भेद - भाव, दुर्मति असफलता युग गति मे हो मज्जित,
जीवन रथ चक्रो पर हो धणु लोक - सृजन मे योजित ।

ऊर्ध्व चरण में रहा व्यक्ति रे जन समाज का नायक,
समदिक् गति में सामाजिकता जनगण भाग्य विधायक,
ऊर्ध्व चेतना को भू पर चलना धर जीवन के पग,
समदिक् मन को पंख खोल चिद् नभ में उठना व्यापक!
प्राणि शास्त्र को मानवीय बनना पीकर आत्मामृत,
मन शास्त्र को ऊर्ध्व तथा नव भौतिक दिशि में विस्तृत,
आदर्शों को रूढ़ि रीति पाशों से होना विरहित,
सदाचार औ' नैतिकता को युग आकृति में विकसित!

अन्तर्जीवन के वैभव से आज अपरिचित भू-जन
अधम वृत्तियों में रे कल्पित उनका मध्यम जीवन,
सत्य ज्योति से वंचित भेदों से कुण्ठित मानव मन,
अन्तर्मुख प्रेरित हो उसको पाना जीवन दर्शन!
पशुओं से भी हीन रेंगता कृमियों-सा अब मानव
भूल गया वह अन्तर्गरिमा, ढोता आत्म पराभव!
प्राणि वर्ग का ईश्वर नर दिङ्मूढ़, क्षुधार्त, निरावृत,
भव वैभव में ओत-प्रोत मानव गौरव भू लुण्ठित!
निज आत्मिक ऐश्वर्य उसे श्रम तप से करना जाग्रत,
दैन्य विदीर्ण मनुज को फिर से बनना रे महिमान्वित!

देखो हे ऐश्वर्य प्रकृति का उसका प्रति अणु जीवित,
उसका श्री सौन्दर्य अमित वह सृजन हर्ष से दोलित!
नाच रही भू हरित यौवना ज्योति ग्रहों से वेष्टित
बाहु पाश में बाँध धरा को वारिधि चिर उद्वेलित!

सायं प्रात गा कर खग करते जीवन अभिनन्दन,
सुख से सर्पित मुखर स्रोत नित, प्रीति स्रवित पिक कूजन
ऊषा सन्ध्या स्वर्णिम जीवन वैभव से चिर शोभन,
ज्योत्स्ना में सोयी भू को नभ तकता अपलक लोचन!
हिमशिखरों का स्वर्गिक आरोहण विस्मय से स्तम्भित
षड् ऋतुओं का छायातप शत ध्वनि वर्णों से विरचित,
रंग प्राण रे रंग जगत् यह श्री सुषमा का जीवित,
रूप स्पर्श रस गंध शब्द तन्मात्राओं से झंकृत!

नील गगन सुरधनु घन, घन उर में चपला कम्पित
तरुओं पर कलि कुसुम, कुसुम में मधु मधु पर अलि गुंजित,
सरसी में जल जल में लहर, लहर किरणों से चुम्बित
केवल मानव उर अन्तर-सौरभ में आज न सुरभित!
ज्योति चूर्ण लहरें उठ-उठ नित करतीं गोपन इंगित
निखिल प्रकृति रे कहती उसमें अमृत सत्य अन्तर्हित!

यह प्रकाश सौन्दर्य, प्रेम, उल्लास रंग सम्मोहन
मानव उर में इन्द्रजाल बुनते रहते हैं मोहन!
बहिरन्तर का कर नैसर्गिक वैभव सञ्चित प्रतिक्षण
आओ, हम जन लोक रचें, देवों को दें आमन्त्रण

महाप्राण रे विश्व चेतना हमे चाहिए केवल,
भू मंगल के साथ आज परिणीत व्यक्ति का मंगल!
नव चेतन मनुजो मे हो जग जीवन का संचालन,
आत्मोन्नति के लिए मिले अवसर, श्रम प्रिय हो भू-जन!
मानव हो संयुक्त प्रकृति से, स्वर्ग बने भू पावन,
बहिरन्तर के ऐश्वर्यों से हो कृतार्थ भव जीवन!

शशि मंगल लोको को छूते आज कल्पना के पर,
शशि दे जन को स्वप्न, भौम मन मे साहस बल दे भर!
शशिप्रभ स्वप्नो मे मंगलमय स्वर्ग रचें हम सुन्दर,
मानव जीवन मे अवतरित पुन हो मानव ईश्वर!

× × × ×

मृत्युहीन रे यह पुकार मानव आत्मा की निश्चय,
सत्य ज्योति अमरत्व और वह बढे अनागम निर्भय!
वैदिक ऋषि के अमृत नित्य वचनो की जग मे हो जय!
ये उपनिषत, समीप बैठ रे, ग्रहण करें हम आशय!

अन्ध तम प्रविशन्ति येऽविद्यामुपासते।
ततो भूय इव ते तमो य उ विद्याया रता।
विद्याचाविद्या च यस्तद्वेदोभय सह।
अविद्यया मृत्यु तीर्त्वाविद्ययाऽमृतमश्नुते॥

अन्ध तमस मे गिरते वे जो मात्र अविद्या मे रत,
भूरि तमस मे पडते वे जो विद्या मे रत संतत!
विद्या ऽविद्या उभय एक म, भेद जिन्हें यह अवगत,
विद्याऽमृत पी, मृत्यु अविद्या से वे तरते अविरत!

ब्रह्मज्ञान रे विद्या, भूतों का एकत्व, समन्वय,
भौतिक ज्ञान अविद्या, बहुमुख एक सत्य का परिचय।
आज जगत म उभय रूप तम मे गिरनेवाले जन,
ज्योति सेतु ऋषि दृष्टि करे उन दोनो का संचालन!
बहिरन्तर के सत्यो का जग जीवन मे कर परिणय,
ऐहिक आत्मिक वैभव से जन मंगल हो नि सशय!

× × × ×

रजत अनिम्न मे रश्मि तूलि से सत जल चित्रित
जीवन ऐश्वर्यों के सम्मोहन से रंजित
इन्द्र-धनुष से, देखो, स्वर्ग धरा आलिंगित,
विजय-ध्वजा मानव भावो की, तम पर अंकित!

चिन्तन

दुख म मन करता ज्यो चिन्तन,
सुख मे जीवन दर्शन!

आज प्रौढ जीवन स घ्यातप,
सागर की लहरो मे छप छप
यौवन स्मृतियाँ उठती कँप कँप !
गजन करते घुमड घुमड घन,
अस्त क्षितिज पर, विद्युत द्युति से
चकित दृष्टि जाती है झँप झँप !
जो प्रकाश का प्रागण था मन
वह छाया का आँगन !

क्या यह सामाजिक सघपण
केवल रे मानव का जीवन ?
सु दरता आन द प्रेम के स्वप्न चिर तन
क्या केवल प्रभात के उडुगण ?
रिक्त शरद घन ?

क्या यह उचित
कि यह सामाजिक साधारणता
मूल्य व्यक्ति का करे नियन्त्रित ?
जगम जीवन ज्वर की जडता
करे मनुज आत्मा मर्यादित ?

मानव जीवन नही उदधि - सा
केवल फेन कल्लोलित,
लहरो की गति क्षण लहरो पर
उठ गिर होती अवसित !
मानव जीवन नही अकल
अतलता ही मे सीमित
वहाँ बूद का मान उदधि स
कही अधिक है निश्चित !
बिन्दु सि धु ? बूदो का वारिधि
बूदो पर अवलम्बित,
व्यक्ति समाज ? व्यक्ति मे रहता
अखिल उदधि अतर्हित !
सागर की असीम जड है,
जन समाज की जीवित,
सजन शक्ति का दूत व्यक्ति
करता समाज को विकसित !

आज अभाव शक्तियाँ जग म
काँटे बोती हैं पग पग मे,
सामाजिक समता का कटु विष
दौड रहा जग की रग - रग मे,
आज भाव की सजन शक्तिया
उतर नही पाती हैं म पर,

जो आकर्षण क्षोभ में
उमड़ रही हो जीवन भर!
आज अपूरित पूर्ण हुए
स्वर्णिम उर जीवन सीमान्तित,
आज रचना के मंदिर में
आत्मानन्द उदय ममता ज्योतित!

आज प्रतीति व प्रीति हृदय में
थी उल्लास व आशा,
प्रतिभा सत्य मंगल मय
मन्मा की नर भाषा!
आत्मा में सौन्दर्य नहीं निज,
मानव-गरिमा पुन पर
गुंजन प्राण चेतना चातक-सी
उड़-उड़ जाती ऊपर!
अब विकास प्रेम आशा
पुनरपि उच्च अभिलाषा,
रचा सृष्टि, सौन्दर्य दृष्टि
होगी जीवन परिभाषा!

आज जब कि जीवन गन्धागार
स्पन्द मधु लहरों में उर-उर
स्वप्नावलियाँ उठती थर-थर!
उदय हो रहा ज्योति नीड़ पर
हिम शिखर पर तड़ित् आलम्ब,
मुग्ध गगन जाग है भँव भँव!
डालाडाल डाल मेरा मन,
पुन जगमगा उठा चिन्तन!

मत्स्य गन्धाएँ

स्वप्न पल मानस लहर,
ज्योति तरंगित सागर
मीन चित्र-सा सुन्दर!
लहरों से लिपट लहर
सो रही लहरों पर,
स्नायु हर्ष रहा सिहर!
पुलिन स्वप्न वैभव जड़ित
हास हस्तलग वीजित
यक्ष लोक-सा चित्रित!
वाष्प ग्रथित मेघ सुभग
शोभा पंखों में रंग
उड़ते ज्यों मुक्त विहग!

सौ-सौ ये लोल लहर
परियों के रत्न विवर
सीपों की स्वर्ण शिखर।
तट पर मैं रहा विचर
ये परियाँ, सतरंग पर,
कहतीं आकर बाहर,—
'हम जीवन धात्री वर।'
सुनता मैं फेन मुखर
विगलित मोती के स्वर।
'जीवन के अणु उर्वर
पाल पोस पृथ्वी पर
लायीं हम, भू नभचर?'
ज्योति प्रीति प्राण सुघर
सिंधु प्रजा, जन सुखकर
रचे धरा स्वर्ग अमर',—
'देख रही उठ-उठकर
हम भूतट छू दुस्तर
मां की ममता से भर?'

अरुण ज्वाल

[नवचेतना]

ओ अरुण ज्वाल, चिर तरुण ज्वाल।
चेतना रुधिर लौ सी-कम्पित
जीवन जावक से पद रंजित,
ऊषा पावक से खिला क्षितिज
दीपित करती तुम स्वर्ग भाल।
मेघों में भर स्वर्णिम मरन्द,
रँग रश्मि तूलि से रज अमन्द,
जग की डाली-डाली में तुम
सुलगाती नव जीवन प्रवाल।
तुम रक्त सुरा-सी सुर मादन,
जड़ तुमको पी बनते चेतन,
गुंजरित भृंग, कूजित कोकिल
मद से मंजरित कनक रसाल।
स्वर्णोदय-सी अन्तमन में,
मदिराभा भरती तुम क्षण में,
नीरव रहस्य के शिखरों पर
बुन श्री सुषमा सुख स्वप्न जाल।
नभ अनिल सलिल रंग आज लाल
प्रज्वलित अवनि औ' देश काल,
तुम डुबा रही भव सिंधु पुलिन
आलोक ज्वार सी उठ विशाल।

स्वर्ण निर्झर

[सौन्दर्य चेतना]

स्वर्ण रजत के पंखों की रत्नच्छाया में सुंदर
रजत घण्टियाँ सा झरता स्वर्णिम किरणों का निर्झर।
सिहर इन्द्रधनुषी लहरों में इन्द्रनीलिमा का सर
गलित मोतियों के पीतोज्वल फेनों से जाता भर।
यहाँ सूक्ष्म छायाभों के तन तैर अमृत में मादन
वर्ण विभा से भरी भ्रमभंगी से हर लेते मन।
वह शोभा की द्वाभा का नीहार लोक चिर मोहन
सहज स्फुरित हो उठता नीरव अन्तस्तल में गोपन।

ऊषा की लाली से कल्पित नव वसन्त के कोंपल,
सौरभ बाष्पों पर पुष्पों के शत रंग खिलते प्रतिपल।
शशि किरणों के नभ के नीचे, उर के सुख से चंचल,
तुहिनों का छाया वन कँपता रहता नित तारोज्वल।
यहाँ एक अप्सरी स्वर्ण तन चन्द्रातप में निर्मित
नवल अवयवों की जलतल की ज्वाल व्रतति सी शोभित।
फूल देह को उसकी घेर स्वर्ग लालसा गुञ्जित,
एकाकी प्रिय अंगों पर कोमल लावण्य अनावृत।

सुप्त स्वर्ण के चम्पागों से सुघर उरोजों पर स्थित
शुभ्र सुधा के मेघों की जाली उठती गिरती नित।
उठे कामना शिखरों से श्वासों से स्वर्गिक स्पंदित,
रजत प्रीति के उन कलशों पर स्वर्ण शिराएँ वेष्ठित।
ज्योति भंवर-सी सुघर नाभि प्रिय रजत फुहार उदर में
स्वर्ण वाष्प का घन लटका जघनों के माणिक सर में।
रजत शान्ति आत्मा के नभ की, झंकृत उसके स्वर में
मुक्ता घट में स्वर्ण प्रीति की सुरा लिये वह कर में।

मृदुल कामना लतिकाओं-सी बाँहें प्रीति प्रलम्बित
आलिंगन भरने को अति कोमल पुलकों से कल्पित।
अरुण सुरा प्यालों से करतल, प्रणय रुधिर से रंजित,
दीप शिखा सी अंगुलियों पर हीरक छवि नख ज्योतित।
भौंरों की गुञ्जारों में श्लथ कुन्तल मसृण तरंगित,
जिनके कोमल सुरभित तम में स्वप्न काम के निद्रित।
वाणी के उद्ग्रीव हंस सी ग्रीवा की शोभा सित
भाल भृकुटि श्रुति चिबुक नासिका उसके सतत निरुपमित।

स्वर्णिम निर्झर-सी रति सुख की जंघाओं पर पेशल,
लिपटी जीवन की ज्वाला उद्दीपन करती शीतल।
नव प्रभात किरणों से चुम्बित रक्त कमल से पदतल,
लहरा उठती पग पग पर स्वर्गंगा भू पर चंचल।
खिले कपोलों पर सुषमा के पाटल छवि से लज्जित,
अधरों पर मदिरा प्रवाल की बनी मधुर अधरामृत।

इन्दु रश्मि के कुन्द मुकुल दशनो मे द्रवित सहज स्मित
नील कमल नयनो मे नीरव स्वर्ग प्रीति का विकसित।

स्निग्ध स्पर्श बहता प्राणो मे अमर चेतना सा नव
उर को होता चिर प्रतीति की मधुर मुक्ति का अनुभव।
मन मे भर जाता स्वर्गिक भावो का स्वर्णिम वैभव,
हृदय हृदय का मिल, अभिन्न बनना हो जाता सम्भव।

यह सौन्दय विभा रे उसके अमर प्रेम की छाया,
दिव्य प्रेम देही, सुन्दरता उसकी सतरँग काया।
प्रेम सत्य, शिव सार, प्रेम मे नित आनन्द समाया,
दृढ प्रतीति को उसने अपनी चिर पद पीठ बनाया।

ज्योति भारत

ज्योति भूमि,
जय भारत देश।
ज्योति चरण धर जहा सभ्यता
उतरी तेजोमेष।

समाधिस्थ सौन्दय हिमालय,
श्वेत शान्ति आत्मानुभूति लय,
गगा यमुना जल ज्योतिमय,
हँसता जहाँ अशेष।
फूटे जहाँ ज्योति के निर्झर
ज्ञान भक्ति गीता वशी स्वर,
पूर्ण काम जिस चेतन रज पर
लोटे हँस लोकेश।

रक्तस्नात मूर्छित धरती पर
बरसा अमृत ज्योति स्वर्णिम कर,
दिव्य चेतना का प्लावन भर
दो जग को आदेश।

नोआखाली के महात्माजी के प्रति

कौन खडे उन्नत अविचल, दुधर झझा के सन्मुख?
स्वग दूत-से, जाति भेद का हरने धरणी का दुख।
देह मात्र से मानव तुम, बल मे अदम्य दृढ भूधर,
ऊर्ध्व चरण धर चलते निश्चल, भू से स्वग क्षितिज पर।
कोने कोने मे प्रकाश से व्यापक, ऋजु गामी नित,
देवो का पावक कर पुट भर भू पर करते वितरित।
आज राम कोदण्ड तुम्हारे कर मे नव सधानित
दीप्त अहिसा तीरो से करता भू तमस पराजित।
यह सस्कृति का शस्त्र क्षेत्र मे राजनीति के रोपित
भावी मानव जीवन गौरव उर मे करता जागृत।

युग के धार्मिक नैतिक आर्थिक संघर्षों से कुण्ठित
मानवता में तुमने फिर नव हृदय कर दिया स्पंदित।
इस वसुधा पर जिस सुवर्ण युग का यह अभिनय उपक्रम
उसका था आभास, देव, झुक जाता शीश ससम्भ्रम।

श्री जवाहरलाल नेहरू के प्रति

जय निनाद करते जन, हे जन-गण के नायक,
इस विशालतम जन समुद्र के भाग्य विधायक!
ज्योति रत्न तुम भारत के, हृदयोज्ज्वल, चेतन
प्राणों की स्मित रंग श्री में बहुमुख शोभन।
फूलों के बाणों का रच नव कुसुमित तोरण
अभिनंदन करता नव भारत का नव यौवन।
उर के चिर तारुण्य, पाँति में युवति युवक गण
खड़े प्रीति सौंदर्य द्वार बन अपलक लोचन।
जननि तुम्हारा मुख शिशुओं में करती चुम्बन,
मानव होंगे वे किसके आदर्श कर ग्रहण?

उन्नत आज हिमाद्रि उठाये नभ में मस्तक,
वह शाश्वत भारत प्रहरी, तुम गौरव रक्षक!
सिंधु तरंगित हृदय स्फीत करता जय गर्जन,
निखिल धरा में करने को संदेश ज्यों वहन।

शत अभिवादन करता मन भारत के नायक,
तन के मन के मूकों के नव भाग्य विधायक।

कोटि हस्त पद करो लोक गण का संचालन,
ज्योतित हों तम के मन, शोभित नग्न क्षुधित तन।
निर्मित करो पुनः भारत का वैभव जीवन,
आर्य भूमि पर उठे सांस्कृतिक स्वर्गारोहण।
वसुधामयी भरत भू, मानवता प्रेमी जन,
आत्मवान्, ऋषियों के तप से अंतर्मुख मन,
खुलें तुम्हारे हाथों युग युग के जड़ बंधन
ज्योति ज्वार-सा जगे सुप्त भू का उपचेतन।
हो भारत स्वातंत्र्य विश्व हित स्वर्ण जागरण,
रक्त व्यथित भू पिये शांति सुख का संजीवन।
लौह अस्थि पंजर में यांत्रिक युग के भीषण
मनुष्यत्व का हृदय कर उठे फिर से स्पंदन।

ऊर्ध्व दण्ड तुम बनो, इन्द्रधनु-सी, सुर मोहन,
भारत की चेतना ध्वजा फहरे दिक् शोभन,
जीवन स्वप्न रंग स्मित, अंतररश्मि प्रज्वलित,
प्रीति शिखा सी, विश्व व्योम कर ज्योति तरंगित।

अवगुण्ठिता

वह कैसी थी,
अब न बता पाऊँगा
वह जैसी थी!

प्रथम प्रणय की आँखो ने था उसको देखा,
यौवन उदय,
प्रणय की थी वह प्रथम सुनहली रेखा!
ऊषा का अवगुण्ठन पहने,
क्या जाने लग पिक से कहने,
मौन मुकुल सी, मृदु अगो मे
मधुऋतु बन्दी कर लायी थी!
स्वप्नो का सौंदय, कल्पना का माधुय
हृदय मे भर, आयी थी!
वह कैसी थी,
वह न कथा गाऊँगा
वह जैसी थी!

'क्या है प्रणय!' एक दिन बोली, 'उसका वास कहा है?
इस समाज मे? देह मोह का,
देह द्रोह का त्रास जहा है?

'देह नही है परिधि प्रणय की,
प्रणय दिव्य है, मुक्ति हृदय की,
यह अनहोनी रीति,
देह वेदी हो प्राणो के परिणय की!

'बँधकर हृदय मुक्त होते है,
बँधकर देह यातना सहती,
नारी के प्राणो मे ममता,
बहती रहती, बहती रहती!

'नारी का तन मा का तन है,
जाति वृद्धि के लिए विनिर्मित,
पुरुष प्रणय अधिकार प्रणय है,
सुख विलास के हित उत्कण्ठित!

'तुम हो स्वप्न लोक के वासी,
तुमको केवल प्रेम चाहिए,
प्रेम तुम्हे देती मैं अबला,
मुझको घर की क्षेम चाहिए!

'हृदय तुम्हे देती हूँ, प्रियतम
देह नही दे सकती,
जिसे देह दूगी अब निश्चित

स्नेह नहीं दे सकती!
'प्रात विदा का मन में सायी,
तुम नभ के, मैं भू की वासी,
नारी तन है, तन है, तन है,
हे मन प्राणों के अभिलाषी!

'नारी देह शिखा है जो
नव देहों में नव दीप सजोती
जीवन कैसे कहीं होता,
जो नारीमय देह न होती?

'तुम हो स्वप्नों के द्रष्टा, तुम
प्रेम ज्ञान औ' सत्य प्रकाशी,
नारी है सौ दय, प्राण,
नारी है रूप सृजन की प्यासी!

तुम जग की सोचो, मैं घर की,
तुम अपने प्रभु, मैं निज दासी,
लज्जा पर न तुम्हें आती,
बन सकते नहीं प्रेम सन्यासी!'

'विदा!' 'विदा!'
'शायद मिल जायें यदा कदा!'
मैं बोला, 'तुम जाओ,
प्रसन्न मन जाओ, मेरा आशी,'
उसके नयनों में आँसू थे,
अधरों पर निश्छल हाँसी!

वह क्या समझ सकी थी, उस पर
क्यों रीझा था यह आत्मातुर
स्वप्न लोक का वासी?

मैं मौन रहा,
फिर स्वत कहा,
'बहती जाओ बहती जाओ,
बहती जीवन धारा में,
शायद कभी लौट आओ तुम,
प्राण, बन सका अगर सर्वहारा मैं!'

चिन्मयी

वह हिमाद्रि की मुक्त तापसी
मेरी चिर सहचरी, मानसी!

शुभ्र हिमानी का तन अचल,
आते जाते शत रँग पल पल,

निश्चल अंतर, चितवन चंचल
झरते अश्रु, अजस्र स्थिर हँसी।
स्वच्छ कुंद की कलियों का तन,
सुरभि - रहित सौरभ का शुचि मन,
ज्योत्स्ना से गुंठित शशि आनन
अवनि, अनिल, आकाश में बसी।
सहज चेतना की प्रकाश वह
एक किरण, सतरंग विलास वह
विश्व अभ्र पर इंद्रहास वह
पृथ्वी के तृण तृण पर विलसी।
खोल कल्पना के उर में पर
स्वर्गिक शोभा की उड़ान भर
फिर - फिर आती हृदय में उतर
मात्र हंसिनी वह उर सरसी।
मधु गाती गुण, भर पिक कूजन,
शरद पद्म सित करती अर्पण
हिम उसकी स्मिति करती वपण,
वर्षा भरती मंगल कलसी।
वह हिमाद्रि की मुक्त तापसी।
मेरी चिर प्रेयसी, मानसी।

हिमाद्रि और समुद्र

वह शिखर - शिखर पर स्वर्गोन्नत
स्तर पर स्तर ज्यों अंतर्विकास
चढ़ सूक्ष्म सूक्ष्मतम चिद् नभ में
करता हो शुचि शाश्वत विलास।
वह मौन गभीर प्रशान्त ऊर्ध्व
स्थित धी असंग चिर निरभिलाष
आत्मा की गरिमा का भू पर
बरसाता हो अकलुष प्रकाश।
वह निर्विकल्प चेतना शृंग
उठ स्वर्ग क्षितिज से भी ऊपर
अन्तर्गौरव में समाधिस्थ
अपनी ही सत्ता पर निर्भर।
वह ज्यों असीम सौंदर्य अमर
जो तृण तृण पर से रहा निखर,
वह रोमांचित आनंद, नृत्य करता
विमुग्ध भव जिस लय पर।
यह ज्यों अनंत जीवन वारिधि
अहरह अशान्त औ' उद्वेलित,

जिसके निस्तल गहरे रंग में
अगणित भव के युग अंतर्हित!
जग की अबाध आकांक्षा से
इसका अंतस्तल आंदोलित,
सुख - दुख आशा - आशंका के
उत्थान पतन से चिर मथित!

यह मनश्चेतना ज्यों सक्रिय
भू के चरणों पर बिखर - बिखर
शत स्नेहोच्छ्वसित तरंगों की
बाँहों में लेती भू को भर!
नभ से बन पवन, पवन से जल,
लालायित यह चेतना अमर
सोयी धरती में लिपट, जगाने
उसे, युगों की जड़ता हर!

वह महाकाल सा रे अलघ्य,
जो शाश्वत स्वर्ग मर्त्य प्रहरी,
यह महादिशा - सा ही अकूल
जिसमें विराट संसृति लहरी!
हिमगिरि की गहराई ऊँची,
सागर की ऊँचाई गहरी
छाया प्रकाश की संसृति के
जीवन रहस्य में है छहरी!

भू प्रेमी

चाँद हँस रहा निबिड़ गगन में, उमड़ रहा नीचे सागर,
इंद्रनील जल लहरों पर मोती की ज्योत्स्ना रही बिखर!
महानील से कहीं सघन मरकत का यह जल तत्व गहन,
जिसमें जीवन ने जीवों का किया प्रथम आश्चर्य सृजन!

जल से भी निष्ठुर धरती का लेकर धीरे अवलम्बन
जलज जीव ने सजग बढ़ाये क्रम विकास के प्रथक चरण!
भू के गहरे अंधकार में वही जीव अनिमेष नयन
देख रहा नभ ओर ज्योति के लिए, जहाँ रवि शशि उडुगण!

धरती के पुलिनों में उसकी आकांक्षाएँ उद्वेलित
फिर फिर उठती गिरतीं ऊपर के प्रकाश से आंदोलित!
अच्छा हो, भू पर ही विचरे यह भू का प्रेमी मानव,
मधुर स्वर्ग आकर्षण से नित होता रहे तरंगित भव!

विस्तृत जो हो जाये मानव अंतर, चेतनता विकसित,
आत्मा के स्पर्शों से भू रज सहज हो उठेगी जीवित!
अंतर का रूपांतर हो औ बाह्य विश्व का रूपांतर,
नव चेतना विकास धरा को स्वर्ग बना दे चिर सुन्दर!

जन मन के विकास पर निर्भर सामाजिक जीवन निश्चित
संस्कृति का भू स्वर्ग अमर आत्मिक विकास पर अवलम्बित ।

पूषण

मैं पूषण हूँ, धरती का ज्योतिर्मय ईश्वर,
स्वर्ण रजत का चिर प्रकाश बरसाता भू पर ।
जब धरती सोती तमिस्र का दे अवगुण्ठन,
मैं सुधांशु बन भरता दिव स्वप्नों से जन मन ।
मेरे ही अगणित लोचन अपलक तारक गण
अंधकार को प्रहसित करते भू भय छेदन ।
मेरी किरणों से झरता धरती पर जीवन,
प्राणों से तृण तरु जीवों का करता पोषण ।
मेरा यह संदेश उठो हे, जागो, भूचर,
तुम हो मेरे अंश, ज्योति संतान तुम अमर ।
छोड़ो जड़ता, छिन्न करो भव भेदों का तम,
तुम हो मुझसे एक, एक तुम भूतों से, सम ।
करो आत्मबल संचय तोड़ो मन के बंधन,
स्वर्ग बनाओ वसुधा को, भुज श्रम से शोभन ।
अंधकार से लड़ो, यही मनुजोचित जीवन,
देवों के हो मुकुट तुम्हारे श्रम मुक्ता कण ।
एक मंत्र से हो सकती मानवता निर्मित,
पूषण में संयुक्त रहें जो मानव निश्चित ।
आत्म ऐक्य हो नींव मनुष्य समाज का भवन
स्वर्गोन्नत हो, मुक्त व्यक्ति रुचि के वातायन ।

जिज्ञासा

यह ओसों की डाल पिरो दी किसने जीवन के आँगन में ?
हास अश्रु की सजल ज्वाल यह किसने फैला दी दिशि क्षण में ।
ताराओं से पुता हुआ नीरव अनंत चिर अवनत ऊपर
कौन गहन के अवगुण्ठन से झांक रहा वह हँस हँस भू पर ?
इस धरती के उर में है उस शशि मुख का असीम सम्मोहन,
रोक नहीं पाते भू के तट जीवन वारिधि का उद्वेलन ।
किस अदम्य आकांक्षा से अंतरतम जग का रे आंदोलित,
किसकी गति से भ्रमित महा नीलिमा बन गयी कसे ज्योतित ।
यह अगाध निस्तल रहस्य किसका अकूल में व्याप्त नील घन,
तड़क रही जिसमें विद्युत सी विश्व कामना भर गुरु गर्जन ।
क्यों प्राणों से हरित धरित्री किस सुख से जीवन अणु स्पंदित ?
किसकी शुभ्र किरण यह सहसा सतरँग इंद्र धनुष में चित्रित ।

लौट लौट आते तट छूकर वाद विवाद शास्त्र षड् दर्शन,
सतत डूबते उतराते सुख दुख इच्छाएँ जन्म औ' मरण !
श्याम, विश्व घनश्याम, गहन घनश्याम रहस्य अनन्त चिरन्तन,
चिर अनादि अज्ञेय, पार जा पाते नहीं चक्षु वाणी मन !

स्वर्णिम पराग

[मन]

स्वर्णिम पराग, स्वर्णिम पराग !
यह उड़ता सुमनों के मन में,
जीवन का स्वर्ण हास्य बन के,
छा जाता भू-नभ पर छन के,
रँग रँग भावों का मधुर राग !
पीली लौ-सी अलकें कुंचित,
करती मन प्राणों को पुलकित,
सौरभ से अग जग समुच्छ्वसित,
इसके रोओं में भरी आग !
यह रे हिरण्य का अवगुण्ठन,
चेतना ढँके जिससे आनन,
दिशि दिशि में इसकी स्वर्ण किरण
बरसाती श्री सुषमा सुहाग !
यह स्वर्ग प्रीति मधु से गर्भित,
चिर मर्म कामना से सुरभित
प्राणों के बल सुख से गुंजित,
मद को पी गाते जन विहाग !
भीतर बाहर इससे रंजित,
इसकी रज से जीवन निर्मित,
कुसुम के स्पर्शों से मोहित
खेलते चराचर प्रणय फाग !

ऊषा

[मन स्वर्ग]

(१)

लो, वह आयी विश्वोदय पर
स्वर्ण कलश वक्षोजों पर धर !
अध विमत कर ज्योति द्वार पट,
ज्वलित रश्मियों की अंजलि भर !
वह पवित्रता सी अभिषेकित
सद्य स्फुट शोभा में आवृत,

आयी अरुणोदय मंदिर मे
पथ प्रकाश का करने विस्तत ।
आनन म लावण्य अगुण्ठित,
प्रीति दष्टि आलोक से स्तिमित,
दिव्य चेतना की ऊषा वह
अधर पल्लवो म प्रभात स्मित ।
ज्योति नीड के विहग जगे, गाते नव जीवन मगल,
रजत घण्टियाँ बजी अनिल म, ताली देते तरुदल ।
चूम विकच नलिनी उर, गूजे गीत पख मधुकर दल,
नृत्य तरगित बहे स्रोत, ज्यो मुखरित भू पग पायल ।
विहँसे हिमकण किरण गभ, स्वर्गिक जीवन के-से क्षण,
खोल तणो के पुलक पख उडने को भू के रज कण ।
खिसका वसुधा के उरोज शिखरो से चल मलयाचल,
सरिता की जाघो स सरका लहरा रेशम सा जल ।
स्वग विभा धरती को छू हो उठी सुरजित
ज्योति तमस मिल हुए विश्व द्वाभा मे विकसित ।
शुभ्र चेतना हँसी हृदय के रागा मे स्मित
जीवन के वैभव से हुई, धरा रज कुसुमित ।
रग चपल पुष्प हास पख खोल भूमि म त
मध गुजरित, पिकी रटित जगा नवल वसत ।
नव प्रवाल प्रज्वलित श्वसित रजत हरित दिगत
गीत गध मधु मरद हिम ग्रथित समीर मद ।
अमद रहस गीत नृत्य नाद स दिशा ध्वनित,
अनत नीलिमा सजन तरग भगिमा गलित ।
अबाध कामना मथित समुद्र वारि उच्छवसित,
अलघ्य शैल श्रृग मौन चिन्न शाति म जडित ।
कुजो के कम्पित भूतल पर
ढँक रजत हरित जाली स तन
छाया की बाँहो मे आतप
अँगडाता स्वप्नो से उमन ।
श्लथ कर कचुक की पखडियाँ
कलियो के नव उर कर विकसित
फूलो पर कँपता मलयानिल
स्वर्णिम मरद रज से सुरभित ।
लहरो से लिपट रही लहरें
तरुओ से लतिकाए कोमल
भू रज पर लोट रही किरणें
तरुदल को चूम रहे तरुदल ।
स्वण रजत की धूलि, भरा रे निखिल दिगतर,
मनश्चेतना चूण उड रहा हो ज्या भास्वर ।
दिय उपा के मनोहास्य से दिशि आलोकित,
सूक्ष्म सष्टि नीहार सजन सुख से आदोलित ।

नव प्रवाल लाली में गुण्ठित
छुईमुई - सी लज्जा कोमल,
मसृण जलद में शशि छाया - सी
आ जा, दिपती छिपती प्रतिपल!
अधरों पर भरती मृदु मर्मर,
कँपते गालों में स्वर्णिम सर,
स्वर्ग विभा रज तन को छूकर
खिलती सकुचाती क्षण क्षण पर!

व्रीडा दौड़ी भू पर आ ऊषा के मुख पर
प्रणय रुधिर से हृदय शिराएँ काँपी थर् थर!
अधर पल्लवों में जागा मधु स्वर्णिम मर्मर,
मौन मुकुल मुख खिला लालिमा से रँग सुन्दर!
क्या था गिरि कुंजों में, सरित तटों में गोपन,
लिपटी मम मधुर लज्जा में जो अमर किरण!
सलज किसलयों का धर आनन पर अवगुण्ठन
स्वर्ग चेतना बनी लाज मदिरा पी मोहन!
नवल उरोज सरोज हुए सरसी के दोलित,
लहरों का आँचल दे वह तन करती आवृत,
अमिट कामना स्पर्श दत्त षट्पद शत स्वर गुंजित
उड़ते, ईषत् नव कलियों का मुख कर चुम्बित!

रत्नच्छाया में ज्यों परिवृत
आयी सज्जा चरण धर रंजित,
मणि मुक्ताओं के कर इंगित
स्वर्ण रजत सुषमा में झंकृत!
पुष्प पंखड़ियों के शत रँग पर,
तुहिन तरल नख, नव पल्लव कर,
धरती पग कुछ नभ कुछ भू पर
इन्द्रधनुष प्रति रजकण में भर!

हिमा तापसी को नव कलियों ने मिल सज्जित,
मधुऋतु के रंगों की चोली से कर वेष्टित!
लिपटी लता पदों से चल अलियों में गुंजित,
स्वर्ण मंजरित कटि काँची झनकी पिक कूजित!

मल्लिका बनी हृदय का हार
स्वर्ण गेंदा श्रुति भूषण स्फार,
कचों में गुँथ बकुल सुकुमार
हँसे कंकण बन हरसिंगार!
यूथिका बनी वलय कोमल
कुमुद उरोजों बीच तरल!
शीश का फूल शिरीष नवल
पदों पर खिल मंजुल पायल!

(२)

जलधि से लहरे चचल प्राण,
खिला सरसिज सा जीवन सार,
हृदय के शत-दल खुले अजान
भाव सुषमा मे रँग सुकुमार।
सलिल पर ज्यो पक्ज के पत्र
चेतना पर जीवन का भार
लगा तिरने, स्वप्नो का छत्र
पद्म सा जगा मनस साकार।
मम मे अमत प्रीति मधुकोष,
दलो मे ध्वनित स्पहा गुजार,
स्वय ज्यो जीवन का परितोष
बना शोभा विकास विस्तार।

अमर चरण रँग हृदय राग से, मरण शील बन,
परम अहम, चेतना बुद्धि बन, तपस से सृजन
करने लगे मनो जीवन का स्वप्नो से घन,
आत्मा का ऐश्वय बाध भावो मे मोहन।
तुहिन कणो का मुकुट पहन आनद बना सुख,
चटुल लहरियो पर चल, किरणो स ढँक स्मित मुख।
स्रोतो मे मोती, तरुदल मे काचन ममर
रजत अँगुलियो मे समीर के पुलक स्पश भर।
हृदय शिराएँ झकृत, पलक निमिष से चचल,
उतरा वह भू पर पकडे शोभा का अचल।
रोम्रो मे विद्युत, श्वासो मे विस्मृति मादन,
मदिर प्रीति की स्वण सुरा का पी सजीवन।
गात्र कनक चम्पक ज्योत्स्ना का, केसर पुलकित,
रजत हस उर के नव इद्र जलद से सवत,
शोभा थी स्वप्नो की कोमलता से कल्पित
स्वण किकिणी स्मिति प्रवाल अधरो पर झकृत।
सीप छटा सा उदर, नाभि मुक्ताफल सी स्मित,
पुष्ट पुलिन जघनो पर चिर लालसा तरगित,
वह लावण्य व्रतति थी कटि तनिमा से दोलित,
प्रीति पाश बाँह पुलको से स्पश प्रलम्बित।
उसे देख, वसुधा के स्वप्नो का जग अपलक
रँग - रँग की पखडियो मे खिल उठा अचानक।
रगो का हँस उठा इद्र सम्मोहन व्यापक,
गूज उठी, कल कूक उठी कामना जग प्रथक।
मधुलिह चुम्बि शिरीष वेणि लेखा शशि आनन,
सुरभि वाष्प के वसन हिमानी धौत कुसुम तन,
आयी प्रीति, पकड प्रतीति का रश्मि-स्पश कर
उर स्पदन से दोलित, आशा के खोले पर।

स्वप्नो का पट बुन उसने, उर रागो से रँग,
जन्म मरण, सुख दुख, विरह मिलन बाँधे सँग सँग।
उदधि उच्छ्वसित, पृथ्वी पुलकित, अपलक उडुगण,
रह अवाक गिरि, किया सभी ने आत्म समर्पण।
प्राणो के स्वप्नालिगन मे बँध वसुधा पर
सृजन-प्राण बन गये स्वय को भूल चराचर।
रक्त सुरा, सगीत बना उर-उर का स्पदन,
पुलको मे पल्लवित हुए उठे जड औ' चेतन।
तुहिन वाष्प के सुरँग जलद से छादित
इन्दु रश्मि के इन्द्रजाल से स्पर्शित,
अध विकच कलिका के उर मे जृम्भित
स्वप्न दिखायी दिया रहस सुख से स्मित।
स्वर्णिम केसर की अलकें थी सुरभित,
अध खुले लोचन रहस्य से विस्मित,
ऊर्मिल सरसी सा उर शशि कर गुम्फित,
इन्द्र धनुष छाया पट से तन आवृत।
सजन प्ररोह हृदय में था चिर गोपन,
मुग्ध कल्पना सँग कर उसने प्रजनन
भरा धरा मे अतुल मनोमय जीवन,
उर-उर मे मधु आकाक्षा का गुजन।
हिम कुन्देन्दु समान कल्पना शोभित
सित सरसिज पर लेटी शशि कर सी स्मित,
धूप छाह रँग तिर अचल मे अगणित
करते थे मानस को रग तरगित।
प्राणो की झकृत तन्त्री कर मे धर
बरसाती उर मे रागो के मधु स्वर,
सुघर इगितो से शोभा पडती झर
मम मधुर नीरव स्मिति से रस निर्झर।
आयी आशा, शशि की रजत तरी पर चढकर,
स्वर्ण हास्य स आलोकित कर मेघो का घर।
गीत स्वप्न से ग्रथित मनोजव के झोले पर,
चपल तडित भ्रू भगो से पुलकित कर अन्तर।
रजत पल्लवो की ज्वाला से वेष्टित प्रिय तन,
उदधि ज्वार पर चढ फेनो पर करती नर्तन।
चिर अधखुले उरोजो पर जलते थे उडुगण,
रजस्राव के अभ्रक से ज्योतित भू रज कण।
शारद चन्द्रिका स्नात मल्लिका सी नव निर्मल
हिम वाष्पो का भीना पट पहने किरणोज्ज्वल,
शैशव की स्मिति सी प्रतीति आयी चिर निश्छल,
भर अनभ्र नीलिमा मौन नयनो मे निस्तल।
स्वर्ग सुधा ला इन्दु रश्मि घट मे हिम जल स्मित
पावन उसने किये हृदय भेदो से पीडित,

दशनों की आशा स्मिति से अंतर कर विगलित,
प्राण किये कोमल मृणाल के तंतु में ग्रथित।
लहरों के पुलिनों से अचपल
जागे धैर्य शौर्य उर सम्बल,
हिम शिखरों से उन्नत अविचल
अन्तर पौरुष से अरुणोज्वल।
रजत स्वर्ण ज्वाला के सुंदर
कर में धरे त्रिशूल अभयंकर,
झंझा लहरों के तुरगों पर
आये वे तम भ्रम के जित्वर।
नभ - से नीरव निस्तल लोचन,
धरती - सा था धीरज का मन,
शौर्य सफल अद्रि - सा शोभन,
छू न सका था जिस वृत्रहन्।
आत्म त्याग,—तप से दीपित तन,
मृत्यु कण्ठ, आपद आभूषण,
प्रकट हुआ, आक्षितिज थे नयन,
ममता घन से शून्य उर गगन।
सेवापगा, विरति शशि मस्तक
थी विनम्रता उर में नत स्रक्,
शांत गहन निशि नभ-सा अपलक,
अथक कर्म रत, भव से अपथक।
सेवा उतरी, ज्यों गंगा जल,
कलुष शपित लहरों से चंचल,
वीतराग तन पर संघ्याचल
नत मुख पर श्रमकण मुक्ताफल।
स्तिमित दृष्टि थी, अधर सहज स्मित
सेवा का वक्षस्थल विस्तृत,
ध्रुव तारा से पथ चिर ज्योतित,
काटों को करती थी कुसुमित।
संग कृतज्ञता थी, सजल नयन,
आकुल अंतर, मूक थे वचन
सुघर कुई सी स्वप्निल चितवन
लिपट व्रतति सी जाती तत्क्षण।
विनत मुकुल सा सुहृद था विनय,
ग्रहण शील चिर निरलस, निर्मय।
वह स्वभाव ही से था सहृदय,
निज अंतर्वैभव में तन्मय।
इंदु बिम्बा ज्यों जलदों से छन
वेला वन में लगती मोहन,
मौन मधुर गरिमा से शोभन
बना शील संस्कृत जग जीवन।

जुगनुओं के ज्योति मण्डल से घिरा मुख शांत
तारिकाओं की सरसि सा स्वप्न स्मित उर प्रांत,
इन्दु विगलित शरद घन सा वाष्प का तन कांत
सजल करुणा थी खड़ी ज्यों इन्द्र धूम दिनांत!
अतल नील अकूल नयनों का द्रवित नीहार,
अश्रु फेनों से स्फुटित स्पंदित उरोज उभार,
आर्द्र सौरभ श्वास, स्मित हिम स्रस्त हरसिंगार,
स्खलित होते स्रोत भू से सुन चरण झंकार!

सहचरी थी क्षमा, गौरव रश्मि चुम्बित भाल,
युग पयोधर थे सुधास्रुत ज्योति कलश विशाल,
न्याय को धर अंक में मुख चूमती थी बाल,
दृष्टि पथ पर पंख खोले शुभ्र रजत मराल!
दीप लौ सी थी अँगुलियाँ वरद कर में स्फार,
चूम अधरों को सुरा बनती सुधा की धार,
स्पर्श पा हँसता पुलक सुख से व्यथा का भार,
मर्त्य से था स्वर्ग तक दृग नीलिमा विस्तार!

आभा देही श्रद्धा अपटी अंतर्लोचन,
उर की सार सुरभि से कल्पित था प्रिय श्री तन!
बरसाती आशीष रश्मि थी स्वर्गिक चितवन,
दिव्य रजत नीहार शांति से मण्डित आनन!
भू प्रदीप की शिखा स्वर्ग की ओर ऊर्ध्वचित
वह निश्चल निष्कम्प, स्तम्भ किरणों की शोभित,
सूक्ष्म चेतना सिन्धु मथन से स्वत प्रस्फुटित,
शुभ्र उषा सी थी उर नभ में उदित अगुण्ठित!

साध भक्ति थी, रोमांचों की स्रक सी पावन,
नयनों के अश्रुओं से झरते थे प्रकाश कण!
अधरों के पुलिनों पर बहता स्मिति का प्लावन,
उर कम्पन में बजते प्रिय पग नूपुर प्रतिक्षण!
तप्त कनक द्युति देह, सहज चन्दन सी वासित,
गैरिक शृंगों से उरोज थे अश्रु माल स्मित,
सित कर्पूर शिखर सी, दिव्य शिखा से दीपित,
सान्ध्य पद्म सा ध्यान मग्न उर प्रिय को अर्पित!
रक्त घनों की दीप गुहा से, दृष्टि कर चकित,
ज्वलित अर्चियों की प्रतिभा, हो तडित सी स्फुरित,
दौड़ी मानस लहरों पर आलोक चमत्कृत,
सुरँग खगों से उडते थे स्वर शब्द कल ध्वनित!

वर्ण वर्ण की गलित विभा से स्रवित कलेवर,
चपल चौकड़ी भरता शशि मृग था प्रिय सहचर!
तिग्म सुरभि सी उड़ती थी मारुत पंखों पर,
दिव्य प्रेरणा किरणों की जाली मुख पर धर!

मुक्ति, सत्य औ' प्रेम अन्त में हुए अवतरित,
सृष्टि पद्म सी मुक्ति हुई दश दिशि में विकसित।
बंधन हीन विविध बंधन में बँधती वह नित,
सूक्ष्म वाष्प से हिम, हिम से बन वाष्प अपरिमित।
मुक्ति पद्म पर धरे, सत्य आलोक के चरण
हँसता था, आनन से उठा हिरण्मय गुण्ठन,
निज पर को ज्यों भूल धरा के जड़ औ चेतन,
सत्य बन गये, स्वयं सत्य था रज का प्रतिकण।
सत्य सुंदर समीप, सत्य था भीतर बाहर,
सत्य एक बहु, सूक्ष्म स्थूल, केवल, क्षर अक्षर।
धरा सत्य थी, सत्य पवन जल पावक अम्बर
सत्य हृदय मन इंद्रिय, सत्य समस्त चराचर।
अकथनीय था सत्य, ज्योति में लिपटा शाश्वत,
अणु से भी लघु देह ज्वलित गिरि शृंग सी महत।
दृष्टि रश्मि थी ज्योति पथिक औ' स्वयं ज्योति पथ,
धावित स्थिर, जाज्वल्यमान चिर सप्त अश्व रथ।
किरणों के दूर्वाप्रभ नभ सी मुक्ति थी अमित
शुभ्र हंस घेरे थे उसको पंख खोल स्मित।
था अकूल आनंद उदधि उर में उद्वेलित,
ज्योति चूर्ण झरता अंगों से मुक्त अनावृत।
तरुण सत्य के अध विवृत जघनों पर शिर धर
लेटी थी वह दामिनि सी रुचि गौर कलेवर,
गगन मग्न-मे लहराये मृदु कच अंगों पर,
वक्षोजों के तुले घटों पर लसित सत्य कर।
समाधिस्थ था प्रेम, सत्य आरूढ़ निरंतर,
धरे अंक में भू को, सुर जल स्रोत शीष पर,
ताप गले में, सुधा शांति मस्तक पर भास्वर,
लिपटा तन से भाव विभूति, अभाव भोगधर।
देश काल सदसद् से पर, त्रिक तप शूल धर
देवों का पोषक था वह, दैत्यों का जित्वर,
काम क्रोध मद मत्सर थे उसके पद अनुचर,
वह स्वर्णाभ किरणों से मण्डित, पाप तमस हर।
इस प्रकार चिर स्वर्ग चेतना हुई प्रतिष्ठित
जीवन शतदल पर, मन के देवों से पूजित।
जड़ धरणी के ताप शाप दुख दैन्य अपरिमित
नाकों से पर खोल, हुए लय तमस में अचित्।

चन्द्रोदय

वह सोने का चाँद उगा ज्योतिर्मय मन सा,
सुरँग मेघ अवगुण्ठन से आभा आनन सा।

जुगनुओं के ज्योति मण्डल से घिरा मुख शान्त
तारिकाओं की सरसि सा स्वप्न स्मित उर प्रान्त,
इन्दु विगलित शरद घन सा वाष्प का तन कान्त
सजल करुणा थी खड़ी ज्यों इन्द्र धनु दिनान्त।
अतल नील अकूल नयनों का द्रवित नीहार,
अश्रु फेनों से स्फुटित स्पंदित उरोज उभार,
आर्द्र सौरभ श्वास, म्लिन हिम-स्रस्त हरसिंगार,
स्खलित होते स्रोत भू से सुन चरण झंकार।

सहचरी थी क्षमा, गौरव रश्मि चुम्बित भाल,
युग पयोधर थे सुधास्रुत ज्योति कलश विशाल,
न्याय को धर अंक में मुख चूमती थी बाल,
दृष्टि पथ पर पंख खोले शुभ्र रजत मराल।
दीप लौ सी थीं अँगुलियाँ वरद कर में स्फार,
चूम अधरों को सुरा बनती सुधा की धार,
स्पर्श पा हँसता पुलक सुख से व्यथा का भार,
मर्त्य से था स्वर्ग तक दृग नीलिमा विस्तार।

आभा देही श्रद्धा प्रकटी अन्तर्लोचन,
उर की सार सुरभि से कल्पित था प्रिय-श्री तन।
बरसाती आशीष रश्मि थी स्वर्गिक चितवन,
दिव्य रजत नीहार शान्ति से मण्डित आनन।
भू प्रदीप की शिखा स्वर्ग की ओर ऊर्ध्वचित
वह निश्चल निष्कम्प, स्तम्भ किरणों की शासित,
सूक्ष्म चेतना सिंधु मथन से स्वत प्रस्फुटित,
शुभ्र उषा सी थी उर नभ में उदित अगुण्ठित।

साथ भक्ति थी, रोमांचों की स्रक सी पावन,
नयनों के अश्रुओं से झरते थे प्रकाश कण।
अधरों के पुलिनों पर बहता स्मिति का प्लावन,
उर कम्पन में बजते प्रिय पग नूपुर प्रतिक्षण।
तप्त कनक द्युति देह, सहज चन्दन सी वासित,
गैरिक शृंगों से उरोज थे अश्रु माल स्मित,
सित कर्पूर शिखर-सी, दिव्य शिखा स दीपित,
साध्य पद्म सा ध्यान मग्न उर प्रिय को अर्पित।
रक्त घनों की दीप गुहा से, दृष्टि कर चकित
ज्वलित अर्चियों की प्रतिभा, हो तड़ित सी स्फुरित,
दौड़ी मानस लहरों पर आलोक चमत्कृत,
सुरँग खगा से उड़ते थे स्वर शब्द कल ध्वनित।

वर्ण वर्ण की गलित विभा से स्रवित कलेवर,
चपल चौकड़ी भरता शशि मृग था प्रिय सहचर।
तिग्म सुरभि सो उड़ती थी मारुत पंखों पर
दिव्य प्रेरणा किरणों की जाली मुख पर धर।

मुक्ति, सत्य औ' श्रेय अन्त मे हुए अवतरित,
सष्टि पद्म सी मुक्ति हुई दश दिशि मे विकसित।
बन्धन हीन विविध बन्धन मे बँधती वह नित,
सूक्ष्म वाष्प से हिम, हिम स बन वाष्प अपरिमित।

मुक्ति पद्म पर धरे, सत्य आलोक के चरण
हँसता था, आनन से उठा हिरण्मय गुण्ठन,
निज पर को ज्यो भूल धरा के जड औ चेतन,
सत्य बन गये, स्वय सत्य था रज का प्रतिक्षण।

सत्य सुदूर समीप, सत्य था भीतर बाहर,
सत्य एक बहु, सूक्ष्म स्थूल, केवल, क्षर अक्षर।
धरा सत्य थी, सत्य पवन जल पावक अम्बर,
सत्य हृदय मन इन्द्रिय, सत्य समस्त चराचर।

अकथनीय था सत्य, ज्योति मे लिपटा शाश्वत,
अणु से भी लघु देह ज्वलित गिरि शृग सी महत।
दष्टि रश्मि थी ज्योति पथिक औ' स्वय ज्योति पथ,
धावित स्थिर, जाज्वल्यमान चिर सप्त अश्व रथ।

किरणो के दूर्वाप्रभ नभ सी मुक्ति थी अमित
शुभ्र हस घेरे थे उसको पख खोल स्मित।
था अकूल आनन्द उदधि उर मे उद्वेलित
ज्योति चूण झरता अगो से मुक्त अनावत।

तरुण सत्य के अध विवत जघनो पर शिर धर
लेटी थी वह दामिनि सी रुचि गौर कलेवर,
गगन मग मे लहराये मृदु कच अगो पर,
वक्षोजो के खुले घटो पर लसित सत्य कर।

समाधिस्थ था श्रेय, सत्य आरूढ निरन्तर
धरे अक मे भू मा, सुर जल स्रोत शीष पर,
ताप गल मे, सुधा शान्ति मस्तक पर भास्वर
लिपटा तन से भाव विभूति, अभाव भोगधर।

देश काल सदसद् से पर, त्रिक तप शूल धर
देवो का पोषक था वह, दैत्यो का जित्वर,
काम क्रोध मद मत्सर थे उसके पद अनुचर,
वह स्वर्णिम किरणो से मण्डित, पाप तमस हर।

इस प्रकार चिर स्वग चेतना हुई प्रतिष्ठित
जीवन शतदल पर, मन के दवो से मूपित।
जड धरणी के ताप शाप दुख दैन्य अपरिमित
काको से पर खोल हुए लय तमस मे अचित।

चन्द्रोदय

वह सोते का चाद उगा ज्योतिमय मन सा,
सुरँग मेघ अवगुण्ठन से आभा आनन सा।

जुगनुओ के ज्योति मण्डल से घिरा मुख कान्त
तारिकाओ की सरसि सा स्वप्न स्मित उर प्रान्त,
इन्दु विगलित शरद घन-सा वाष्प का तन कान्त
सजल करुणा थी खडी ज्यो इन्द्र धूम दिनान्त।
अतल नील अकूल नयनो का द्रवित नीहार,
अश्रु फेनो से स्फुटित स्पंदित उरोज उभार,
आर्द्र सौरभ श्वास, स्मित हिम स्रस्त हर्रसिंगार,
स्खलित होत स्रोत भू से सुन चरण झकार।

सहचरी थी क्षमा, गौरव रश्मि चुम्बित भाल,
युग पयोधर थे सुधास्रुत ज्योति कलश विशाल,
न्याय को धर अक मे मुख चूमती थी बाल
दृष्टि पथ पर पख खोले शुभ्र रजत मराल।
दीप लौ सी थी अँगुलियाँ वरद कर मे स्फार,
चूम अधरो को सुरा बनती सुधा की धार,
स्पर्श पा हँसता पुलक सुख से व्यथा का भार,
मत्य से था स्वर्ग तक दग नीलिमा विस्तार।

आभा देही श्रद्धा प्रकटी अन्तर्लोचन,
उर की सार सुरभि से कल्पित था प्रिय श्री तन।
बरसाती आशीष रश्मि थी स्वर्गिक चितवन,
दिव्य रजत नीहार शान्ति से मण्डित आनन।
भू प्रदीप की शिखा स्वग की ओर ऊर्ध्वचित
वह निश्चल निष्कम्प, स्तम्भ किरणो की शोभित,
सूक्ष्म चेतना सिन्धु मथन से स्वत प्रस्फुटित,
शुभ्र उषा सी थी उर नभ मे उदित अगुण्ठित।

साथ भक्ति थी, रोमाचो की स्रक् सी पावन,
नयना के अश्रो से झरते थे प्रकाश कण।
अधरो के पुलिनो पर बहता स्मिति का प्लावन,
उर कम्पन मे बजते प्रिय पग नूपुर प्रतिक्षण।
तप्त कनक द्युति देह, सहज चन्दन सी वासित,
गैरिक शृगो से उरोज थे अश्रु माल स्मित,
सित कपूर निर्धूम-सी, दिव्य शिखा से दीपित,
सान्ध्य पद्म सा ध्यान मग्न उर प्रिय को अर्पित।
रक्त घना की दीप गुहा से, दृष्टि कर चकित
ज्वलित अर्चियो की प्रतिभा, हो तडित सी स्फुरित,
दौडी मानस लहरो पर आलोक चमत्कृत,
सुरग खगा से उडते थे स्वर शब्द कल ध्वनित।

वण वण की गलित विभा से स्रवित कलेवर,
चपल चौकडी भरता शशि मग था प्रिय सहचर।
निगम सुरभि सी उडती थी मारुत पखो पर,
दिव्य प्रेरणा किरणो की जाली मुख पर धर।

मुक्ति, सत्य औ' श्रेय अन्त में हुए अवतरित,
सृष्टि पद्म सी मुक्ति हुई दश दिशि में विकसित।
बंधन हीन विविध बंधन में बँधती वह नित,
सूक्ष्म वाष्प से हिम, हिम से बन वाष्प अपरिमित।

मुक्ति पद्म पर धरे, सत्य आलोक के चरण
हँसता-सा था, आनन से उठा हिरण्मय गुण्ठन,
निज पर को ज्यों भूल धरा के जड़ औ' चेतन,
सत्य बन गये, स्वयं सत्य था रज का प्रतिकण।

सत्य सुदूर समीप, सत्य था भीतर बाहर,
सत्य एक बहु, सूक्ष्म स्थूल, केवल, क्षर अक्षर।
धरा सत्य थी, सत्य पवन जल पावक अम्बर,
सत्य हृदय मन इंद्रिय, सत्य समस्त चराचर।

अकथनीय था सत्य, ज्योति में लिपटा शाश्वत,
अणु से भी लघु देह ज्वलित गिरि शृंग सी महत्।
दृष्टि रश्मि थी ज्योति पथिक औ' स्वयं ज्योति पथ,
धावित स्थिर, जाज्वल्यमान चिर सप्त अश्व रथ।

किरणों के दुर्वाप्रभ नभ सी मुक्ति थी अमित
शुभ्र हंस घेरे थे उसको पंख खोल स्मित।
था अकूल आनन्द उदधि उर में उद्वेलित,
ज्योति चूर्ण झरता अंगों से मुक्त अनावृत।

तरुण सत्य के अंध विवृत जघनों पर गिर धर
लेटी थी वह दामिनि सी रुचि गौर कलेवर,
गगन मग्न से लहराये मृदु कच अंगों पर,
वक्षोजों के खुले घटों पर लसित सत्य कर।

समाधिस्थ था श्रेय, सत्य आरूढ़ निरन्तर,
धरे अंक में मुक्ति को, सुर जल स्नात शीश पर,
ताप गल में, सुधा शांति मस्तक पर भास्वर
लिपटा तन से भाव विभूति, अभाव भोगधर।

देश काल सदसद् से पर, त्रिक् तप शूल धर
देवों का पोषक था वह, दैत्यों का जित्वर,
काम क्रोध मद मत्सर थे उसके पद अनुचर,
वह स्वर्णिम किरणों से मण्डित, पाप तमस हर।

इस प्रकार चिर स्वर्ग चेतना हुई प्रतिष्ठित
जीवन शतदल पर मन में देवों से पूजित।
जड़ धरणी के ताप पाप दुःख दैन्य अपरिमित
कार्यों से पर स्नात, हुए लय तमस में प्रचित्।

चन्द्रोदय

वह सोते का चाँद उगा ज्योतिर्मय मन सा
सुरँग मेघ अवगुण्ठन से आभा आनन सा।

उज्ज्वल गलित हिरण्य बरसता उससे झर-झर,
भावी के स्वप्नों से धरती को विजड़ित कर।

दीपित उससे अन्तरिक्ष पर मेघों का घर,
वह प्रकाश था कब से भीतर नयन अगोचर।
इन्दु स्रोत से ही रस स्रवित निभृत अभ्यन्तर,
प्राणों की आकांक्षा के वैभव से सुन्दर।

वह प्रकाश का बिम्ब मोहता मानव का मन,
स्वप्नों से रंजित करता भू का तमिस्र घन।
आत्मा का पूषण वह, मनसोजात चन्द्रमस
जिसमें चिर आन्दोलित जग जीवन का अम्भस्।

देव लोक मेखला, इन्दु पूषण का अन्तर,
सृजन शक्तियाँ देव, इन्द्र है जिनका ईश्वर।
दिव्य मनस वह निखिल विश्व का करता चालन,
पोषित उससे अन्न प्राण मन का जग जीवन।

वह सोने का चाँद उठा ज्योतित अधिमन सा,
मानस के अवगुण्ठन के भीतर पूषण सा।
दुग्ध धार सी दिव्य चेतना बरसा झर झर।
स्वप्न जड़ित करता वह भू को स्वर्जीवन भर।

द्वा सुपर्णा

दो पक्षी हैं सहज सखा, संयुक्त निरन्तर,
दोनों ही बैठे अनादि से उसी वृक्ष पर।
एक ले रहा पिप्पल फल का स्वाद प्रतिक्षण,
बिना अशन दूसरा देखता अन्तर्लोचन।
दो सुहृदों से मर्त्य अमर्त्य सयोनिज होकर।
भोगेच्छा से ग्रसित भटकते नीचे ऊपर,
सदा साथ रह, लोक लोक में करते विचरण
ज्ञात मर्त्य सबको, अज्ञात अमर्त्य चिरन्तन।

कहीं नहीं क्या पक्षी? जो चखता जीवन फल,
विश्व वृक्ष पर नीड़ देखता भी है निश्चल।
परम ब्रह्म औ' द्रष्टा भोक्ता जिसमें सँग सँग,
पंखों में बहिरन्तर के सब रजत स्वर्ण रँग।
ऐसा पक्षी, जिसमें हो सम्पूर्ण सन्तुलन,
मानव बन सकता है, निर्मित कर तरु जीवन।
मानवीय संस्कृति रच भू पर शाश्वत शोभन
बहिरन्तर जीवन विकास की जीवित दर्पण।

भीतर बाहर एक सत्य के रे सुपर्ण द्वय,
जीवन सफल उड़ान, पक्ष सन्तुलन जो, विजय।

व्यक्ति और विश्व

यह नीला आकाश न केवल,
केवल अनिल न चचल,
इनमे चिर आनद भरा
मेरी आत्मा का उज्ज्वल।
हलकी गहरी छाया के जो
घिरते ये रँग-बादल,
मेरी आकाक्षा की विद्युत्
बहती इनमे प्रतिपल।
मेरी प्राणो की श्यामलता
तृण तरु दल मे पुलकित,
मेरे उर की प्रणय भावना
कलि कुसुमो म रजित।
मैं इस जग मे नही अकेला
मुझको तनिक न सशय,
वही चाह है कण-कण मे
जो मेरे उर मे निश्चय।
मेरे भीतर परिभ्रमित ग्रह,
उदित अस्त शशि दिनकर,
मैं हूँ सब से एक, एक रे
मुझसे निखिल चराचर।
कब से हो जग से वियुक्त
मेरा अतर था पीडित,
आज खडा भाई बहिनो के
सँग मैं चिर आनदित।

प्रभात का चाँद

नील पक मे धँसा अश जिसका
उस श्वेत कमल सा शोभन
नभोनीलिमा मे प्रभात का
चाँद उनीदा हरता लोचन।
इसमे वह न निशा की आभा,
दुग्ध फेन सा यह नव कोमल,
मानवीय लगता नयनो को
स्नेह पक्व सकरुण मुख मण्डल।

तिरते उजले बादल नभ मे
बेला कलियो से कुम्हलाये,
उडता सँग सँग नाग दत सा
चाँद सीप मे पर फैलाये।

आभा इसकी हुई अंतरित ˉ
यह शशि मानो भू का वासी,
यह आलोक मनस है, मुख पर
जीवन श्रम की भरी उदासी!

दिव्य भले लगता हो किरणों
से मण्डित निशिपति का आनन,
गौर मास का सा यह शशि मुख
भाता मुझको ज्योति प्राण मन!

उदित हो रहा भू के नभ पर
स्वर्ण चेतना का नव दिनकर
आज सुहाते भू जीवन के
पावन श्रमकण मानव मुख पर!
ऐसे ही परिणत आनन सा
यह विनम्र विधु हरता लोचन,
भू के श्रम से सिक्त नम्र
मानव के शारद मुख सा शोभन!

हरीतिमा

(प्राण)

ओ हरित भरित घन अंधकार!

तृण तरुओं में हँस हँस श्यामल
दूर्वा से भू को भर कोमल,
ढँक लेते जीवन को प्रतिपल
तुम प्राणों का अचल पसार!

सुख स्पर्शों से अणु अणु पुलकित,
मादकता से उर उर स्पंदित,
गति जव से श्वास अनिल नर्तित,
नित रंग प्राण करते विहार!

तुम प्राणोदधि चिर उद्वेलित
जीवन पुलिनों को कर प्लावित,
जड़ चेतन को करते विकसित
अग जग में भर नव हर्षित ज्वार!

तुममें स्वप्नों का सम्मोहन
आकांक्षा की मदिरा मादन,
आवेगों का मधु संघर्षण,
दुर्धर प्रवाह गति, रव, प्रसार!

जग जीवन को कर परिशोभित,
इच्छाओं के स्तर स्तर हर्षित,
रागो द्वेषो से चिर मर्षित,
निस्तल अकूल तुम दुर्निवार!
ओ रागांचित हरितांधकार!

छाया पट

मन जलता है,
अंधकार का क्षण जलता है,
मन जलता है!

मेरा मन तन बन जाता है,
तन का मन फिर कटकर,
छँटकर,
कन कन ऊपर
उठ पाता है!
मेरा मन तन बन जाता है!

तन के मन, के श्रवण नयन हैं,
जीवन से सम्बन्ध गहन हैं,
कुछ पहचान, कुछ गोपन हैं,
जो सुख दुख के संवदन हैं!
मन यह उड़ जग में छा जाता,
जीवन की रज लिपटा लाता,
फिर मेरे चेतना गगन में
इन्द्रधनुष घन बन मुसकाता?
नहीं जानता कब कैसे फिर
यह प्रकाश किरणें बरसाता!
बाहर भीतर ऊपर नीचे
मेरा मन जाता आता है,
सब व्यक्ति बनता जाता है!

तन के मन में कहीं-अंतरित
आत्मा का मन है चिर ज्योतित,
इन छाया दृश्यों को जो
निज आभा से कर देता जीवित!

यह आदान प्रदान मुझे
जाने कैसे क्या सिखलाता है!
क्या है ज्ञेय? कौन ज्ञाता है?
मन भीतर बाहर जाता है!

मन जलता है
मन में तन में रण चलता है,

चेतन अवचेतन नित नव
परिवर्तन में ढलता है!
मन जलता है!

आवाहन

सृजन करो नूतन मन!
खोल सके जो ग्रंथि 'हृदय की,
उठा सके संशय गुण्ठन,
झाँक सके जो सूक्ष्म नयन से
जीवन का सौंदर्य गहन!
भेद सके जो दैन्य, दुरित, तम,
मृत्यु, अविद्या के भीतर,
जहाँ प्रेम आशा शोभा
अमरत्व प्रतिष्ठित हैं प्रतिक्षण!

युग युग से तप ध्यान साधना
करता मानव, हे ईश्वर,
मुझे स्वर्ग दो, मुझे मुक्ति दो,
बान्धव पुत्र पौत्र स्त्री धन!
जाति प्रेम हित, धर्म क्षेम हित,
वंश वृद्धि के हेतु अमर
युग युग से रोया गाया है
पार्थिव मानव देहज मन!

सृजन करो नूतन मन!
प्रार्थी आज मनुज आत्मज मन
नव्य चेतना का भूपर,
जिसकी स्वर्णिम आभा में नव
विकसित हो संस्कृत जीवन!
प्रार्थी आज निखिल मानवता,
उठे मृत्यु से वह ऊपर,
स्वर्ण शान्ति में ऐक्य मुक्ति का,
भू पर स्वर्ग उठे शोभन!

निवेदन

रँग दो मेरे उर का अंचल!
युग युग के आँसू से गीला
मेरा स्नेही का अंतस्तल!
कितनी आशंका भय, आशा
ग्लानि पराभव औ' अभिलाषा,
कितने स्वप्न—मूक है भाषा!
मेरे इन प्राणों में कोमल!

जीवन का चिर भरा कल्पना,
सुख का तपना, दुख का तपना
भग करो मत सपना अपना,
केवल मन को दो अदम्य बल !

सब खोकर भी मैंने पाया,
तुमको जो उर मे उलझाया,
ममता की अवगुण्ठन छाया
रहने दो निज मुख पर उज्ज्वल !

मैं न थकूगा हो अनन्त पथ,
जरा मृत्यु से तन मन लथपथ,
ज्ञात न हो जीवन का इति अथ,
चिर प्रतीति का दो पथ सम्बल !

भू लता

घने कुहासे के भीतर लतिका दी एक दिखायी,
आधी थी फूलो मे पुलकित, आधी वह कुम्हलायी !
एक डाल पर गाती थी पिक मधुर प्रणय के गायन,
मकडी के जाले मे बन्दी अपर डाल का जीवन !

इधर हरे पत्ते यात्री को देते ममर छाया,
उधर खडी ककाल मात्र सूनी डालो की काया !
विहगों के थे गीत नीड, कृमि कुल का ककश क्रन्दन,
मैं विस्मय से मूढ, सोचता था क्या इसका कारण !

बोली गुजित हरित डाल, सामें भर सूखी टहनी,
मैं हूँ भाग्य लता अदृष्ट, मैं सभी काल की बहनी !
सुख दुख की मैं धूपछाँह-सी भव कानन म छायी,
आधे मुख पर मधुर हँसी, आधे पर करुण रुलायी !

शूल फूल की बीथी, चलता जिसमे रोना गाना,
खोज खोज सब हार गये, मुझको न किसी ने जाना !
मैंने भी ढूढा, पर मुझको मूल न दिया दिखायी,
वह आकाश लता सी जीवन पादप पर थी छायी !

जन मन के विश्वासो स बढती थी वह हो सिंचित,
एक दूसरे-से लिपटे थे, जिसस थी वह जीवित !
सब मिल उसको छिन्न भिन्न कर सकते थे यह निश्चित,
किन्तु उसी के बल पर रे मानव मानव से शोषित !

नाच रही जो ज्योति ज्योति पिण्डो म वैभव भास्वर,
कहती वह, यह छाया मेरी नही, तुम्हारी भू पर !
छोडो युग युग का छाया मन, वरो ज्योति मन भव जन
प्राक्तन जीवन बना भाग्य, चेतना मुक्त हो नूतन !

कौवे के प्रति

तरु की नग्न डाल पर बैठे लगते तुम चिर सुंदर,
कोविदार के शकुनि, पार्श्वमुख, साध्य कपिश नभ पट पर।
कृष्ण कुहू मे जनमे तुम तरु कोटर मे, वन नभचर,
तारो की ज्यो छाँह गले पड गयी नीड से छन कर।

पखो की काली उडान तुम भरते नित ऋजु कुंचित,
शुभ्र ज्योति का तुम पर कभी प्रभाव न पडता किंचित।
रग नही चढता जिस पर वह यती व्रती है निश्चित,
समित पाणि मे प्रश्न पूछता तुमको मान विपश्चित।

तुम भविष्य वक्ता जग विश्रुत, प्रणय दूत कवि कीर्तित,
मढवा चुके चोच सोने से फिर फिर प्रीति पुरस्कृत।
क्या है जग के दुरित दैन्य का कारण? खग, दो उत्तर,
कलुष कालिमा की होगी कालिमा तुम्हारी सहचर।

मत्री वृद्ध तुम्हारे कौशिक दिवाभीत चमगादर,
जाग्रत रहते मूत निशा मे तरु सवी तापस वर।
गरदन मटका हिला करट, कुछ विस्मित, कुछ चिन्तापर,
एक चक्षु को पलट, दूसरे लोचन पुट मे सत्वर।

मैने कहा, मुखर मायी, क्या तुमको कहने म डर?
यह महत्व का प्रश्न, लोक जीवन है इस पर निर्भर।
काँव-काँव कर कहा काक ने ग्राम्य भणिति म निश्चय,
काम, काम है तापो का कारण, था उसका आशय।

मैने पूछा, मोह काम से पीडित जग नि सशय,
किन्तु कौन पा सकता, बलिभुज्! अमिट कामना पर जय?
पक्षपात कर उडा विहग, काले प्रकाश से भर मन,
समाधान मेरी शका का उस तम मे था गोपन।

पक्षपात है नाम कामना का, जो दुख की कारण,
उज्ज्वल सभी प्रकाश नही रे, काला नही सभी तम।
हस प्रकाश के शिखी पिच्छ से रूप अनेक मनोहर,
जिनमे लिप्त मनुज मन रहता लाभ स्वार्थ हित तत्पर।
अधकार के रूप विविध, घनश्याम इंद्रधनु जलधर
उर्वर रखते भू को, मादक काली कोयल के स्वर।

ज्योति हस औ' तमस काक इन दोनो से जो है पर
उसी सवगत पर जो केंद्रित रहे मनुज का अन्तर,
हस रहे जग मे मयूर औ' वायस रह परस्पर।
सब के साथ अपाप विद्ध, स्थित प्रज्ञ रहे जग मे नर।

श्वेत कृष्ण मिल, रग पूर्ण नित धरे जगत जीवन पट
पक्षपात से रहित मनुज हो विरत, विश्व मे भी रत।
किया हृदय ने ज्योति श्याम परमत का मन म स्वागत,
दीप तल मे तम के छाया खग, तुम दीप शिखावत्।

सक्रमण

खो गया, जीवन रस,
रहस स्पर्श,
सृजन का मुक्त रभस
निखिल हृप।

रह गया इतिहास, विज्ञान
दर्शन, सहस्र शास्त्र,
सभ्यता के ब्रह्मास्त्र।
खो गयी एकता,
व्याप्त है अनेकता।
रह गयी जाति पाँति,
देश प्रान्त,
युगों की रीति नीति,
रूढ़ि भ्रान्त,
स्वर्ग नरक ईति भीति,
जन अशान्त।

खो गयी मानवता,
खो गयी वसुधरा।
नहीं सत्य सहृदयता
नहीं मही विश्वम्भरा।
आओ हे नव नूतन,
स्वर्ण युग करो सृजन।
एक हो भू के जन
नव्य चेतना के कण।

देशों से धरा निखरे
जुड़ें मनुज उर बिखरे।
दृष्टि सौंदर्य जड़ित
अधर हो हृदय स्मित।
आत्मा आये सम्मुख,
महिमान्वित मानव मुख।
आओ हे नव नूतन।
मानव हो भू के जन।

नारी पथ

कितने रेखा स्मिति अधर
प्रथम मधु पल्लव के,
प्रणय रुधिर रँगे अधर
करते मृदु मर्मर।
चपल मौन मुखर नयन
पद्म नील स्नेह सर के

मुग्ध नयन प्रीति किरण
करते शत वपण !

कितनी वेणियाँ लोल
लोटती पीठो पर,
खुली बँधी फूल गुँथी
सुरभित तम निर्झर !
नवल मुकुल सृष्टि अग,
चकित मृगी ग्रीव मग,
पुष्प शिखर - से उरोज,
चारु हस, छबि सरोज,
रूप की प्ररोह बाँह
प्राण कामना प्रवाह,

सचमुच,—
एक अगना से सुभग
लगता अगो का जग,
शोभा सरसिज पग !
सौ - सौ उगते शशि मुख
देते आँखो को सुख,
मिटा मोह निशा दुख !

ममता अधिकार नही,
मोह तिरस्कार नही,
चुम्बन या परिरम्भण !
केवल प्रतीति प्राण
हृदयो का प्रीति दान,
युवती युवक समान !

अवयव कुवलयित सष्टि,—
निर्निमेष मुग्ध दृष्टि !—
जिस पर मानव भविष्य
करता नव किरण वष्टि !

नील धार

(विश्व यमुना)

ओ नीलधार, अति दुर्निवार !
रवि शशि से स्वण रजत चुम्बित,
जीवन के स्वप्नो से स्पदित,
तुम गलित नीलिमा सी बहती
आकाक्षा का हर अधकार !
प्राणो के सुख से आदोलित,
चिर रभस कामना से मुखरित
युग युग की विश्व चेतना तुम,
उच्छवसित उरोजों का उभार !

फेनो के क्षण कर स्वप्न ग्रथित,
दिशि के तट जीवन से प्लावित,
तुम अतल अकूल तरंगित नित
ज्यो स्वर्ग मर्त्य के आर-पार !
ऋजु कुंचित जग जीवन का मग,
पर ऊर्ध्व विषम सम नर्तित पग,
नभ की हर कान्ति, मरुत का जव,
भू पर करती प्रणयाभिसार !
जीवन के रागो से रंजित,
चिर गूढ़ स्पृहाओं से मथित,
अकथित अंतर आवेगो का
उद्वेलित तुम मे मम भार !
असफल आशाओं से पा बल,
स्तम्भित अभिलाषा से चंचल,
तुम हृदय ग्रंथियो की प्रवाह
संवेदन शील, द्रवित अपार !
सद असद तुम्हारे है दो तट,
तुम ज्योति तमस की जीवन पट,
दुख-सुख मे रो हँस, सुख दुख को
मज्जित करते गति मे प्रसार !
गंगा की दुग्ध धार पावन
तुमसे मिल बनी पूर्ण शोभन
वह प्रभु के श्रीपद से नि:सृत,
तुम विश्व श्याम उर से उदार !
ओ नीलधार, चिर निर्विकार !

युग प्रभात

स्वर्ण किरण, स्वर्ण किरण,
विचरती धरती पर
स्वप्नो की तूलि धर
चेतना रंजित कर
जगती के रजकण !
स्वर्ण किरण, स्वर्ण किरण,
नभ से परियो सी उतर
स्वप्न नयन कर अंतर,
जीवन सौंदर्य के
बरसाती स्मित निर्झर !
स्वर्ण किरण, स्वर्ण किरण,
हँसमुख, आदित्य वरण,
धरती धरती पर चरण
हरती चिर छायावरण

हाउ हाउ, वह स्वण पुरुष,
वह ज्योति पुरुष मैं हूँ अजर अमर।
झरते सप्त धार सोने के
सतत मातरिश्वा से निझर।

श्री अरविन्द दर्शन

ज्योति श्री अरविन्द, चेतना के दिव्योत्पल,
पूण सच्चिदानन्द रूप शोभित स्वर्णोज्वल।
अति मानस मे विकसित तुम आलोक हसित दल,
ओतप्रोत जिसमे असीम आनन्द रजत जल।
स्तर पर स्तर कर पार चेतना के, योगेश्वर,
स्वर्णारुण-से नव्योदित तुम चिदाकाश पर।
मानव स ईश्वर, ईश्वर से मानव बन कर
आये लौट धरा पर, ले नव जीवन का वर।
तुम भविष्य की दिव्य ज्योति, अन्तर्मुख जीवित,
मानव अन्तर तुमस उच्च अतल, अति विस्तृत,
रुद्ध द्वार कर मुक्त हृदय के, भव तमसावृत,
अन्तर्जीवन सत्य कर दिया तुमने ज्योतित।
अधिमानस से भी ऊपर विज्ञान भूमि पर,
हिमगिरि-स अध्यात्म तत्व के स्थित तुम निभर।
ज्योति मूत चेतना ज्वलित हिम राशि सी निखर
मत्य स्वग के पार उठाये सत्य के शिखर।
एक स्तम्भ उपनिषत ब्रह्म विद्या के निश्चय,
ज्योति स्तम्भ दूसरा देव का शब्द अक्षय
दिव्य चेतना सेतु ऊध्व जिन पर ज्योतिमय
मार पार भव जीवनाब्धि के अति मानव, जय।
किया वेद वेदाग का जब तुमने मन्थन,
हुए प्रकाशित तत्व, जगा मन्त्रो मे जीवन,
परम व्योम से तुम्हें ऊध्वचित, ध्यान मग्न मन,
विद्युत लेखा तुल्य ऋचाओ का हुआ स्फुरण।
स्वण नील के मध्य रजत की अनिल मे सुघर,
छोड दिव्य स्वप्नो की रत्नच्छाया भास्वर
स्वग धरा पर लाने आये स्वय तुम उतर
जन मगल हित पार्थिवता का भार वहन कर।
स्वग और वसुधा का करने स्वर्णिम परिणय
इन्द्रचाप का सेतु रच रहे तुम ज्योतिमय,
नत्यशील श्री हरित यौवना भू पर छविमय
चिर अनन्त की अमर वर्तियाँ बोकर अक्षय।
अग्नि विहग मे स्वण शुभ्र तुम खोल दिव्य पर,
विचर रजत नीहार शान्ति मे दिशि पल के पर,
प्रसव व्यथित वसुधा हित लाये अखिल शोकहर
रश्मि कलश मे दिव्य प्रीति की स्वण सुरा भर।

नील शकुनि, तुम गाते देवों स्वर्दूतों हित,
चिदानन्द के अग्नि बीज भू पर भरते स्मित।
देश काल से परे कौन वह व्योम दुख रहित
शाश्वत सुख का हृद जहाँ से लाते तुम नित।
कैसा वहाँ प्रकाश, शान्ति, आनन्द चिरन्तन?
जहाँ सच्चिदानन्द स्वयं करते सहज सृजन!
उठा सत्य निज आनन से हिरण्य अवगुण्ठन
जहाँ सूक्ष्म सुन्दरता का सजता सम्मोहन।
छायाभा से रचित वहाँ क्या सप्तदल भुवन।
काल दिशा को लिये अंक में करता नर्तन?
जहाँ स्वयं प्रभु रहते कैसा वह परम गगन।
जहाँ अनिर्वचनीय अमित आनन्द का स्रवण।
गूढ़ तमस में, जड़ में ही चित शक्ति तिरोहित,
अन्न प्राण मन में फिर क्रमे हुई प्रस्फुटित,
कवि ऋषि, तुमने सूक्ष्म दृष्टि से कर ज्यों चित्रित
रहस शक्ति से निखिल सृष्टि फिर कर दी विकसित।
खोल अदोष रहस्य सृजन का तुमने गोपन
दिया विश्व को नव जीवन विकास का दर्शन!
ज्योति चिह्न जो छोड़ गये भू पर प्रबुद्ध जन
सूचित उनसे प्रति मानव का पुण्य आगमन।
ऊर्ध्व चेतना का हो सर्वदिक् मूर्त संचरण
धरा स्वर्ग के ज्योति छत्र-सा भेद दिव्य मन,
बहिरन्तर जीवन का कर तुम, देव, उन्नयन,
दिव्य जीवन का धरती पर कर रहे अवतरण।
युग युग के पूजन आराधन जप तप साधन
आज कृतार्थ अखिल आदर्श, शास्त्र, नय, दर्शन,
मनुज जाति का सफल सकल जीवन संघर्षण
पूर्ण आज प्रभु तुममें दिव्य देह धर नूतन।
जल जीवन में मच्छ, कच्छ तुम कर्दम में बन,
भू जड़त्व में शूकर, वनचर में नृसिंह तन,
आदि मनुज वामन, शूरों में राम परशुधर,
मर्यादामय राम, विश्वमय बने कृष्ण घन।
आज लोक संघर्षों से जब मानव जर्जर,
प्रति मानव बन तुम युग सम्भव हुए धरा पर।
अन्न प्राण मन के त्रिदलों का कर रूपान्तर,
वसुधा पर नव स्वर्ग संजोने आये सुन्दर।
छू पाते हैं पंख कल्पना के, न पद कमल,
विकसित जो अन्तर जल में जाज्वल्य ज्योति दल,
घेरे तुम्हें जननि का ज्योतिष्मत चिन्मण्डल
मुग्ध चमत्कृत चक्षु भाव मन पा जाते फल।
दूत दिव्य जीवन के, दिव्य तुम्हारा दर्शन,
प्रति मानस का स्पर्श प्राण मन करता चेतन।

मानव उर प्रच्छन्न तुम्हारा नव पदमासन,
तन मन प्राण हृदय ये तुमको, देव समर्पण !

स्वर्णोदय

(जीवन सोंदय)

जयति, प्रथम जीवन स्वर्णोदय
रक्त स्फीत, लो दिशा का हृदय !
काल तमस व्यवधान चीर कर
किसने मारा स्वण पख शर ?
जय, अमरत्य जीवन यात्री, जय !
देखो, कोमलात कर क्रदन
किसने जग मे किया आगमन !
(यह क्या भू का रुदन सनातन ?)
पलकों मे जग उठे निमिष क्षण
स्तब्ध हृदय मे दिशि का स्पन्दन !
गुहा बद्ध चित स्रोत हो स्खलित
जीवन पथ म हुआ प्रवाहित !
मुक्त अरूप रूप धर सीमित
श्वासो से कर गगन तरगित !

(शशव)

मगल गायन !
मगल वादन !
क्यो न मनायें जन्मोत्सव जन !
धन्य आज का पुण्य दिवस क्षण,
फिर अमरत्य ने धरा मत्य तन !
स्वागत, स्वागत
प्रयत नवागत
हो प्रशस्त तेरा जीवन पथ
जग के शूल फूल हो अभिमत
प्रिय शिशु तू हो पूण मनोरथ !
ओ मा वह रोता है उसको स्तन्य पिलाओ,
वह अशक्त असहाय, उसे निज अक लगाओ !
कस पार करेगा दुगम जगती का मग
वह निबल निर्बोध पथिक, वह पख हीन खग !
लोरी गाओ, लोरी गाओ,
फूल दोल मे उसे झुलाओ,
निंदिया की प्रिय परियो आओ
मुन्ना का मुख चूम सुलाओ !
स्वप्नो के छाया पखो को
न हे के ऊपर सिमटाओ !

चन्द्रलोक की परियो, आओ,
स्मिति से सुधा अधर रँग जाओ,
मलय सुरभि की चंचल परियो,
साँसों से आँचल भर लाओ।
जुगनू चमका, वन की परियो।
झिलमिल कर पलकें झपकाओ,
रिमझिम कर, मेघों की परियो,
लालन का गा हृदय रिझाओ।
अहरह उर कम्पन में दोलित,
मम स्पृहा की मूर्ति देख स्मित,
मुग्ध नव जननि, बलि बलि जाओ,
लाड़ लुटाओ, प्यार लुटाओ,
लोरी गाओ।
स्निग्ध पूस की धूप, स्वर्ग आशीर्वाद-सी,
बरस रही भू पर शैशव के मुक्त ह्लाद-सी।
स्वच्छ प्रकृति मुख, सौम्य दिशा स्मिति, शान्त विहायस
शीतलोष्ण पलों के सुख में सिमटा सालस।
नलिनी उर में लेटा हिमजल
बाल चेतना सा तारोज्वल,
हँसमुख, निर्मल, चंचल।
लो वह नटखट पाँव चलाता,
कौन उसे बढ़ना सिखलाता?
क्रन्दन था जिसका सम्भाषण,
वह अस्फुट स्वर में तुतलाता।
दुधमुही सरल मधुर मुसकान
न जाने कहती किन अनजान
रहस्यों के नीरव आख्यान।
कौन अप्सरियाँ आ चुपचाप
कर रही उससे मौनालाप
फूटती स्वप्न सरित स्मिति आप।
नाम रूप के जग को, केवल
वह चितवन स्पर्शों से प्रतिपल
अंकित करता उर में कोमल।
तारों से भरा गगन
स्वप्नों का सा वन
उपजाता मन में संवेदन।
लो, चन्दा ने
चाँदी की नैया में मोहन
बिठा लिया अब लालन का मन
पलने में हिलता डुलता तन।
दीप शिखा के लिए वह मचल
नचा रहा निज कोमल करतल।

चूं चूं करती चिड़िया सुन्दर
फूल पाँखुड़ी उड़ती फर फर,
उन्ह बनाने निज सुख सहचर
पास बुलाता वह इंगित कर।
सोच रहा ज्यों एकटक नयन,
मौ माखी क्या कहती भन भन
काना में भर गुंजन ?

ममर, ममर,
तरुओं के चल पत्र रहे झर।
विरल टहनियों की जाली से
लगता मुक्त प्रशस्त दिगन्तर।
यह लो, नव शिशु-सा ही सुन्दर
निखिल विश्व बन गया दिगम्बर,
नवल पल्लवों स वह मासल
वेष्टित होगा सत्वर।
कहाँ जरा है ? कहाँ रे मरण ?
सृजन शील जग का परिवतन।
कौन कहाँ के क्षणिक पा यचर,
यहाँ अरे जा रहे निरंतर
ये पीले पत्ते उड उड कर।
धरती इनस क्यों न गयी भर।
कब से झर झर
चुपके हस कर
ये किस पर हो रहे निछावर ?
क्या ये उडते पत्ते केवल ? कौन यहाँ दे उत्तर।

यह अनंत यात्रा का रे पथ,
शिशु अनंत का यात्री शाश्वत,
वह अनादि से नित्य नवागत,
अपने ही घर का अभ्यागत।
सूय चन्द्र उसके ही लोचन,
श्वसन उसी के उर का स्पंदन,
उसका आरम्भ प्रसार निशा क्षण,
महाश्चय रे, पुरुष पुरातन,—
आदि सृष्टि का कारण—
शिशु,—अनंत का पाथ चिरंतन।
श्रम विकास के पथ से निश्चित
विश्व नीड कर अपना निर्मित
जननि जनक मे स्वय विभाजित
वह अवतरित हुआ या विकसित ?
कोटि योनि, शत कोटि जन्म तर
विविध भ्रूण स्थितियों मे बढकर,

दिव्य अतिथि वह मनुज देह धर
आया फिर से, मर्त्य बन अमर।
दृगा, देखो आँखें भर,
कैसा रहस्यमय ईश्वर।
देखो हे आँखें भर
कैसा सुंदर ईश्वर।

(किशोर)

रूप रंगों में रही पुकार
पल्लवित विश्व प्रकृति की डाल,
पहन नव जीवन ज्वाल।
किशोरी नव किशोर सुकुमार
खेलते यह प्रिय क्रीड़ा बाल।

न अब वह प्रकृति मुक्त शैशव,
जगा उर में स्वभाव वैभव,
हृदय क्या कहता कुछ गोपन
परस्पर बढ़ता आकर्षण।
अभी मन बना न नारी नर,
सखा, भइया बहना दो जन।

खेल कूद अब इनका जीवन,
गोद बन गयी जग का आँगन,
कौतूहल से भरा मुकुल मन,
खोज रहे कुछ उत्सुक लोचन।

जीवन स्रोत बहा कल कल छल,
जग में भर हँसमुख कोलाहल,
नवल विश्व रे नवल धरातल,
फूल नवल नभ का नीलोत्पल,
निखिल पुरातन नवल चिर नवल,
जीवन स्रोत बहा कल कल छल।

आ, समीर किस सुख से चंचल,
उड़ता क्या यह मां का आँचल।
लोट रही हैं लहरें प्रतिपल
उछल रहा तन्मय उर कोमल।
छू छू कर कैशोर पग चपल
हँस उठता पुलकित दूर्वादल।

कहाँ गया अब शैशव का घुटनों बल चलना,
वह चंदा के लिए मचलना?
कहाँ छिपा लकड़ी का तू तू,
कहाँ भगा लाठी का घोड़ा?
वह कागज की नाव
जिसे शिशु ने जीवन सागर में छोड़ा।

उसे याद, जब प्रथम चरण धर
खडा रह सका था वह क्षण भर,
विजय गर्व, नव तडित हुए जो
सहसा मृदु उर में था दौडा ?
कब भागा लकडी का तू तू,
कब छूटा लाठी का घोडा !

बाल कल्पना का वह जग न रहा अतिरंजित,
बचपन के साथी चिर परिचित
गुड्डे गुडिया थे जो जीवित
आज धूल में पडे काठ के सब हाथी घोडे मृत !
उडते पत्ते बनते थे तब उडती चिडियाँ,
कोने कोने में छिपकर रहती थी परियाँ,
आस पास के झुरमुट ठूठ सभी थे हौवा,
नित्य डाकिया बन आता आँगन का कौवा,
जादूगर का खेल जगत था रहस भावना कल्पित,
पलक मारते ही उगता था पेड आम का निश्चित !
चहक रहे अब मुखर बाल खग,
रोक सकते नही चपल पग !
सहज रूप से उमँग रहे अँग,
लडभिड, रो हँस, रहते ये सँग !
इनके हास लास रगो से,
नव भगो से, नव भगो से,
रग प्राण बन जाता क्षण भर क्षण भगुर जग जीवन का मग !
सम्भव अखिल असम्भव मिलकर
कौतुक से भर देते अन्तर
हास रुदन-सी ही घटनाएँ
आती औ' जाती टिक क्षण भर !
सुन पडता, लो, दूर कण्ठ स्वर—

डम डम डमक, कलन्दर आया !
बन्दर घुडकी छाडो भइया डमरु जगाया !
सन्ध्या बूढा ने सूरज का गेंद छिपाया,
दादी ने आँगन भर में सेंदुर बिखराया !
ऐंठ दिखाते थे सबको अकडू बघवा जी
गीदड ने अपनी चालो से खूब छकाया !
खेल कूद मे रहे छलाँगें भरते दिन भर,
कछुए ने खरहा बच्चू को सबक सिखाया !
हँसते थे वन के राजा छोटी चुहिया पर
फन्दा उसने काट जाल से उन्हे छुडाया !
बाल न बाँका कर पाये राजा बाबा का
भण्टी मे वह सीग स्यार का था रख लाया !

कभी कबड्डी नही खेलते थे सँग रामू,
इम्तहान मे तभी फिसड्डी नम्बर पाया !
डम डम डमक, कलन्दर आया !

सीख रहे पग पग पर ये जाने अनजाने,
उत्सुक यह विस्तृत जग इनको पाठ सिखाने,
नित्य बढ रहे मन मे ये निर्बोध सयाने !

हृदय क्रिया थी जिसकी मृदु स्मिति
क्रन्दन ही वाणी की अथ - इति,
जीवन के उस मास पिण्ड म
कैसे फूटी जग की भाषा ?
साँसो के सूने पिंजर मे
कब पैठी आशा, अभिलाषा !

स्पर्श जगत मे था जो जीवित,
स्वाद मात्र से बस कुछ परिचित,
स्वप्न लोक वासी मे कैसे
जगी भावना स्मृति जिज्ञासा ?
कौन मिटाये ज्ञान पिपासा !

बोध निहित था क्या उर भीतर,
अथवा व्याप्त विश्व मे बाहर ?
छिपा बिन्दु मे था या सागर ?

गूढ नियति पर क्या विकास नव शिशु का निर्भर ?
बढत या वे बहिर तर के छायाभा पथ से लोकोत्तर
कही नही क्या सम्यक उत्तर !

देख चुके थे शरद पच दस,
शिशिर वसन्त ग्रीष्म हिम पावस,
उदित अस्त अब होता दिनकर,
घटता बढता रवि प्रभ हिमकर,
स्वप्नो का तारापथ सुन्दर
ज्वलित ज्योति पिण्डो से भास्वर !

राहु केतु से चन्द्र रवि ग्रसित
होते भू शशि गति स निश्चित !
दिवस पाख बहु मास बदलते
ऋतु सवत्सर !

कथा इन्द्र की इन्ह सब विदित
इन्द्र धनुष क्यो सप्त रग स्मित
तडिल्लता क्यो खिलती कुछ क्षण
घन घमण्ड क्या करता घोषण !
वाष्प पख के बादल जलधर
बरस बरस धरती पर उवर
हँसमुख हरियाली देते भर !

परियाँ हुई अदृश्य, बंद अब दंत कहानी,
अब वे राजकुमार न अब वे राजा रानी।
अब भूगोल गणित इतिहास ग्रथित पृष्ठों पर
चित्र प्रकृति से विस्मित चितवन गड़ी निरंतर।
चपल विश्व के रूप रंग बन काले अक्षर
रेंग पाँति में रहे चींटियों से हिल डुल कर।
जाने बाहर दृष्टि दौड़ जाती कब चंचल
राजधानियाँ हो जातीं भूतल से ओझल।
नीले नभ पर गिरि प्रांतर पर, खग नीड़ों पर
छाया पथ से स्वप्न क्षितिज में उड़ता अंतर।
चिड़ियों के पर, हिम जल के मोती बटोर कर
झरनों के फेनों संग हँसता कलरव से भर।
क्या हैं ये इतिहास, युद्ध, सम्राट, प्रथित जन।
विविध शास्त्र, विज्ञान। इन्हीं का रे गत जीवन।
इनके आविष्कार सभी, इनके अन्वेषण,
युग-युग की शैशव अनुभूति वहन करता मन।
फिर से ये करते अतीत का सिंहावलोकन
कहाँ आज है विश्व। कहाँ अब मानव जीवन?
किन तन्त्रों से भू पर जीव नियति प्रतिपालित?
किन मूल्यों से जीवन की इच्छा परिचालित।
किन आदर्शों से मानव भावी हो शासित?
किस प्रकार हो विश्व सभ्यता संस्कृति विकसित?

रहस स्पर्श से अब अनजाने
होता रह-रह हृदय उच्छ्वसित।
किसी रंगिणी का चल अंचल
उड़ता मलयानिल में पुलकित।
रंग भावना से अंतर की
हो जाता सहसा जग रंजित,
स्वप्नों की पंखड़ियाँ हँस हँस
नयनों को कर देतीं विस्मित।

(यौवन)

स्वर्ण मंजरित आम्र कानन,
कोकिला करती मल कूजन।
सूंघ चख चूम फूल आनन,
झूम मधुलिह भरते गुंजन।
आज नव वारिधि उद्वेलित
नभो नीलिमा बनी विस्तृत,
डोलता मारुत रोमांचित
साँस पी फूलों की सुरभित।

रजत किंकिणियों सी कल कल
लहरियाँ थिरक रहीं चंचल,
कँप रहीं वल्लरियाँ कोमल
खोलतीं कलियाँ वक्ष नवल!

रंग प्राणों का स्वर्णिम लोक
कहाँ था यह अदृश्य चुपचाप,
हँस उठा इंद्रधनुष में आज
हृदय का छाया वाष्प कलाप!

बज उठा जीवन में मधु छंद
किसी की सुन नीरव पद चाप,
भाव गरिमा से भरा अनंत
मुखर स्वर से अब मौनालाप!

युवक नव युवति विचरते आज,
मर्म में स्पृहा, दृगों में लाज,
न अब कैशोर भीति का भाव,
आज उनसे चरितार्थ समाज!

बने वे नर-नारी मोहन,
न अब जीवन रहस्य गोपन,
न परियाँ देतीं शिशु को जन्म,
सृष्टि में निहित जनन पावन!

नीलिमा क्यों नीरव निस्तल,
स्रवंती बहती क्यों कल कल,
शांत अब, खिलते क्यों कुड्मल,
गंधवह फिरता क्यों चंचल!

न रोके रुकते चपल नयन,
मीन तिरते, उड़ते खंजन,
अधर से मिलते मधुर अधर,
मुग्ध कलि अलि करते चुम्बन!

बाँह यदि भरती आलिंगन
लताओं में लिपटे तरुगण,
प्रबल रे फूलों का बंधन,
अमिट प्राणों का आकर्षण!

आज भ्रू लतिकाओं में भंग,
अतनु तन-शोभा प्रीति तरंग,
गढ़े किस शिल्पी ने ये अंग,
निछावर निखिल प्रकृति के रंग!

स्पर्श में बहती प्राण तड़ित
स्वतः तन हो उठता पुलकित,
हृदय स्वप्नों से जग रंजित
उषा अब इंद्र धनुष वेष्टित!

मिलते सहसा मौन नयन, अपलक - से रह जाते क्षण,
नव प्रवाल अधरों में बहती मदिरा ज्वाला मादन!
प्राणों की चिर तृषा फूट बनती पुलकों के बंधन,
कौन भूल सकता है रे नव यौवन का सम्मोहन!
मर्म कामना युगल स्वर्ण कलशों में मूर्त गयी भर,
चपल नयनिमा न पाये मृदु फूलों के मादक शर!
वह लज्जा सज्जा सुषमा मधुरिमा कहाँ थी गोपन,
नव यौवन की प्रथम प्रणय की मुग्धा तरुणी का तन!

कौन बाँध सकता अजस्र उद्दाम वेग निर्झर का
कौन रोक सकता अबाध उद्वेलन रे सागर का!
मदोन्मत्त यौवन का, मेघों का अदम्य आलोड़न
चकित नहीं कामिनी दामिनी करती किसके लोचन!

सरित पुलिन अब लगते शोभन,
बह जाता धारा के सँग मन!
मधुर, मौन सन्ध्या का आँगन,
प्रिय, स्वप्नों में सजग निशि गगन!
कूजन गुंजन गन्ध - समीरण
सब में मर्म मधुर संवेदन,
तरुण भावनाओं से रंजित
मुकुलित नव आशा का उपवन!

स्वर्ण नील मुकुलों से झंकृत, कोकिल स्वर से कीलित!
अपलक रत्न खचित, मधु वैभव मन को करता मोहित!
तारागों से रात लक्षित, ज्योत्स्ना अंचल में वेष्टित
उदय हृदय में होता फिर फिर लेखा शशि मुख परिचित!

शरद निशा आती सलज्ज मुग्धा सी शंकित,
मुक्त कुंतला वर्षा तनु चपला सी कम्पित,
सुरभित ऊष्मा सुघर अग्निका स्रक से दालित,
लिपट मधुर हिम जाती तन से आतप सी स्मित!

खुल पड़ता उर का वातायन
बहती प्राण मलय चिर मादन,
कहीं दूर से आता भीतर
प्रणयाकुल पंचम पिक गायन!

आओ हे चिर स्वप्न सखी, आकुल अन्तर में आओ
फूलों की नव कोमलता में जीवन का निरखाओ!
इन प्रिय स्नेह सरों में अपलक शरद नीलिमा जागृत,
चपल हंस पंखों से चुम्बित सरसिज श्री बरसाओ!
इस प्रवाल के प्याले की मधु मदिरा नशि, उर मादन,
तुहिन फेन स्मित प्रीति सुधा घट स्वर्गिक मुझे पिलाओ!
स्नेह लता-से पुलक पाश दे कल कल्पों के मोहन
उर में सुमधुर उर सी तन में तन सी मधुर समाओ!

सुरभित साँसो के पलने मे मर्म स्पृहा कर दोलित
फूलो के मधु शिखरो पर प्राणो के स्वप्न सुलाओ!
इन मासल चम्पक झरनो से लिपटी विद्युत लपटें,
प्रणय उदधि मे अतर की ज्वाला को अतल डुबाओ।

लेटा नव लावण्य चाँदनी सा बेला के वन मे,
खिलती कलिकाओ की शोभा कोमल सज सजाओ।
स्वप्नो की पी सुरा आज यौवन जागे विस्मृति में
चचल विद्युत को सलज्ज ज्योत्स्ना के अक लगाओ?
आओ हे प्रिय स्वप्न सगिनी, आकुल उर मे आओ।

पति पत्नी अब बने प्रणयिजन,
निखिल प्रकृति करती अभिनन्दन।
अह, कैसा निष्ठुर निर्मम जग
सम्मुख क्यो जीवन सघर्षण।
हृष्ट पुष्ट नव युग्मो का तन,
रुधिर वेग मे झकृत जीवन।
आत्म भाव से विस्तृत लोचन,
शौर्य वीर्य से विकसित नव मन।

नही मानता उर दुविधाएँ बाधा बन्धन,
वह निशक, निर्भीक, सह्य उसको न नियन्त्रण।
चिर अदम्य उत्साह हृदय मे स्पन्दित प्रतिक्षण,
यह यौवन की आशा अभिलाषा का प्लावन।

अह, क्या करती रही पतित पीढियाँ आज तक,
रक्त पक जन धरणी का इतिहास भयानक।
रोग शोक, मिथ्या विश्वास अविद्या व्यापक,
नगे भूखे लूलो का जग हृदय विदारक।
कौन रहे इस क्रूर सभ्यता के सस्थापक,
यह जन - नरक कलक मनुजता का, भू पातक।

बदलेंगे हम चिर विषण्ण वसुधा का आनन
विद्युत गति से लावेंगे जग मे परिवर्तन।
क्यो न मजरित युवको का हो विश्व सगठन,
नव यौवन आदर्शवादिता अरे न नूतन।

क्या करते ये धनकुबेर, पण्डित, वैज्ञानिक,
दिशाभ्रान्त क्यो हो जाते राष्ट्रो के नाविक।
ज्ञात नही क्या लोक नियति है आज भू पथिक
वग राष्ट्र से लोक धरा का श्रेय है अधिक।

दिवस ज्योति सा साफ सत्य यह गोचर निश्चित,
मनुष्यत्व है रीति नीति धर्मों से विस्तृत।
सस्कृति रे परिहास, क्षुधा से यदि जन कवलित,
कला कल्पना, जो कुटुम्ब तन नग्न, गृह रहित।

आओ, मुक्त कण्ठ से सब जन
भू मगल का गायें गायन,

वन्दे मातरम !
जन धरणी जन भरणी
रत्न प्रसवनी मातरम !
नृत्य हरित, पिक कूजित यौवन,
अनिल तरंगित उदधि जल वसन,
छत्र सूय शशि दीप्त नत गगन,
प्रणयाकांक्षी स्वग चिरन्तन,
वन्दे मातरम !
बजे क्रांति तूरी जन मादन,
कुड्म कुड्म हो जय दुन्दुभि स्वन,
जीवन हित मानव वरे मरण,
मृत्यु अक म भी गावें जन,
वन्दे मातरम !
भू मन के टूटें जड बन्धन,
रूढि रीति से मुक्त बनें मन,
दैन्य दुरित के हटें तमस घन,
स्वण प्रभात जडित हो प्रागण !
वन्दे मातरम !
दिशा लोक श्रम से हो हर्षित,
काल विश्व रचना म योजित,
भव संस्कृति म देश हो ग्रथित
जन सम्पन्न, जगत मनुजोचित,
वन्दे मातरम !
स्वण कणो के मौर न अब फूलो की ज्वाला के वन,
कितने चुवें, झरे धरती पर, झंझा का भव कानन !
लदी फलो से जीवन डालें, रस मे सब रँग गोपन
विश्व प्रकृति का रे अपार अक्षय वभव दिड मोहन !
भू की रज को कर कृताथ बीता निदाघ अब भीषण,
तिग्म करो से खीच सिन्धु पलनो से वाष्पो के घन !
तप्त श्वास सा ग्रीष्म पवन भी शान्त हुआ झुलसा तन,
विकसित वर्धित परिणत कर पुष्पित वसन्त का यौवन !
वर्षा आयी धूम्र नील नभ म छाया घन घषण,
तीव्र लालसा तडित जगी मोई, कर गजन - तजन !
मधु मरन्द से रजित म का गभ हुआ फिर उवर
नव प्रवाल प्रज्वलित तरु क्षितिज बना गाढ श्यामलतर !
नृत्य तरंगित हुए स्रोत नव गये प्ररोह नवल भर !
सजन शक्ति ने अणु अणु मे फिर लगा दिये जीवन पर,
प्रणय गीत, मृदु जनन स्वरो से मुखरित हुआ दिगन्तर,
जीवन को रिमझिम अजस्र रे ससृति की सावन झर !
पृथक न अधिक रहा नारी जग
धरे पुरुष के संग उसने पग,

रंग तरंगित जिसकी श्री से
कुसुमित सुरभित जग का मरु मग!
गुड़िया में संग प्रिय किशोर क्षण
बीते, उर में भर मृदु कम्पन,
खींच कुसुम धनु तन, यौवन ने
किया रूप सम्मोहन वपण!

वक्ष श्रोणि ने बढ़, कटि ने छँट
सौष्ठव रेखाएँ की रूपित,
मुग्ध नमनिमा, सलज लालिमा,
पद जड़िमा ने तरुणी चित्रित!
शोभा कँपती लहरी सी उठ
हुई देह तनिमा में स्तम्भित,
देख मुकुर - से तन में निज मुख
रही मधुरिमा छवि से विस्मित!
कोमलता कल्प कल्पलता सी
अगमगि में हुई प्रस्फुटित,
सुंदरता ही प्रीति तूलि से
बनी मोहिनी प्रतिमा जीवित!

हुए रूपसी के नव अवयव
यौवन के आतप में विकसित,
मधुर स्त्रीत्व में धातु कल्पना
सृजन कला के कर से मूर्तित!
जगा सलज चेष्टाओं में अब
नव लीला लावण्य अकल्पित,
पलक भृकुटि अंगुलि चालन में
छबि की दीप शिखाएं कम्पित!

तिमिर ज्वाल सा केश जाल घन
पृष्ठ देश पर हुआ प्रज्वलित,
आभा जीवी नयनों को कर
कोमल शोभा - तम से मोहित!
स्वप्नों से गुम्फित यमुना जल
गाढ़ नील तम हुआ तरंगित,
साँस ले रहे फूलों के रँग
सौरभ की कबरी में दोलित!

कांचन सी तप ज्वलित कामना
ढली सघन जघनों में दीपित,
बनी कठोर कुसुम कोमलता
श्रोणि भार में हो चिर पुंजित!
बाहु लताएँ फूल पाश बन
पुलकों में हो उठीं पल्लवित,

कोमल करतल, चचल पदतल
जीवन के जावक से रजित।
रूप शिखा की श्री सुषमा से
हुए गेह आँगन आलोकित,
वातायन मे उदित कला शशि,
गृह गृह के गवाक्ष चिर शोभित।
कलि कुसुमो ने भूतल को रँग
किया शोभना के हित सज्जित,
उर की साँसो मे बहने को
बना समीर गन्धवह सुरभित।

ज्योत्स्ना सकुची, उषा लजायी,
रही तारिकाएँ ज्यो विस्मित,
स्रोत बहे सरसी लहरायी,
निखिल प्रकृति श्री हुई प्रभावित।
हृदयासन पर बिठा प्रेम ने
किया भ्रमर स्वप्नो से पूजन,
समा स्वर्ग ने स्वर्ण घटो मे
स्वीकृत किया मर्त्य सुख बन्धन।

दो टुकडो मे सिमट नीलिमा
रही मौन नयनो मे अपलक,
लजा अधर नव प्रणय वचन से
गये लालिमा से दुहरे रँग।
खिलती कलियो ने मादव भर
कोकिल ने दे गीत स्रवित स्वर,
मोहक उसे किया ज्योत्स्ना ने
गोपन लज्जा मे वेष्टित कर।

मधु ने फूल ज्वाल से आवृत,
किया शरद ने लेखा मुख स्मित
मणि मुक्तामय खनि सागर ने,
भू ने स्वर्ण रजत से अङ्कृत।
जगा हृदय मे प्रीति दप नव
शत शत नयनो से हो लम्बित,
हाव भाव म मधुर सयमन
शोभा तन सज्जा स सवृत।

तडित गर्भ, सुरधनु कबरी घन
ज्यो कृतार्थ होता भू पर झर
मधुर अप्सरा बनी जनी अब
कुल प्रदीप मे ज्योनित कर घर।
मातृ स्नेह बरसा नव शिशु पर
मुग्ध प्रणयिनी हुई निछावर,

सहधर्मिणी आज वह प्रिय की
सुख-दुख की मन्त्री, चिर सहचर!

जाति जाल अब बने युग्म, जीवन को दे नव जीवन,
देख तनुज मुख आत्म भाव में हुआ गूढ़ परिवर्तन!
जीवन का अमरत्व हुआ प्रत्यक्ष, पुरातन नूतन,
नित्य स्वप्न खोया का सत्य हुआ, अवचेतन चेतन!
अंतरतम में आंदोलन, भावों में जागा मंथन,
घूम गया हट, मूर्तिमान हो उठे काय को' धारण!
केन्द्र बन गया शिशु ममत्व ने किया मूर्त तन धारण,
विस्तृत हुआ अहम्, निजत्व ने दुहराया नव जीवन!

'अहं, समानता जड़ जग की, मैं दूँगा निखिल विसर्जन,
इन्द्रधनुष स्वप्नों का जीवन नीड़ रचूँगा मोहन!
हम तुम होंगे प्रिये असाधारण,' कहता था जो मन,
आत्मनिष्ठ वह यौवन सीख रहा अब आत्म समर्पण!
जीवन इच्छा, जीवन स्थितियों में विरोध क्या शाश्वत?
दोनों में ज्यों समाधान अब खोज रहा मन उद्यत!
बढ़ा युग्म दायित्व, आज जीवन घर में अभ्यागत,
बने उरोज पयोधर, दम्पति जगत कर्म में अब रत!
चूम-चूम शिशु का मुख पाते तृप्ति अमृत मदिराधर
मधुर प्रणय का कुंज बना गृह क्रन्दन कलरव से भर!
मलयानिल का नवल मुकुल का मुख करती अब चुम्बन,
सुधा स्पर्श शशि की किरणें अभिनय ही का अभिनन्दन!

भूल गया ज्यों प्रणय कलह मन,
गूँज उठे उर में अरसिक क्षण,
मूक पीठ पा मम स्पृहा ने
पुत्र स्नेह बन किया अवतरण!

रूप रंग का रच सम्मोहन
सृजन शक्ति ने बाँधे ये मन,
पलकों में धर पुलक में तड़ित
अधरों में धर मदिरा मादन!
अब शिशु के अनुपम आनन में
अतुल स्वर्ग का भर आकर्षण,
परम्परा में गूँथ, अमर ज्यों
बना दिया उसने भंगुर तन!

नहीं गणित से रे परिचालित
मानव जीवन का विकास क्रम
विजय पराभव संधि क्रांति का
स्पंदनशील मानव मन संगम!
मरती रहती बाह्य चेतना
आत्मा फिर फिर जगती नूतन

छोड जीर्ण केंचुल, नव सर्पित
होता उरग मनुज का जीवन।

(प्रौढ़ता)

शात रे ज्वलित तडित नतन,
शात ग्रब धूम मेघ गजन।
शात चिर प्राणो का ग्रावेश
बरस भू पर भर नव जीवन।
ग्राज शुचि सौम्य शरद ग्रानन
नीलिमा नत निधूलि गगन,
चेतना-सी ज्योत्स्ना स मुक्त
मुग्ध प्लावित जग के शिशि क्षण।
स्वच्छ ग्रादशों स सरि-सर,
मनोदग-सी स्मित कुई सुघर।
कृताजलि ग्रब प्रभात के पथ,
प्रौढता का भव रहा निखर।
रूप रगो का चित्र जगत
सिमट, घुल, हो ग्रनुभव ग्रवगत
विचारो भावो मे परिणत
नियम चालित लगता सतत।
भि न रुचि प्रकृति नही कल्पित,
एकता म व ग्रालिगित,
विकषण ग्राकषण से नित्य
हो रहा जग जीवन विकसित।
नव कुमार का पकड मदुल कर
टहला रही जनी ग्रांगन पर,
विस्मय नव कौतूहल स भर
पूछ रहा वह प्रश्न प्रश्न पर।
कसी हो शिक्षा किशोर की
हृदय पिता का ग्रब चि तन पर
प्रिय प्रबोध चरणो मे जग के
काटे गड न जायँ, वह कातर।
लाड प्यार भय वजन मे बढ
पाच बरस का ग्रब प्रिय बालक,
युवति युवक का प्रौ" शिशु हृदय
स्वत स" जीवन सरक्षक।
घर ग्रांगन पडोस बच्चो के शिक्षक सतत ग्रपरिचित
रहन सहन म जीवन शोभा ग्रभी न भू के दर्शित।
क्यो न बने घर घर किशोर के हित जीवित विद्यायन
देवालय जग नव दीपो से हो जीवन नीराजन।

ज्योति वृत्तियों से मानव का शैशव उर हो संस्कृत,
मूर्तित सामाजिक गरिमा से हो तारुण्य प्रभावित,
अह, प्राणों के स्वप्न आज यौवन शय्या पर मूर्च्छित,
मन स्वर्ग हम भू जीवन में कर पाये न प्रतिष्ठित!

पक्व हो चुके वे जग की हिम आतप सहकर,
मोहित जीवन फल चख, तिक्त मधुर रस से भर!
भ्रमण कर चुके भू के जन कुसुमित देशांतर,
विविध लोक सम्पर्कों से अब विकसित अंतर!

भू में आज विभव अपार, दारिद्र्य अपरिमित,
ज्ञान अखण्ड, असख्य अविद्या तम से पीडित!
साधन विकसित, जीव कामना क्षुधित निरावृत,
रोग ग्रस्त मन, जीवन विषम, मनुज आत्मा मृत!
धरा वक्ष कटु राष्ट्रों के स्वार्थों से खण्डित,
स्वर्ण कलश उन्नत देशों के विष परिपूरित!
गगन सिंधु भीषण रण चीत्कारों से नादित,
मनुष्यत्व भौतिक वैभव से आज पराजित!

जाति वर्ण वर्गों में मानव जाति विभाजित,
अर्थ शक्ति से रक्त प्राण जन गण के शोषित!!
जीवन मंदिर में मन्त्रों के प्रेत प्रतिष्ठित,
मानव के आसन पर दानव मुख अभिषेकित!
क्षुद्र आत्म रत मध्य वर्ग कृमि व्यूह-सा घृणित,
अर्थ दस्यु रे उच्च वर्ग धन मद उत्तेजित,
वक्ष प्रीति का धृष्ट काम के कर से मर्दित,
अहम्मन्यता, अर्थ लालसा से भू कम्पित!

विधि ने ऐसा विषम विश्व, अह, किया क्यों सृजन,
यह क्या प्रकृति विधान कि मानव कृश संघर्षण!
रिक्त सुरा का बुद्बुद सा क्षण भंगुर जीवन,
चिर विषय निर्वेद ग्लानि से भर जाता मन!
किसका उर रे जग के कटु घातों से वंचित?
जीवन का पी तिक्त तप्त विष कौन न मूर्च्छित!
किसका दर्प न पद मर्दित? आशाएं लुण्ठित?
पार कर सका माया का पुल कौन अकुण्ठित!

धूप छाँह यह जग, आशा में घुली निराशा,
राग द्वेष सुख दुख संग बँधी अमिट अभिलाषा!
विरह मिलन संघर्ष शांति जग की परिभाषा
जन्म मरण रुज् जरा ग्रथित रे जीवन श्वासा!
पाप पुण्य, मिथ्या औ' सत्य जगत में गुम्फित,
ज्योति तमस द्वंद्वों से निश्चय संसृति निर्मित!
यहाँ कुरूप सुघर साधारण, पूज्य तिरस्कृत
धनी दीन, भोगी त्यागी औ' मूढ़ विपश्चित!

सच है, सुख से अधिक दुःख ही जग में निश्चित,
घृणा प्रेम से, दैन्य विभव से कहीं असीमित!
प्रतिभा से आडम्बर, दर्प विनय से पूजित,
संस्कृति ज्ञान कला कोने में पड़ी उपेक्षित!

जगत जीवन के कुछ अभ्यास
बन गये अब उर के विश्वास,
असद सद सदाचार व्यवहार
लिपट प्राणों से गये उदास!

व्यक्ति जीवन, जग जीवन भिन्न,
प्रार्थना में मिलता आश्वास,
आज बहिरन्तर जग के मध्य
दीखता अमिट विरोधाभास!

मध्य बिन्दु क्या बहिरन्तर का? सत्य क्या प्रकृति निरन्तर?
क्या हूँ मैं, क्या जग, क्या जीवन? क्या कुछ इनसे भी पर?
सदाचार क्या धर्म? जगत में क्या हैं विविध मतान्तर?
क्या है मिथ्या सत्य? मान जीवन के जिन पर निर्भर?
दृश्य जगत मन से भी पर क्या आत्मा नित्य अगोचर?
विकसित हुआ स्वयं यह भव, या इसका स्रष्टा ईश्वर?
क्या जड़, क्या चेतन? मथित अब जिज्ञासा से अन्तर,
विद्युत-सी हो स्फुरित प्रेरणा देती ज्यों कुछ उत्तर!

चेतना रे जिनकी विस्तृत
हृदय में उनके अथक प्रयास,
किस तरह बने मानवोचित
जगत जीवन अश्वत्थ निवास!

तरुण जीवन का वाष्प प्रसार
तथ्य बूँदों में आज गलित,
व्यक्ति गत जीवन का वैराग्य
हो रहा उर में ज्ञान उदित!
लोक सेवा में जीवन पुष्प
चाहता करना मन अर्पित,
आज करुणा विदीर्ण अन्तर
दीन आर्तों को देख द्रवित!

विषमता के निर्मम पद से
फूल जो जीवन के मर्दित,
अभावों के असुरों ने चूस
कर दिया जिनको जीवन्मृत,
सतत उत्पीड़न शोषण से
बने जो विकृत महा दूषित,
हुई कटु घातों से जग के
सहज श्रद्धा जिनकी कुण्ठित!

हृदय सोचता कमे उनका मिटे कदर्य पराभव,
कैसे हँसें दिगन्त धरा के, मानव हो फिर मानव !
ओ धरती के आत तप्त जन, कहता ज्या कातर मन,
मत खोओ विश्वास हृदय का, मत खोओ मानवपन ?
अश्रु स्वेद श्रम रक्त सनी जन भू की गाथा निश्चित,
पीडन शोषण संघषण से करुण सभ्यता निर्मित ?
मानव ही भूदेव दलित, लुण्ठित, औ जग के लाछित,
कलुष कालिमा के भीतर हो रही चेतना विकसित ?
सामाजिक जीवन से महत कही अन्तमन जीवन,
वृहद विश्व इतिहास, चेतना गीता किन्तु चिरन्तन ?
भर देगा भूखी धरती को अन्तर्जीवन प्लावन,
मनुष्यत्व को करो समर्पित खण्डित मन, कवलित तन !
तुच्छ नही समझो अपने को, तुम हो पृथ्वी वासी,
फिर तुम भारत वासी जो, वसुधव कुटुम्ब प्रकाशी,
देखो, मा के अचल मे जो रत्न बँधा अविनाशी,
जगत तारिणी भरत भूमि, वह नही भिखारिन, दासी !

आँसू क्षण अनुभव से हसकर
धोते जीवन के रुधिर चरण,
हृदय ताप सगीत बन मुखर,
गाता चिरत प्रीति का गायन !—

एक कण्ठ हो, जग के दीना दुखियो, गाओ,
बधिर श्रवण को वृथा न दुख की कथा सुनाओ !
किसे रुचेगी राम कहानी निमम जग मे
काटे बोता है जब मनुज मनुज के मग मे !
तुम हो दुख के धनी, मनुज का दुख बटाओ !
कुतर भाग्य के पख, उडो हे हृदय गगन मे,
धोओ मानव के विक्षत पग जीवन रण मे,
लघु ममत्व की बेलि निखिल जग मे लिपटाओ !
मनुज नियति यह, पीडक मनुज, मनुज ही पीडित,
यह विकास की गति, मानव उर होगा विस्तृत,
नव जीवन के अग्रदूत तुम, जो उठ पाओ !

ध्वस एक युग, धूलि धूसरित नव युग का तन,
आज मनोजग मे केवल सघषण क्रन्दन,
मोह विगत का तज नूतन को मूत बनाओ !
अन्ध लालसा लोभ घेरते मानव का मन,
तुम हो रिक्त, बने मनुजत्व तुम्हारा चिर धन,
घृणा द्वेष की रज मे प्रेम त्याग बो जाओ !
जो अपने मे सीमित मरते रहत प्रतिक्षण
जग के प्रति जीवित करते चिर मत्यु का तरण,
खोल मरण के द्वार, अमर प्रागण मे आओ !

क्षण भगुर यह तन, आत्मा रे मुक्त चिर तन,
ईश्वर जग मे व्याप्त त्याग स भोगो भव जन,
यह चिर परिचित भारत का स्वर, इसे जगाओ।
मुक्त कण्ठ हो जग के दीना दुखियो, गाओ।

देश वत्स का अकलुष आनन
हृदय रक्त कर उठता नतन,
विश्व चतना का आकपण
युक्त सष्टि स कर देता मन।
शाश्वत का पा स्पश अपरिचित
डूब स्वात का जाता श दन,
उर का चिर तारुण्य फूटकर
नित्य जगत का करता सजन।
मुक्त सृजन आनन्द हृदय म
हो उठता अज्ञात तरगित,
जीवन का अमरत्व सनातन
मुग्ध दृष्टि को करता विस्मित।
निश्चय ही यह जग शाश्वत मुख का चिर दपण,
मनुज नियति रे यह कटु सामाजिक सघषण,
सत्य ज्योति, अमरत्व चाहता है अ तमन,
सु दरता, आनन्द प्रेम,—यह शाश्वत का कण।
जग वैषम्यो को जीवन गति म कर निखिल समन्वित
मानवता को शाश्वत की आकृति म होना विकसित।
खण्ड युगो की सस्कृति को भव सस्कृति मे एकीकृत
धरती के आहत तन मन को होना शोभित ज्योतित।
नव स तति की शिक्षा होगी नव भव स्थितियाँ निश्चित,
दैन्य द्वेष नैराश्य ग्लानि स होगे वत्स अपरिचित,
मातृ वत्सला सत्ता से होगे जनगण प्रतिपालित
विकृत रुग्ण कवलित होगे मानवता से सरक्षित।

सस्मित होगा धरती का मुख,
जीवन के गह प्रागण शोभन,
जगती की कुत्सित कुरूपता
सुपमित होगी, कुसुमित दिशि क्षण।
विस्तत होगा जन मन का पथ
शेष जठर का कटु सघषण,
सस्कृति के सोपान पर अमर
सतत बढेंगे मनुज के चरण।
विशद चेतना ही सत्ता का कर सकती परिचालन
जन जिसके अगणित अवयव, सस्कृति केवल सचित मन,
मूत भ्रा त मानव को निश्चय बनना अ तर्लोचन,
सत्य अखण्डित, युगपत बढत रे बहिर तर जीवन।

रवि की आभा शशि उर मे ज्यो होती बिम्बित,
प्रौढ बुद्धि मे शनै विश्व मन हुआ प्रतिफलित ।
जीवन सज्जा अब न चित्त करती आकर्षित,
रूप रग पर्सो म सत्य हृदय जो स्पदित ।

क्षेत्र बना मानव के मन को
करते मगल सृजन विश्वमय,
स्पदित शत मानस य त्रो मे
होता ज्ञानोदय का सचय ।
मुक्त, सवगत हो विकसित मन,
करता जीवन पर्यालोचन,
अमृत हास्य सा शाश्वत मुख का
भर देता नव जीवन प्लावन ।

नही क्षुधा औ' काम मात्र स
हुई लोक सस्कृति रे विकसित,
मानव के देवत्व के लिए
विश्व पीठ जीवन की निर्मित ।
घीर काम का तमस आवरण
होगी स्वर्गिक प्रीति अगुण्ठित,
मृण्मय मानस दीपक होगा
अमर चेतना लौ से दीपित ।
जीवन के स्वर्णिम वैभव पर
आत्मा का अवतरण प्रतिष्ठित
मनुष्यत्व के मुख मण्डल पर
शाश्वत अतर आभा शोभित ।

(वाधक्य)

शेष पथ श्वसित शिशिर की वात,
शिला शीतल प्राणो का ताप;
गिर रह पीले जीवन पात
विरस क्षण सिसक, खिसक चुपचाप ।
अस्थि पजर अब जग की डाल
भर रही हिल हिल ठण्डी साँस ।
कुहासे मे स्मति के आवत
विगत यौवन के चल मधुमास ।
मूल फूलो के आलिगन
वात हत लतिका भू लुण्ठित,
न अव वह गुजित तरु जीवन,
न जीवन सगिनि ही परिचित ।
न वह मधु रस, न रग गुंजार,
धूलि धूसर गम्भीर दिगत,

फूल फल, रच भव स्वप्न प्रसार,
बीज म लय फिर हुआ अनन्त ।
दृगो म हँसते जीवन अश्रु,
कमल म ज्यो हिम जल थर थर ।
शान्त नीरव आत्मिक सतोष
गया भव क्लान्त हृदय म भर ।
रूप रगो की मासल देह
तीलियो की अब त्वक पिंजर,
गूढ नि शब्द गिरा म लीन
मुखर खग के अतमुख स्वर ।

चल रहा झुक लाठी पर आज
वृद्ध, जीवन के प्रति साभार,
छोड चेतन जड का अवलम्ब
करेगा मत्यु द्वार फिर पार ।
अकेला वह विशिष्ट रे पान्थ,
न पथ के सँग यात्रा का अन्त,
विश्व मे रिक्त व्यक्ति का स्थान
नही भर सकता स्वय अनन्त ।
मारता वह विनोद से आख
दख नव युवति युवक को साथ,
झुरियो हसती नीरव हास,
फूलता पेट, फूलता माथ ।

पक्व जीवन का फल वह पूण,
तप्त उर चम रन्ध्र चरिताथ,
खीच सकते न देह मन प्राण
विश्व प्राणो स सार पदाथ ।
व्यग्र रे अमृत अनिल मे आज
व्याप्त होने को ज्यो क्षण श्वास,
विकल उडने को खग, पर खोल,
छोड अस्मात देह तरु वास ।

पितामह पलित काँस के केश,
पुत्र प्रिय पौत्रो का अब घर,
वधू अचल म नव शिशु देख
सोचता कुछ तटस्थ अन्तर ।
सोच रहा वह या मन की आँखो में जगत्तर
सूक्ष्म जगत हो रहा स्वप्न के पट पर गोचर ।
श्रान्त इन्द्रियो की निद्रा से जाग्रत अन्तर
देख रहा, मै जीवन की छाया से हूँ पर ।
समदिक जीवन से प्रिय ऊध्व उसे अब जीवन
प्रीति मधुरिमा से प्रिय अब शिव सत्य सचरण ।

खडा द्वार पर जीवन के कंकाल सा मरण,
मोह दिशा का मिटा, काल से शेष सभी रण !

क्या है मृत्यु ? गहन अन्तर मे
उठता रह-रह प्रश्न भयानक,
शेष यही हो जायेगा क्या
जीवन का करुणान्त कथानक !
खुलते हैं स्मृति के पट पर पट
विगत दृश्य होते क्षण गोचर,
स्वप्न चित्र-से वय आयु के
उडते धूमयोनि से नभ पर !

अह, तृष्णा के वाष्पो की क्या
माया यह भगुर जग जीवन !
सोया काल दिशा शय्या पर
स्वप्न देखता या क्या क्षण-क्षण !
देह त्रिधन का द्वार पार कर
आत्मा कहा करेगी विचरण ?
क्या जीवन की गोपन तृष्णा
केवल जन्म मरण का कारण ?

आत्म मुक्ति के लिए क्या प्रमित
यह ग्रह ग्रथित रंग भव सर्जित ?
प्रकृति इन्द्रियो का दे वैभव
मानव तपकर मुक्त बने नित !
नही सत्त मूल हुआ सत्त रे
जीव प्रकृति के सब जन निश्चित,
लोक मुक्ति है ध्येय प्रकृति का
मनुज करे जग जीवन निर्मित !

तन से ही कर नव तन धारण
अमर चेतना करती सर्जन,
चेतन की भव मुक्ति के लिए
वाहन जड तन, मात्र न बन्धन !
मुक्त सजन आनन्द को स्वत
रूपो का नव बन्धन स्वीकृत,
आत्मा जीर्ण वसन तज रज का
नव वसनो मे होती भूषित !

आशिक उसे लगा जीवन का
जड चेतन का बौद्धिक दर्शन,
जड चेतन से परे अगोचर
जीवन के हैं मूल सनातन !
अन्न प्राण मन आत्मा केवल
ज्ञान भेद हैं सत्य के परम,

इन सबम चिर व्याप्त ईश रे
मुक्त सच्चिदान द चिर तन ।
तरुण रथी ने झेले बहु फूलो के सायक
भ्रात दष्टि वह रहा, विचारक, जनगण नायक,
अन्वेषक, शोधक, निज युग का भाग्य विधायक,
धम नीति दशन म थन म अपर विनायक ।
अब अनासक्ति का हृदय बना निमम भय कुण्ठित,
तक बुद्धि, अनुभूति, चेतना अमत मे द्रवित,
मुक्त हुआ वह सूक्ष्म सष्टि पट जिसस ग्र थित,
व्यक्ति विश्व से, इ द्रिय मन स जो प्रतीत नित ।
सहज चेतना स अब उसका हृदय प्रकाशित,
आतप सी वह जिस न भू रज करती रजित ।
शैशव यौवन शिशिर वस त उसी म चित्रित,
शुभ्र किरण वह, जीवन इ द्रधनुष मे सज्जित ।

आज समस्त विश्व म दिर सा
लगता एक अखण्ड चिर तन,
सुख दुख ज म मरण नीराजन
करते, कही नही परिवतन ।
ऊषा के स्वणिम गुण्ठन से
आभा अमर स्पश करती मन,
पदतल पर इलथ जीवन छाया,
सम्मुख ज्योति देश अब नूतन ।

पुण्य हरित भू का दूर्वादल
पाप ताप मे सतत अवलुप्त,
स्वग चेतना सदश उतर अब
उस पर धूप खडी ज्यो जीवित ।
टूटी मन की जाग्रत निद्रा
क्षीण अहम का शशि छायानन,
विहगो के प्रात कलरव म
मिलता शाश्वत लोक जागरण ।
विनत पद्म स ध्या आँगन म
मौन प्राथना, आत्म समपण,
ताराओ के स्तिमित स्वग मे
सोयी अपलक शा ति चिरन्तन ।

खुला गगन मे आज मुक्त मन,
नील योनि म अब वह सु दर,
आसन मे केवल उसका तन
अ तरतम मे स्थित अब अ तर ।

अटल शा ति म भव सघषण,
अमत अक मे ज म औ' मरण,

अतल अकूल चेतना सागर,
क्षुब्ध मात्र भव सलिल आवरण!

हुआ हृदय में स्फुरित अचानक
सत्य निखिल जग में जो व्यापक,
यहाँ देखना रहा वह अथक
क्या? वह जिसमें रे नित अपृथक्!

वही तिरोहित जड़ में जो चेतन में विकसित
वही कुसुम मधु सुरभि, वही मधुलिह् चिर गुंजित!
वस्तु भेद से चिर अभूत ही भव में मूर्तित,
वह अमेय, स्वयं सचालित एक, अखण्डित!
अध ऊर्ध्व बहिरन्तर उसमें सृष्टि संचरण,
सान्त अनन्त, अनित्य नित्य का वह चिर दर्पण,
तत्व, चेतना से न बद्ध, वह गुण निग शोभन
मय, सत से परे, अनिर्वचनीय, वह परम!

उतर चेतना पुन बनी मन
खुला रहस्य, सूक्ष्म का दर्शन!
जगा दृष्टि में इन्द्र-धनुष का
बहिरन्तर जग जीवन चित्रण!
स्वप्न चेतना निर्झर भव में
अमृत कर रहे शाश्वत वर्षण,
स्फुरित दीप्त भोरों में भासित
स्वर्णिम स्मित उर नभ शोभन!
सूक्ष्म शक्तियों में चिर ज्योतित
अन्तर का निःस्व चिद् गगन,
बहिर्जगत रंजित चेतन का
मात्र चित्र छाया अवगुण्ठन!

गगन उगे युग-युग से संचित
[illegible] संस्कृति निर्मित,
नीति धर्म आदर्श शील गुण
जन समाज जीवन में गुम्फित!
शान्ति बने सौरभ से दीपित
[illegible] [illegible] में शोभित
[illegible] [illegible] के [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] में [illegible]!

[illegible] [illegible] [illegible] हुआ जो [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] जीवित!
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible]

शिल्पी सी चेतना जागरित
करे लोक मानव मन निर्मित !

मानव का देवत्व केंद्र हो,
परिधि जगत जीवन हो विस्तत,
जीवन का ऐश्वय अपरिमित
मानव ईश्वर को हो अर्पित ।
बहिजगत के वैभव का मद
अतर्मानव से हो चालित,
ऋत चित की आभा से चुम्बित
मनुष्यत्व हो पूण प्रस्फुटित ।
वस्तु परिस्थिति हो मनुजोचित,
त्याग भोग का हो वर साधन,
रुचि स्वभाव वचित्र्य से ग्रथित
जन जीवन लीला हो शोभन ।
सजन शील हो मानव चेतन
मानवता मे कुसुमित जीवन,
जग हित जीवन मधु हो सचित,
हो अलिप्त कर्मों से जन मन !

सब शक्तिमत्ता आत्मा की
जीव सष्टि मे बहुमुख विकसित,
रुचि अनुकूल विकास व्यक्ति का
श्रेयस्कर मानव समाज हित ।
ज्ञानी कर्मी शिल्पी सनिक
एक सत्य के अवयव निश्चित,
अतपथ से निखिल चराचर
आत्मा के बल से सम्पोषित ।

भू रचना का भूति-पाद युग
हुआ विश्व इतिहास म उदित,
सहिष्णुता सद्भाव शाति से
हो गत सस्कृति धम समन्वित ।
वथा पूव पश्चिम का दिग भ्रम
मानवता को करे न खण्डित,
बहिनयन विज्ञान हो महत
अतद ष्टि ज्ञान से योजित ।

पश्चिम का जीवन सौष्ठव हो
विकसित विश्व तत्र मे वितरित
प्राची के नव स्वर्णोदय से
ज्योति द्रवित भू तमस तिरोहित ।
लोक नियति निर्माण करें नव
देश देश के विबुध विपश्चित

राष्ट्र नायको के संग दुवह
राज कर्म मे हो सक्रिय चित !
सर्वोपरि मानव संस्कृत बन
मानवता के प्रति हो प्रेरित,
द्रव्य मान पद यश कुटुम्ब कुल
वर्ग राष्ट्र मे रहे न सीमित !
एक निखिल धरणी का जीवन,
एक मनुजता का संघर्षण,
अर्थ ज्ञान संग्रह भव पथ का
विश्व क्षेम का करे उन्नयन !

दिव्य क्षेत्र हो जो भू जीवन
युक्त निखिल हो भू के मानव,
अन्तर्जीवन का प्रवाह ही
भर सकता जग में समरस नव !
नही दिव्यता स्वप्न कथा रे
वह अन्तरतम म अन्तर्हित,
सार तत्त्व वह मनुष्यत्व की
निखिल सृष्टि की गति म झकृत !

विजातीय हो कलुष तमस दुख,
स्वजातीय देवत्व चिरन्तन,
मानव तू शुक्रोसि स्वरसि
भ्राजोसि ज्योतिरसि, सत्य ऋषि वचन !
मानव के उर के मंदिर म
स्वर्ग प्रीति की शिखा प्रज्वलित
है देवत्व धाम मानव का,
वह रे मनुज नियति, यह निश्चित !

नर नारी का रुद्ध हृदय रे
आज स्वर्ग की लय स वचित,
वे प्रभात के स्वर्णातप से
रज तन म न विचरत ज्योतित !
दह मोह अधिकार प्रणय से
लोक चेतना भू की पीडित,
युवति युवक जीवन सागर म
नहीं प्रीति लहरो म दोलित !

क्या मानव यौवन वसन्त-सा
हो न लोक जीवन मे कुसुमित,
मधुर प्रीति हो सामाजिक गुण
प्राण भावना आत्म समर्पित !
करें मुक्त उपभोग हृदय का
नर नारी निज गंध म प्रेरित

आदर प्रीति विनय हो उर म,
भग लालसा का मुख संस्कृत।

भावी सन्तति को दे मानव
पुण्य चेतना की छवि दीपित,
हो मौलिक संस्कार वधू का
जागत, कृत्रिमता से कुण्ठित।
जाति प्रसू वह, स्वय प्राकृतिक
वरण वृत्ति हो उसकी विकसित,
नर का पौरुष जगे, पुन वह
द्रोही पशु हो मानव निश्चित।

हो प्रतीति परिणय प्राणो का,
कुल दीपक सुत भू के रक्षक,
नर नारी का लौकिक जीवन
यौवन आवेगो का शिक्षक।
हृदय तमस आलोक-स्रोत पा
हो जीवन सौन्दय मे द्रवित
प्राण कामना सजन शील बन
धरा स्वग रचना म योजित।

आज पारिवारिक जग जीवन
अश्रु नयन कलहो से क्वलित,
परिणय के अगणित पापो से
बद्ध मनुज चेतना कलन्कित।
जब तक मानव हृदय देह के
नर नारी मानो म खण्डित,
नही मानुषी रे वह सस्कृति,
वह सामाजिकता अभिशापित।

नर नारी का मुक्त हृदय ही
निकष प्रकृत सस्कृति का केवल,
अकित उस पर शोभा रेखा
मनुष्यत्व की हो स्वर्णोज्वल।

जिस जगती की चित्र प्रकृति नित
शत ध्वनि वर्णों से सुख मुखरित,
वहाँ न क्यो कुसुमित अवयव जन
विचरें अत श्री स दीपित।
हँसता जहा अमर तारापथ
धरा नाचती श्वसित तरगित,
वहाँ न क्यो मानव जीवन हो
प्रेम रूप आशा स स्पदित।

दिखा उसे देवत्व सार मानव जीवन का,
पाप पुण्य सदसद का जगत, जगत भू मन का।
गत जीवन की छाया से भू का मन आवृत,
निज अन्तःस्थ किरण से जनगण अभी अपरिचित।

बहिरंतर वैभव का हो जो विश्व समन्वय
रूपान्तरित जगत जीवन हो, नव स्वर्णोदय!
मूल सत्य देवत्व मनुज का रे जो निश्चय
दैन्य दुरित का मन तब केवल आत्म पराजय!
मानव को जो देव मान हम सोचें क्षण भर
गोचर तमस विकृति का कारण हो तब बाहर!
दिव्य उषा के लिए क्षेत्र जो रचें लोकगण
स्वर्ण किरण हँस धरे धरा पर ज्योति के चरण!

मन ने ज्यों दृग खोल किया जीवन को विकसित
आत्मा का संचरण करे मन को आलोकित!
प्रीति शिखा में भेद बुद्धि जल उठे प्रज्वलित,
ऊर्ध्व चेतना विचरे जग जीवन में मूर्तित!

दिखा उसे मानव भविष्य छाया सा चित्रित
मन से नहीं मनुज की भावी होगी निर्मित!
मानव के ईश्वर को नव जीवन अंगीकृत,
हृदय क्षितिज में दिव्य मेघ वह उठता ज्योतित!
दीप भवन युग विद्युत युग में ज्यों दिक् शोभित
मन का युग हो रहा चेतना युग में विकसित!
द्विधा बुद्धि में मनु न रहेगा अधिक विभाजित,
जन-मन के अणु से होगी चिच्छवित प्रवाहित!

प्लावित करती शिशु अधरों को
अंतर की आभा स्मिति निश्छल,
वृद्ध सोचता किन स्थितियों में
शिशु को बढ़ना होगा प्रतिपल!
युग जीवन की रज को लिपटा
कैसा रंजित होगा वह मन
जन्मों के किन संस्कारों का
उसके अंतर में आवपण!

अंतर्यामी पुरुष करेंगे
निश्चय उसका नव पथ ज्योतित,
पर, सीमाओं का मानव मन,
काँटों का जग का मन कुंचित!

नहीं ज्ञान से होता अविकल
समाधान मानव के मन का,

व्यक्ति विश्व से ही रे केवल
है सम्बन्ध नहीं जीवन का।
गूढ़ रहस्यों के अभेद्य स्तर
जिन पर जीवन की गति निर्भर,
अवचेतन प्रच्छन्न मनस् का
निस्तल अविच्छिन्न रे सागर।

वयस भार से झुका धनुष-सा
पृष्ठ वय रेखांकित आनन,
दृष्टि क्षुधा निद्रा भी क्रमश:
शिथिल हुई अब, मन्द स्मृति श्रवण!
प्रात ब्राह्म मुहूर्त में स्वत
खुल जाते यात्री के लोचन,
एकाकी अन्तर करता तब
प्रभु से नीरव आत्म निवेदन।

हे जीवन आराध्य, हृदय वासी, हे मानव ईश्वर,
मंगलमय, तुम सर्व प्रथम अक्षय करुणा के सागर।
माता, पिता, पुत्र, भार्या, निज पर, जन्मा के सहचर,
विश्व योनि, तुममें अनादि से जग के निखिल चराचर।
आते जाते जन्म मरण बहु तन में शैशव यौवन,
आशाऽकांक्षा राग द्वेष मन में करते संघर्षण,
नीति धर्म आदर्श विविध बनते जीवन में बन्धन,
तुममें जगते दिशा काल, लय होते, देव परात्पर!

खोज निरन्तर तुम्हें, अपरिमित महिमा से हो विस्मित,
नेति नेति कह बुद्धि मनुज की कब से प्रणत, चमत्कृत!
हृदय सुलभ तुम, सहज कृपा कर देते उर तम ज्योतित,
ज्यों पारस का परस अयस का स्वर्ण रहस रूपान्तर!

सदसद कारण-काम प्रकृति के केवल मात्र प्रयोजन,
देव तुम्हारी अमित दया से होता भव का पालन,
तुमसे रहित अचिर अपूर्ण जग तुमसे पूर्ण चिरन्तन,
तुम हो, भव है शून्य एक के गुण से गणित निरन्तर!
तुमसे जो मन युक्त, सकल जग जीवन हो आराधन,
प्रेम, तुम्हारे हित माया का पाश मुक्ति हो प्रतिक्षण,
तुममें केन्द्रित लोक योजना बने स्वर्ग सी पावन
मानव के घटवासी, दो मानव को नव जीवन वर!

× × ×

रहे निर्निमिष भौतिक लोचन
प्रभु प्रभु भक्त गये अभिन्न बन
आप्त सच्चिदानन्द चिरन्तन!
अयं अमर्त्य का मर्त्य पर्यटन!

श्रवण गगन मे गूज रहे स्वर
ॐ ऋतो स्मर कृत ऋतो स्मर !
सृजन हुताशन की हवि भास्वर
बनी पुन जीवन रज नश्वर !

दृष्टि दिशा मे ज्योति मूत स्वर,
ॐ कृतो ऽ स्मर कृत ऽ स्मर
ऋतो ऽ स्मर कृत ऽ स्मर !

अशोक वन

भक्ति प्रारा

श्री मथिलीशरणजी गुप्त !

योग्य नही कुछ भेंट आप श्री मैथिली शरण,
गीत मथिली के गा छूता स्नेह से चरण।
शैशव ही से रहा आपके प्रति आकर्षण
ललित भणिति का किया प्रीति वश चपल अनुकरण।
अमर भगीरथ आप, रसात्मक तृषा कर हरण
स्वरापगा का प्रथम कराया मधुर अवतरण।
सरस्वती से स्वय आपका सुन वीणा क्वण
कण बन गये जन के प्यासे जह्नु के श्रवण।
'सूर सूर तुलसी शशि', लगता मिथ्यारोपण
स्वर्गंगा तारापथ में कर आपके भ्रमण।
स्वर्ण कलश कवि यश की यशोधरा नि सशय,
बसा गये साकेत, शिल्पि, नव आप चिरतन,
व्यथा कथा लिख गये गुप्त हृत्पत्र पर अभय
भारत नारी तीय उर्मिला का उर क्रदन।

उपक्रम

धरती मे सोया था जीवन !
चिर निद्रा से जग, जड तम से
करना पडा उसे सघर्षण !
जीवन का था नव्य सचरण,
हुआ पुरातन मे परिवर्तन,
उसने कच्छ वराह रूप धर,
प्रतिक्रिया मद किया विमर्दन !
धीरे स्वप्नो मे अँगडा घन,
जीवन शय्या पर जागा मन,
कटु-विरोध सह, जिसने सीखा
जीवन पर करना अनुशासन !
मन था देश काल से सीमित,
जीवन भगुरता से पीडित,
तपकर वह जल उठा शिखा सा
दिव्य चेतना मे भव मोहन !
इस प्रकार चित् शक्ति निर्वर्तित,
हुई जगत जीवन मे विकसित,
मानव ने छुए असीम के
छोर, तोड सीमा के बधन !
ज्यो - ज्यो हुई चेतना जागत
प्रभु भी जग मे हुए अवतरित,
अतमन मे परिणत होकर
हुआ प्रतिष्ठित सत्य चिरतन !

(१)

अपलक नील गगन मुख तकती ध्यान - मग्न बैठी वैदेही !
ऊर्ध्व मना, वह कब थी देही ?
मर्म व्यथा करता अशोक वन,
शत सहस्र युग करते क्रन्दन,
निखिल प्रकृति, तृण तरु, चलोर्मि जल,
सुरभि, किरण, नभ उसके स्नेही !
कपती तन पर छन तरु छाया
उर का द्वन्द्व उमड हो आया,
सूने लगते गृह आँगन वन,
राम बिना, जो त्रिभुवन गेही !
राम जानकी को बिलगाकर
उमड रहा दुख से भव सागर
लहराती कण - कण मे आशा
धर्म सेतु प्रभु बाँधेंगे ही !

(२)

कैसा था वह परम पुण्य क्षण !
लता भवन से प्रकट हुए थे
जब दो भ्राता श्याम गौर तन ?
परम रूप प्रभु नव इन्दीवर,
प्रीति हस लक्ष्मण पद अनुचर,
जाग्रत मानस म अनन्त छबि
निद्रित जल मे शान्त स्मित गगन !
अमित नील ही प्रभु म नर तन,
शुभ्र शरद से निर्मल लक्ष्मण,
दल एक ही शोभा अपलक
बनी सूक्ष्म दर्शनमय चितवन !
खोल लिये प्रभु ने लोचन मन
खुले दृष्टि के भौतिक बधन
निज सीमा कर पार नयन ज्यो
भूल गये क्षर रूप विलोकन !
जगा मनोलोचन म तत्क्षण
विश्व श्याम तन आभा का घन !

दिखा चेतना की छाया - सा
दिपि पल में चित्रित जग जीवन!

सूक्ष्म राम न प्रथम निज चरण
धरे धरा पर, किया अवतरण,
पा सीतामय प्राण पीठ प्रिय,
भू के हृदय कमल की पावन!

(३)

वन की भ्रमर क्या गायेगी ?
कहती वह शक्ति स्वर में — क्या,
किरण तिमिर में खो जायेगी ?

भस्म हो चुकी जो भू रज जल,
उठी शिखा - सी जो श्री उज्ज्वल,
जगी चेतना धरती की जो
वह क्या भू पर सो जायेगी ?

पृथ्वी की पुत्री यह सीता
पृथ्वी जिससे हुई पुनीता
वह क्या आदिम भू जीवन के,
छाया तम को अपनायेगी ?

छूकर राम चरण जन पावन
बनी धरा प्रतिमा जो चेतन,
वह चिन्मयी लिपट जड़ रज से
फिर क्या मृण्मय हो पायेगी ?

भूल गयी जो तन, अपनापन,
जिसके मन का बना राम तन,
रूप गंध रस की मृत रज को
वह ज्योतित कर न उठायेगी ?

(४)

क्या अशोक वन है, क्या सीता ?
वह सुख वैभव स्वर्ग, और यह
जन मंगल की मूर्ति पुनीता!

एक युगांत, रुद्र धनु खण्डन,
कृषि युग सजन राम अवतरण,
जन-मन धरणी, जग जीवन कृषि,
संस्कृति कृषि श्री, क्षितिजा प्रीता

गत जीवन ममता ही घर तन
जन मन में थी माया रावण
मिटा धरा से उस विरोध को
सीता हुई अशेष गहीता ?

रावण था युग वैभव प्रतिमा,
अमित प्रताप बुद्धि बल गरिमा,

युग आकांक्षा से अविद्ध वह,
जन-मन धनु मही थी भीता ।
जन आकांक्षा को था उठना,
प्रभु को उतर मनुज था बनना,
भू ईप्सा को स्वग दया से
होना था जग हित परिणीता ।
जब आते महान परिवतन
प्रभु तब भू पर करते विचरण,
यह इतिहास मनो जीवन का,
सजन विकास, चेतना गीता !

(५)

अवधि हो गयी, देवि सजा दूँ फूलों से तन !
लंकापति आयेंगे अब करने अभिवादन !
मन्दोदरि के भेजे पावन
नन्दन वन के पुष्प आभरण
दमक उठेंगे तन की छवि से
ज्यों शशि द्युति से नवल शरद घन !
ये सुरगुरु के तोड़े शुचि फल
ग्रहण करो, हो पुन ये सफल
स्वग पेय लो यह मृदु मादन
करो सुधा से मुख प्रक्षालन !

लंका का यह शाश्वत मधुवन
देवि, तुम्हारी छवि का दपण,
नत चितवन, मृदु चरण सहज स्मिति
बन जाते शत मुकुल तृण सुमन !
पुलकित गन्ध व्यजन मलय पवन,
उठ-उठ लहरें करती दशन,
तुम भूमिजे धरा की शोभा,
क्या आश्चय प्रणत जो रावण !

चेरी त्रिजटा निर्निमेष मन
करती नित नीरव नीराजन,
स्नेह दृष्टि से हृदय कामना
उठकर दीप शिखा जाती बन !

(६)

शोभे, अभिनन्दन हो स्वीकृत,
लंकापति हो उपकृत ?
पुष्पों से भी श्री कोमल तुम,
पुष्प करूँ क्या अर्पित !

जिस अभिलाषा से जर्जर मन,
जिन स्वप्नों में अनिमिष लोचन,
जिस मद से रावण है रावण,
तुम्हें देख हो जाते प्रशमित ?
त्रिभुवन में विश्रुत जो 'दानव'
तुम्हें देख बन जाता मानव,
कौन मोहिनी तुम ? रावण की
माया भी हो जाती मोहित !

दर्प दलित अब मेरा जीवन
विगत चेतना का पावक कण,
पा सुरमाया पवन, शिखा बन,
बुझने को हो उठा प्रज्वलित !
देख रहा मैं विस्मित लोचन
घेरे राम तुम्हें, आभा घन,
दीपक की निष्कम्प शिखा तुम
अमित ज्योति मण्डल से मण्डित !
अखिल ज्ञान पूजन-आराधन,
रण कौशल त्रिभुवन वैभव-धन,
मुझको लगता, सार हीन हैं,
यदि वे नहीं जगत मंगल हित !

रावण को प्रिय नहीं नारि तन,
वह सुरांगनाओं का मोहन,
माया से भी कर सकता वह
पल में शत सीता तन निर्मित !
मुझे चाहिए, देवि, यह हृदय,
निखिल सृष्टि का जिसमें आशय,
प्रथम बार यह हृदय धरा पर
आज हुआ अवतरित कि विकसित !

(७)

क्या दूं तुम्हें, रक्षपति उत्तर ?
इस जग में केवल वैदेही
हृदय, राम केवल हृदयेश्वर !
धरती की आकांक्षा सीता
त्रिभुवन के पति से परिणीता,
भू पर उसके पद, नभ में मन
हृदय राम में लीन निरंतर !
सतत लोक मंगल में जो रत
भू का हृदय राम का अनुगत,
क्या तुम बाँध सकोगे उसको,
घट में समा सकेगा सागर ?

युग - युग से विच्छिन्न जडावृत
जग जा शक्ति हुई फिर केंद्रित,
क्या ममत्व, के दोने मे वह
ज्वाल रहेगी ? सोचो क्षण भर !
वही राम जो जीवो मे क्षर
वे जीवो के परे परात्पर,
सीता से वे युक्त जगत से,
तुममे बनो जो कि प्रभु अनुचर !

हरा राम न मोह निशा भय
उठा पक से पद्म भू हृदय,
छोडा मोह निशाचर - पति अब,
प्रकट हुए लोकोदय दिनकर !

(८)

भुवन विदित मैं भू अधिकारी !
जीत सकेंगे मुझको राघव,
देवि, मुझे है सशय भारी !
सात्विक रघुपति रावण माया
नही जानते, क्या है छाया !
निखिल भुवन इस अचित शक्ति की
सृजन - शीलता पर बलिहारी !
घरा गर्भ भीतर गहरा तम,
जिसमे जीव रहे अविरत भ्रम,
क्षण - क्षण के कटु सघर्षण से
उठी स्वर्ण की लका सारी !

मानव वही रहेगा मानव
चढा पीठ पर उसके दानव,
वही महीपति जो भुजबल की
बाँध सकेगा चारदिवारी !

रूप गध, रस शब्द कल्पना
यह ममता की नही जल्पना
गाढ लालसा की मदिरा क्या
छोड सकेगा भूमि विहारी ?
मिट सकती जो मन की तृष्णा
होती धरा न सागर - वसना,
सम्मोहन की रत्न छटा को
त्याग बनेगा कौन भिखारी ?
देवि, युद्ध से होगा निर्णय
किसका होगा धरणि का हृदय,
स्वप्न शयन माया का तजकर
बन न सकेंगे जन अभिसारी ?

(९)

पचवटी की स्मृति हो आयी!

नील कमल में, नील गगन में,
नील वदन ही दिये दिखायी!

सन्ध्या की आभा मे मोहन
पचवटी उठ आयी गोपन,
झूली सम्मुख, प्रिय संग चौदह
बरसों की स्वर्णिम परछाँई!
कौन रहा वह सोने का मृग
मोह लिये जिसने मेरे दृग?
जगी चेतना थी केवल, मैं
मन से राम न थी बन पायी!
भू संस्कार पुराने घेरे
उपचेतन मन को ये मेरे,
भू के गत जीवन की छाया
मन म थी प्रच्छन्न समायी?

विषय मोह मिस चेतन मे जग
होना था मन से उसे बिलग,
माया मृग बन वह मरीचिका
ज्यो सोने का तन धर आयी?
जग जीवन सीता की काया
जन-मन से थी लिपटी छाया
गत युग की लका मे उसने,
कर प्रवेश, नव ज्वाल लगायी!
शात भूमिजा को भू गाथा,
वह तापसी हरेगी बाधा,
आज हृदय स्पन्दन में उसके
प्रभु ने जय दुन्दुभी बजायी!

(१०)

राम दूत मैं, प्रभु पद अनुचर!

पहचानो, माँ, राम मुद्रिका,
सूक्ष्म परिधि सी, त्रिभुवन भीतर!

जननि, तुम्हे नित निज उर म धर
पत्र पुष्प तृण पर करुणाकर
विरह व्यथा मिस अश्रु बहाते
मानव मन की दुर्बलता पर!

देवि, सकल ज्यो तृण तरु, खग मृग,
बने सर्वदर्शी प्रभु के दृग,
निखिल धरा मे खोज तुम्हें वे
उत्सुक तरने को भवसागर!

समवेदना तपित जन का मन
मात, हुआ अब जाग्रत पावन,
कौन मनुज की कहे बने सब
प्रभु पद अनुचर उपनर, वानर।
राम नाम प्रभु से भी बढ़कर
बना आज जन मन का ईश्वर,
अखिल सृष्टि का सार तत्व वह,
स्वर्ग मुक्ति सोपान चिर अमर।

शूर वीर नर ले संग वानर
प्रभु आयेंगे पार द्रुत उतर,
मर्यादा का सेतु बाँधकर
चिर भव तृष्णा के सागर पर।

अग्नि शिखा से करना सूचन
मुझको प्रभु का निकट आगमन,
सुन प्रभु धनु हुंकार हिलेगी
स्वर्णपुरी कम्पित हो थर थर।
यह प्रभु का संदेश जग माता,
राम भूमिजा उर के ज्ञाता,
धरती सा धीरज धर काटो
अवधि शेष यह अंतिम वत्सर।
सुन मारुति के मलय-स वचन
पुलकों से लद गया प्रनति तन,
लहरा उठा हृदय में सागर
बाष्प घनों से गये नयन भर।

(११)

हे पावक वाहक, धन्य, धन्य।
जग धूम केतु से शिखा पुच्छ,
तुम उल्का से टूटे अनन्य।
सद्यो सौधों से अट्टों पर
ज्यों तड़ित नाचती क्षत तन धर,
लंका का ही उर दाह सुलग
अब उसे बनाता हो अरण्य।
ये दुर्ग हर्म्य जो स्वर्ण शिखर
परिताप पाप इनके भीतर,
ये भुज बल सत्ता के भूधर
हैं अहं धरा पर अहम्मन्य।

घर दग्ध दुरित हो स्वर्ण रूप
हैं बने रक्षपति कीर्ति स्तूप,
तुम भूमि भस्म में ज्वाल पल,
शापों को गढ़ लंका जघन्य।

चिर अंध रूढ़ियों में पोषित
जन-गण धन मद बल से शोषित,
निज प्रजोत्कर्ष के विमुख सतत
राक्षस पति जन-मन में नगण्य।

युग-युग का कर्दम कलुष जला,
गत रीति-नीति के श्रृंग गला,
तुम रक्ष प्रजा के लिए बने,
जीवन चेतना शिखा वरेण्य।

(१२)

रक्त तरंगित आज सिन्धु तट।
गर्जन करते क्रुद्ध ऋक्ष कपि
युद्ध छेड़ते कोटि वीर भट।

उड़ते यथा रघुकुल के शायक
छँटते शत असुरों के नायक,
शूर्पनखा के साथ रक्ष कुल
लक्ष्मी की नासिका गयी कट।

भू लुण्ठित अब दनुजों का मद,
गड़ा शीश पर अमद का पद,
कुम्भकर्ण-सी दानव निद्रा
चिर सोने को गयी हो उचट।

सूर्य रश्मि या राघव के शर?
तिमिर तोम या दानव आकर?
शत-शत खड्ग शूल असि तन से
विद्युत लपटों-से रहे लिपट।

स्वर्णपुरी लोहित से लथपथ,
दनुज जाति का डूबा अब रथ,
गृद्ध श्रृगाल श्वान असुरों के
आमिष पर रहे झपट।

कैसे, देवि, रहेंगी जीवित
रक्ष पत्नियाँ हम, पति सुत मृत।
अब लंकेश विनाश उपस्थित,
विधि ने उनकी बुद्धि दी पलट।

आर्द्र नयन भूजा ने तत्क्षण,
आर्तों का दुख किया निवारण,
आभा स्मिति से दे आश्वासन
खोल दिये ज्यों हृदय तमस पट।

(१३)

नीरव मेघनाद उर गर्जन।
शक्ति छोड़ रण में लक्ष्मण पर
दवि, हृदय ज्यों करता क्रन्दन।

मन मे सोचा, जाकर इस क्षण
करूँ पुण्य चरणो के दर्शन,
छू चेतन के छोर शक्ति मिस
जड मन का हट गया आवरण ।
अंतिम अब दनुजो के कुछ क्षण
कहता है मुझसे मेरा मन,
प्राण भरेगा हरित धरणि मे
दनुजो पर यह दृग जल वर्षण ।
अथवा लक्ष्मण के हित शक्ति
देवि, अश्रु जल झरती मोचित,
करुण काल कवलित दानव गण,
देवो के हैं ईश चिर शरण ।

मृत्यु दनुज के लिए मान हैं,
यं राघव के मुक्ति बाण हैं
सद् विकास का, देवि, असद भी
है परोक्ष इस जग मे कारण ।
स्वाभिमान का जीवन जीवन,
चिर परिभव स श्रेष्ठ है मरण,
कल का सत्य मृषा बनता कल
जब होते भव युग परिवर्तन ।
भावी रहती नित्य तिरोहित,
हानि लाभ जीवन मरण रचित,
मेघनाद जीवन कृतार्थ अब
देख सत्य के ज्योति गति चरण ।

(१४)

दुसह वन के भीतर का वन ।
विपिन गमन के निखिल दुखो का
ज्यो कटु सार अशोक वन गहन ।
तज वैभव सुख राज भवन का
प्रभु ने पकड़ा पथ जो वन का
नाथ जानते रहे पथ वह
जन गृह मंगल का चिर पावन ।
कठिन भूमि कोमल पद गामी
वन मे थे सँग प्रिय, भव स्वामी,
ज्ञात रहा अंतर्यामी को
असि पथ वन विहरण का कारण ।

वाम नियति की व्यग्य नाटिका
श्रुत अशोक वन शोक वाटिका,
विद्ध जहाँ खर शकाओ से
मधुर भाव गामी मनश्चरण ।

चिर अंध रूढ़ियों में पोषित
जन - गण धन मद बल से शोषित,
निज प्रजोत्कर्ष के विमुख सतत
राक्षस पति जन - मन में नगण्य।

युग - युग का कर्दम कलुष जला,
गत रीति - नीति के शृंग गला,
तुम रक्ष प्रजा के लिए बने,
जीवन चेतना शिखा वरेण्य।

(१२)

रक्त तरंगित आज सिंधु तट!
गर्जन करते क्रुद्ध ऋक्ष कपि
युद्ध छेड़ते कोटि वीर भट।
उड़ते क्या रघुकुल के शायक
छँटते शत असुरों के नायक,
शूर्पनखा के साथ रक्ष कुल
लक्ष्मी की नासिका गयी कट।
भू लुण्ठित अब दनुजों का मद,
गड़ा शीश पर अंगद का पद,
कुम्भकर्ण - सी दानव निद्रा
चिर सोने को गयी हो उचट।
सूर्य रश्मि या राघव के शर?
तिमिर तोम या दानव आकर?
शत शत खड्ग शूल असि तन से
विद्युत् लपटों - से रहे लिपट।
स्वर्णपुरी लोहित से लथपथ,
दनुज जाति का डूबा अब रथ,
गद्ध शृगाल श्वान असुरों के
अंतिम चिह्नों पर रहे झपट।
कैसे, देवि, रहेंगी जीवित
रक्ष पत्नियाँ हम, पति सुत मृत!
अब लंकेश विनाश उपस्थित,
विधि ने उनकी बुद्धि दी पलट।

आर्द्र नयन भूजा न तत्क्षण,
आर्तों का दुख किया निवारण,
आभा स्मिति से दे आश्वासन
खोल दिये ज्यों हृदय तमस पट।

(१३)

नीरव मेघनाद उर गर्जन!
शक्ति छोड़ रण में लक्ष्मण पर
देवि, हृदय ज्यों करता क्रंदन।

मन मे सोचा, जाकर इस क्षण
करूँ पुण्य चरणो के दर्शन,
छू चेतन के छोर शक्ति मिस
जड मन का हट गया ग्रावरण।
अंतिम ग्रब दनुजो के कुछ क्षण
वहता है मुझसे मेरा मन
प्राण भरेगा हरित धरणि मे
दनुजो पर यह दृग जल वर्षण।
अथवा लक्ष्मण के हित शकित
देवि, अश्रु जल करती मोचित,
करुण काल कवलित दानव गण,
देवो के हैं ईश चिर शरण।

मृत्यु दनुज के लिए मान हैं,
ये राघव के मुक्ति बाण हैं
सद विकास का, देवि, असद भी
है परोक्ष इस जग मे कारण।
स्वाभिमान का जीवन जीवन,
चिर परिभव स श्रेष्ठ है मरण,
मल का सत्य मृषा बनता कल
जब होते भव युग परिवर्तन।
भावी रहती नित्य तिरोहित,
हानि लाभ जीवन मरण रचित,
मेघनाद जीवन कृतार्थ ग्रब
देख सत्य के ज्योति गति चरण।

(१४)

दुःसह वन के भीतर का वन।
विपिन गमन के निखिल दुखो का
ज्यो कटु सार अशोक वन गहन।
तज वैभव सुख राज भवन का
प्रभु ने पकडा पथ जो वन का
नाथ जानते रहे पथ वह
जन गह मगल का चिर पावन।
कठिन भूमि कोमल पद गामी
वन म थे सँग प्रिय, भव स्वामी,
ज्ञात रहा अतर्यामी को
असि पथ वन विहरण का कारण।
वाम नियति की व्यग्य नाटिका
श्रुत अशोक वन, शोक वाटिका,
विद्ध जहाँ खर दावाग्नो से
मधुर भाव गामी मनश्चरण।

'फिर भी ज्योति पिण्ड तारे गिन,
काटे मैंने विरह स्वप्न छिन,'
'सच है, प्रिये, सूर्य या शशि बिन
तारा भरा अनन्त दिग गगन।'

'गहन नील की प्रिये, कल्पना
क्या सम्भव शशि सूर्य के बिना?
प्रकृति पुरुष में स्वयं द्विधा हो
करता ब्रह्म अभेद्य भव सृजन।'

'नाथ, मिलन क्षण आज प्रथम क्षण,'
'प्रिये, स्वयम्भू क्षण यह पावन।'
'राम, हमारा फिर-फिर मिलना
संसृति का ज्यों नियम सनातन।'

'सच है, ज्ञात भेद तुमको पर,
विरह मिलन से हो तुम ऊपर,
जगत जननि तुम, तुमने जग हित
किया धरा पर आज अवतरण।'

(१७)

सीते, विजय मनाते जनगण।
ये आनन्द अश्रु कण तेरे
करें ज्योति कण भू पर वर्षण।

मुक्त आज भू, मुक्त निखिल जन,
दानव मुक्त, मुक्त भव जन मन,
देवि, तुम्हीं वह मुक्ति रूप, यह
मुक्त प्रतीति बने नव बन्धन।

सूर्य प्रभव रघुवंश पुरातन,
अंश उसी का एक हुताशन,
ऊर्ध्व प्राण आकांक्षाओं का
जो अनन्त अक्षय चिर धारण।

लोक कामना का यह पावक
धधक रहा युग-युग से धक धक,
देवि प्रवेश करो तुम उसमें,
यह चेतना परीक्षा का क्षण।

'क्षिति जल अग्नि पवन नभ से पर
जो ध्रुव राम अमर चिर अक्षर,
मैं प्रविष्ट जीवन पावक में,
असंदिग्ध हो भव जन गण मन।'

दानव माया से न पराजित
होंगे प्रभु के अनुज ऊर्ध्वचित,
अधोमुखी जड़ शक्ति पाश से
मुक्त शीघ्र होंगे जग लक्ष्मण!

दुखी ऊर्मिला के दुख से मन,
अतल अश्रु वारिधि वह जीवन!
रोते होंगे उर में आँसू,
अधरों पर स्मित होगा आनन!
प्रकट न करते होंगे लोचन
वर्षों से चिर विरह का दहन,
लगता होगा राज भवन भी
भिक्षु कुटी - सा, सूना निर्जन!
जिय बिन देह, नदी बिन वारी,
होगी प्रिय बिन वह सुकुमारी,
ग्रह, कराहता होगा ममर
उर में मूत विरह अशोक वन?

(१५)

स्वर्णपुरी यह, देवि, समर्पण!
लंकापति की मूर्ति गयी गल,
सजल हिरण्य शेष अब पावन!
भर सुवर्ण में सौरभ महिमा
देवि, गढ़ें रुचि संस्कृत प्रतिमा
सीता राम मयी सुर पूजित,
मानव बनें निखिल दानवगण!

दनुज जाति मर्यादा पथ पर
देवि, चलेगी बन प्रभु अनुचर,
एक हुए अब दक्षिण उत्तर,
धन्य आज का दिवस पुण्य पण!
पद धर पग चिह्नों पर पावन
सफल आज मन्दोदरि जीवन,
अखिल धरा के शोक पाप हर
सत्य, अमर अब यह अशोक वन!
आते होंगे विजयी रघुवर,
देवि, बिदा लेती रज छूकर,
फिर-फिर नत मस्तक हो भू पर
प्रभु दासी, मैं दास विभीषण!

(१६)

'विरह प्रलय, प्रेयसि प्रभव मिलन!
कब बिछुड़े हम और मिले कब
भूल गया मन सजन निवतन!'

'फिर भी ज्योति पिण्ड तारे गिन,
काटे मैंने विरह स्वप्न छिन,'
'सच है, प्रिये, सूर्य या शशि बिन
तारा भरा अनन्त दिग् गगन!'

'गहन नील की प्रिये, कल्पना
क्या सम्भव शशि सूर्य के बिना?
प्रकृति पुरुष में स्वयं द्विधा हो
करता ब्रह्म अभेद्य भव सृजन!'

'नाथ, मिलन क्षण आज प्रथम क्षण,'
'प्रिये, स्वयम्भू क्षण यह पावन!'
'राम, हमारा फिर-फिर मिलना
संसृति का ज्यों नियम सनातन!'

'सच है, ज्ञात भेद तुमको पर,
विरह मिलन से हो तुम ऊपर,
जगत जननि तुम, तुमने जग हित
किया धरा पर आज अवतरण!'

(१७)

सीते, विजय मनाते जनगण!
ये आनन्द अश्रु कण तेरे
करें ज्योति कण भू पर वर्षण!

मुक्त आज भू, मुक्त निखिल जन,
दानव मुक्त, मुक्त भव जन मन,
देवि, तुम्ही वह मुक्ति रूप, यह
मुक्त प्रतीति बने नव बन्धन!

सूर्य प्रभव रघुवंश पुरातन,
अंश उसी का एक हुताशन,
ऊर्ध्व प्राण आकांक्षाओं का
जो अनन्त अक्षय चिर कारण!

लोक कामना का वह पावक
धधक रहा युग-युग से धक धक,
देवि, प्रवेश करो तुम उसमें,
यह चेतना परीक्षा का क्षण!

'क्षिति जल अग्नि पवन नभ से पर
जो ध्रुव राम अमर चिर अक्षर,
मैं प्रविष्ट जीवन पावक में,
पर्श दिव्य हो भव जन गण मन!'

'धन्य देवि, सीते, सखि, प्यारी !'
'धन्य जग जननि, जनक दुलारी !
ज्वाला वसने, प्राभा दशने,
धरो धरा पर ज्योति श्री चरण !'

(१८)

'प्रभु, क्यों ली यह अग्नि-परीक्षा ?

सत्यसिन्धु, सशय के तम से
करें विभीषण की निज रक्षा !
सृजन वह्नि यदि ईश तेज कण
तब क्या नहीं स्वयं वह पावन ?

जलज जीव, प्रभु, सहज तरल जो
उसको कठिन अनल की दीक्षा !
'साक्षी राम बिना क्या सीता
नहीं दिव्य, जग जननि पुनीता ?
ईशावास्यमिदं न सब शुचि ?
गुह्य ज्ञान की दें प्रभु भिक्षा !'

'विश्व चेतना में प्रकाश तम,
परम चेतना में न द्वन्द्व भ्रम,
सुनो रक्ष, लक्ष्मण का उत्तर,
ब्रह्म तत्व की गहन समीक्षा !
'चिर अक्षर ही जीवों में क्षर,
स्वयं मुक्त वह पूर्ण परात्पर,
विश्व विवर्तन क्षर विकास की
है अनन्त शाश्वती प्रतीक्षा !
'नित सत राम, शक्ति चित सीता,
अखिल सृष्टि आनन्द प्रणीता,
प्रकृति शिखा सी उठे, शक्ति चित
उतरे, निहित जगत में शिक्षा !'

(१९)

हनुमत रज का, नाथ, निवेदन !

जय जय जगत जननि, तम नाशिनि,
जय जय राम, पतित जन पावन !

क्षमा करें, यदि पवन सुत चपल,
तात दाय यह जीवन सम्बल
जननि दयाबल से सचारित
जगत्प्राण जो, पावक वाहन !

स्वामि पादुका का कर पूजन
गिनते भरत प्रभु से अनुक्षण,
सपदि अयोध्या चलें नाथ जो
भक्ति-धन्य हो भरत प्रभु मिलन।

हे घटवासी, दे हृदयासन
सतत प्रतीक्षा में भव के जन,
राज्यारोहण करें जननि युत,
चिर महिमान्वित हो मानव मन।

रिक्त पूर्ण हो, खण्ड हो सकल,
जीवनाब्धि हो बिन्दु बिन्दु जल
जय जय सीता राम, जयति जय,
जय लक्ष्मण, जय भरत शत्रुहन्।

स्वर्ण धूलि

[प्रथम प्रकाशन वर्ष १९४७]

डॉ० एन० सी० पाण्डे
को

डॉ० एन० सी० पाण्डे
को

द्वितीय सस्करण

सस्करण म मैंने रचनाओ का क्रम बदलकर उनमे इधर उधर बहुत परिवतन कर दिया है। आशा है पाठको को यह नया क्रम आयेगा।

७ बी स्टेनली रोड
इलाहाबाद
दिसम्बर १९५८

सुमित्रानदन पत

मुझे असत से ले जाओ तुम सत्य ओर,
मुझे तमस से उठा, दिखाओ ज्योति छोर,
मुझे मृत्यु स बचा बनाओ अमत भोर ।
बार बार आकर अ तर मे है चिर परिचित
दक्षिण मुख स, रुद्र, करो मेरी रक्षा नित ।

स्वर्ण धूलि

स्वर्ण बालुका किसने बरसा दी रे जगती के मरुस्थल में
सिकता पर स्वर्णांकित कर स्वर्गिक आभा जीवन मृग जल में !
स्वर्ण रेणु मिल गयी न जाने कब धरती की मर्त्य धूलि से,
चित्रित कर, भर दी रज में नव जीवन ज्वाला अमर तूलि से !
अन्धकार की गुहा दिशाओं में हँस उठी ज्योति से विस्तृत,
रजत-सरित सा काल बह चला फेनिल स्वर्ण क्षणों से गुम्फित !
खंडित सब हो उठा अखंडित, बन अपरिचित ज्यों चिर परिचित,
नाम रूप के भेद भर गये स्वर्ण चेतना से आलिंगित !
चक्षु वाक् मन श्रवण बन गये सूर्य अग्नि शशि दिशा परस्पर,
रूप गन्ध रस शब्द स्पर्श की झंकारों से पुलकित अन्तर !
दैवी वीणा पुनः मानुषी वीणा बन नव स्वर में झंकृत,
नवल युग पुरुष को निज तप से आत्मा फिर से करती सर्जित !
बीज बनें नव ज्योति वृत्तियों के जन मन में स्वर्ण धूलि कण,
पोषण करे प्ररोहों का नव अन्ध धरा रज का संघर्षण !
चीर आवरण भू के तम का स्वर्ण शस्य हो रश्मि अंकुरित
मानस के स्वर्णिम पराग से धरणी के देशान्तर गर्भित !

आर्षवाणी

ज्योति वृषभ

(१)

स्वर्ण शिखर से चतुर्शृंग हैं उसके सिर पर,
दो उसके शुभ शीर्ष सप्त रे ज्योति हस्त वर।
तीन पाद पर खड़ा, मर्त्य इस जग में आकर
त्रिधा बद्ध यह वृषभ, रंभाता है दिग्ध्वनि भर।
महादेव वह सत्य पुरुष औ' प्रकृति शीर्ष द्वय,
चतुर्शृंग सच्चिदानन्द विज्ञान ज्योतिमय।
सप्त चेतना - लोक, हस्त उसके निःसंशय,
महादेव वह सत्य ज्योति का वृष वह निश्चय।
सत रज तम से त्रिधा बद्ध, पद अन्न प्राण मन,
मर्त्य लोक में कर प्रवेश वह करता रंभण।
महादेव वह सत्य मुक्ति के लिए अनामय
फिर फिर हम्भा रव करता जय, ज्योति वृषभ, जय।

अग्नि

(२)

दीप्त अभीप्से, मुझको तू ले जा सत्पथ पर,
यज्ञ कुण्ड हो, अग्नि, हृदय मेरा अति भास्वर।
प्राण बुद्धि मन की प्रदीप्त घृत आहुति पाकर
मेरी ईप्सा को पहुंचा दे परम व्योम पर।
तू भुवनों में व्याप्त, निखिल देवों की ज्ञाता,
यज्ञ अंश के भागी वे, तू उनकी त्राता।
निशि दिन हवि दे बुद्धि कर्म की, भूरि नमन कर,
आते हम तेरे समीप, हे अग्नि, निरंतर।
निज यज्ञों में मरणशील हम करते पूजन
उस अमर्त्य का जो सबके अंतर में गोपन।
यदि तू मैं, मैं तू बन जाऊँ, निखिल ज्योतिमय,
तो तेरे आशीष सत्य हों, जीवन सुखमय।
ज्ञान रश्मियों से, मन से, कर तुझे प्रज्वलित
पाते हम सद्बुद्धि, तेज, सत्कर्मों को नित।
जिन जिन देवों का करते हम यजन प्रतिक्षण
वे शाश्वत विस्तृत हवि तुझको अग्नि, समर्पण।

ज्योति प्रचेता, निहित अकवियो मे तू कवि बने,
मर्त्यों मे तू अमत, वरुण के हरती बन्धन।
कैसे तुझे प्रसन्न करें हम, वरें दीप्त मन,
ज्ञात नही पथ, प्राप्त नही तप, बल या साधन।
कौन मनीषा यज्ञ भेंट दें, कौन हवि, स्तवन,
जिससे तेरी शिखा, अग्नि, कर सके वहन मन।

काल अश्व

(३)

काल अश्व यह तप शक्ति का रूप अनश्वर,
दिशा पृष्ठ पर धावमान, अति दिव्य वेग भर।
महावीय यह, सप्त रश्मियो से हो शोभित
चला रहा भव को सहस्रधुर,--प्राण उच्छवसित।
भुवन भुवन सब घूम रहे चक्रो - से अविरत,
महा अश्व यह, खीच रहा अश्रान्त विश्व रथ।
ऋतद्रष्टा ऋषि, त्रिकालदर्शी जो कविगण,
इस पर करते धीर विपश्चित ही आरोहण।
निष्ठुर विधि से पीडित जग के शेष चराचर
परिवतन चक्रो मे पिसकर होते जजर।
नाम रूप मे ही जिनका मन मोहित सीमित
प्रबल पदाघातो से वे नित होते मर्दित।
काल बोध विस्तृत करता मन को, देता बल
निखिल वस्तुएँ क्षण घटनाएँ जग मे केवल।
बहिरन्तर जो निज को कर सकते सयोजित
नही व्यापती काल अश्व गति उनको निश्चित।
अथवा जो निर्द्वद्व शुद्ध, निर्लिप्त, ऊर्ध्वचित
दिव्य तुरग पर चढ, जाते वे पार आत्मजित।

देव काव्य

(४)

तरुण युवक यह, कर्मों मे था जिसके कौशल,
रण मे अरियो के मद को करता था हत बल,
पलित वृद्ध उसको जाता है आज र निगल
मतक पडा वह वीर, साँस लेता था जो कल।
इस महत्वमय देव काव्य को देखो प्रतिपल,
क्षण भगुर यह विश्व, काल का मात्र रे कवल।
ज्यो हो जाता चन्द्र सूय की आभा मे लय
प्राण इन्द्रियाँ आत्मा मे मिलती नि सशय।
नित्य, इन्द्रिया से अतीत आत्मा का जीवन
अमर नाभि जो धन प्राण मन की चिर गोपन।

व्यक्ति केन्द्र है, विश्व परिधि, सत्ता रे प्रदाय
नियम सनातन सृजन शील परिवर्तन निश्चय।
नाम रूप परिधान पुरुष के मात्र रे वसन,
प्रात्मवान् होते न काल के दर्शन के प्रशन।
दिव्य पुरुष जो प्रति समीप, प्रन्तरतम में स्थित,
नहीं देख पाते जन उसको, वह प्रभिन्न नित!
देखो उसके दिव्य काव्य को संसृति-विस्तृत,
वह न कभी मरता, न जीर्ण होता, वेदाऽमृत।

देव

(५)

कर्म निरत जन ही देवों से होते पोषित,
निरलस रे वे स्वयं, प्रहर्निशि रहते जागृत।
दिति पुत्रों को प्रदिति सुतों के कर चिर प्राश्रित
मैंने अपने को देवों को किया समर्पित।
देवों का है तेज प्रमित सागर- सा विस्तृत,
वे सबसे रे महत्, नम्रता से चिर भूषित।
मानव, तुम शत हस्त करो वैभव एकत्रित,
प्रौ' सहस्र कर होकर उसे करो नित वितरित।
इस प्रकार सब पुण्य करो अपने में संचित,
अपने कृत क्रियमाण कर्म चिर कर संयोजित।
गांवों के पशु तजते ज्यों वन पशुप्रों का पथ
पाप कर्म तुम छोड, रहो सत्कर्मों में रत।
साथ चलो, सबके हित बोलो बनो संगठित,
साथ मनन कर, करो समान गुणों को प्रर्जित।
एक ज्ञान प्रौ' एक प्राण सब रहो सम्मिलित,
तुम देवों के तुल्य बनो, सहयोग समर्पित।
व्रत से दीक्षा, दीक्षा से दक्षिणा ग्रहण कर
उससे श्रद्धा, श्रद्धा से कर प्राप्त सत्य वर,
ऋतम्भरा प्रज्ञा से भर निज ज्योतित प्रन्तर
तुम देवों के योग्य बनो, बन मर्त्य से प्रमर!

पुरुषार्थ

(६)

कभी न पीछे हटनेवाले ही पाते जय,
बहिरन्तर के ऐश्वर्यों का करते संचय।
वह प्रतिजन का हो प्रथवा सामूहिक वैभव
ऐहिक प्रात्मिक सुख पुरुषार्थी के हित सम्भव।
ठुकरा सकते वीर मृत्यु पद जो पग-पग पर
प्रात्म त्याग, उत्सर्ग हेतु जो रहते तत्पर,

दीर्घ विशद विस्तृत जीवन धारण कर निश्चय
प्रजा-धान्य संयुक्त सदा बनते समृद्धिमय।
शुद्ध चित्त बन, दीप्त अभीप्सा हवि कर अर्पित
विश्व यज्ञ में, बनें मनुज सब अमृत, मृत्युजित्।
उठें सत्य से प्रेरित होकर दुर्बल, पीड़ित,
बने सत्य के सम्मुख सत्ताधारी विनमित।
ऋत की रे सम्पदा शुद्ध, निष्कलुष, सनातन,
सुनता है आह्वान सत्य का बधिर भी श्रवण।
दुह सुहस्त गोधुक कोई, सुदुघा गो को नित
हमें पिलाये सविता का रस, ऋत दुग्धाऽमृत।

अन्तर्गमन

(७)

दाँयी बाँयी ओर, सामने पीछे निश्चित
नहीं सूझता कुछ भी बहिरन्तर तमसावृत।
हे आदित्यो, मेरा मार्ग करो चिर ज्योतित,
धैर्य रहित मैं, भय से पीड़ित, अपरिपक्व चित।
विविध दृश्य शब्दों की माया गति से मोहित
मेरे चक्षु श्रवण हो उठते मोह विभ्रमित।
विचरण करता रहता चंचल मन विषयों पर
दिव्य हृदय की ज्योति बहिर्मुख गयी है बिखर।
तेजहीन मैं, क्या उत्तर दूँ करूँ मनन अब?
बहु द्वारों से बहिर्गमन कर मैं खोया अब।
भरते थे सुंदर उड़ान जो पक्षी प्रतिक्षण
तर्पित इन्द्रियाँ करती थी जो रूप संगमन,
आज श्रांत, विषयाघातों से होकर कातर
तुम्हें पुकार रही वे, ज्योतिर्मन के ईश्वर।
रूप पाश में बद्ध, ज्ञान में अपने सीमित,
इन्द्र, तुम्हारी अमित ज्योति हित वे उत्कण्ठित।
प्रार्थी वे हे देव, हटा यह तिमिर आवरण,
ज्ञान लोक में आज हमारे खोलो लोचन।
ज्योति पुरुष तुम जहाँ दिव्य मन के हो स्वामी,
निखिल इन्द्रियों के परिचालक, अंतर्यामी।
ऋत चित से है जहाँ सूक्ष्म नभ चिर आलोकित,
उस प्रकाश में हमें जगाओ, इन्द्र, अपरिमित।

एक सत्

(८)

इन्द्रदेव तुम, स्वभू सत्य सर्वज्ञ, दिव्य मन,
स्वर्ग ज्योति, चित् शक्ति मर्त्य में लाते अनुक्षण।

ग्रय ऋभुग्रो से रचित तुम्हारा ज्योति ग्रश्व रथ,
प्राण शक्ति मरुता से विघ्न रहित विग्रह पथ।
तुम्ही ग्रग्नि हो, सप्तजिह्व, मति दिव्य तपस द्युति,
पहुचाती जो ग्रमर लोक तक धी घृत ग्राहुति।
दिव्य वरुण तुम, चिर ग्रकलुष, ज्यो विस्तृत सागर,
तप पूत मन की स्थिति, उज्ज्वल, ग्रखिल पाप हर।
तुम्ही मित्र हो, ज्योति प्रीति की शक्ति समन्वित,
राग बुद्धि कर्मों मे समता करते स्थापित।
गरुत्मान तुम, ज्योतित पखो की उडान भर
ग्रात्मा की ग्राकाक्षा को ले जाते ऊपर।
तुम हो भग, चिर ग्राशा-सुखमय, शोक पापहन्,
सूक्ष्म दृष्टि, ईप्सा-तप की तुम शक्ति प्रयमन्।
मधुपायी युग ग्रश्विन, तरुण, सुभग, द्रुत, भास्वर,
रोग शमन कर, नव निर्मित तुम करते ग्रतर।
ग्रमृत सोम तुम, झरत दिव ग्रानन्द से मुखर
ग्रन्न प्राण जीवन प्रद, मुक्त तुम्हारे निर्झर।
काल रूप यम, निखिल विश्व का करते नियमन,
तुम्ही मातरिश्वा, सातो जल करते धारण।
तुम्ही सूर्य, ग्रालोक वर्ण, ऋत चित के ईश्वर,
पथ ऊपाए, दिव्य प्रेरणाएँ सहस्र कर।
तुम हो एक, स्वरूप तुम्हारे ही सब निश्चित,
विप्रो से तुम बहुधा बहु नामो से कीर्तित।

प्रच्छन्न मन

(६)

वेद ऋचाएँ परम व्योम म ग्रक्षय जीवित,
निखिल देवगण चिर ग्रनादि से जिसमे निवसित।
जिसे न ग्रनुभव परम तत्व का ग्रक्षर पावन
मन्त्र पाठ से नही प्रकाशित होता वह मन।
जिसे ज्ञात वह सत्य, वही रे विज्ञ विपश्चित,
ज्योतित उसका बहिरन्तर, ग्रानन्द रूप प्रसवित।
एक ग्रश भर मात्र बहिर्मुख इन्द्रिय जीवन
शेष ग्रश प्रच्छन्न मनस मे रहते गोपन।
ग्रन्तर्जीवन से जो मानव हो सयोजित
पूर्ण बने वह, स्वर्ग बने यह वसुधा निश्चित।
ग्रन्न प्राण मन ग्रतमन से हो परिपोषित,
सत्य मूल से युक्त, ज्योति ग्रानन्द रूप नित।
वाणी के रे तीन ग्रश उर गुहा मध्य स्थित,
ग्रधिमानस से दिव्य भान हो उनका प्रेरित।
बहिरन्तर मानव जीवन हो सत्य समन्वित,
ग्रन्तर्वैभव से हो भौतिक वैभव दीपित।

आत्मा का ऐश्वर्य, भूत श्री सुख हो अविरत,
ऊषाओं के पथ से उतरे पूषण का रथ।

सृजन शक्तियाँ

(१०)

आज देवियों को करता मन भूरि रे नमन,
सृजन शक्तियाँ चिन्मयि जो करतीं भव सृजन।
माहेश्वरी महेश्वर की आज्ञा का पालन
लक्ष्मी श्री सौंदर्य विभव नव करती वितरण।
सरस्वती विस्तार सूक्ष्म करती सम्पादन,
काली भरती प्रगति, विघ्न कर निखिल निवारण।
आभा देही अदिति, देवताओं की माता,
वह अभिन्न अविभाज्य, एकता की चिर ज्ञाता।
उसके सुत आदित्य सत्य से युक्त निरन्तर
भेद बुद्धि दिति के सुत दस्य, अहम्मति तमचर।
आदि सत्य का सक्रिय बोध इला देती नित,
सरस्वती चिर सत्य स्रोत अन्तर में समुदित।
मही, भारती, वाणी—जिसका ज्ञान अपरिमित
सद का देती बोध दक्षिणा, हवि कर वितरित।
सरमा है प्रेरणा, शुनी जो अचित में उतर
चित का छिपा प्रकाश ढूंढ लाती चिर भास्वर।
देवों की शक्तियाँ देवियाँ रे चिर पूजित,
मानव का प्रच्छन्न चित्त जिनसे नित ज्योतित।

इन्द्र

(११)

इन्द्र, सतत सत्पथ पर देखें मत्य चरण नित,
दिव्य तुम्हारे ऐश्वर्यों को कर अंगीकृत।
तुम, उलूक ममता के तम का हटा आवरण,
वृक हिंसा औ' श्वान द्वेष का करो निवारण।
कोक काम रति, श्येन दर्प औ' गृद्ध लोभ हर,
षड रिपुओं से देव, करो जन त्राण निरन्तर।
ज्यों मद पात्र विनष्ट शिला कर देती तत्क्षण,
पशु प्रवृत्तियाँ छिन्न करो हे प्रबल वृत्रहन्।
इन्द्र हमें आनन्द सदा तुम देते उज्ज्वल,
पीछे अघ न पड़े जो आगे हो चिर मंगल।
दिव्य भाव जितने, जो देव तुम्हारे सहचर
वज्र श्वास से भीत, छोड़ते तुम्हें निरन्तर।
प्राण शक्तियाँ मरुत साथ देते जब निश्चय
पाप असुर सेना पर तुम तब पाते नित जय।

दान दान पर करता मैं श्रद्धा नत, वन्दन,
तुम अपार हो, स्तुति से भरता नही कभी मन।
जो के खेतो मे ज्यो गायें करती विचरण,
देव, हमारे उर मे रमण करो तुम प्रतिक्षण।
सब दिशाम्रो से दो हमको, अभय, अनामय,
विजयी हो षड रिपुओ पर, जीवन हो सुखमय।

वरुण

(१२)

वरुण, मुक्त कर दो मेरे त्रिक् जीवन बन्धन,
पाप निवारक हे, प्रकाश से भर मेरा मन।
पाश गुणो के ऊपर ओर खुलें नित उत्तम,
नीचे टूटें अधम, मध्य मे वलय हो मध्यम।

अन्न प्राण मन, सत रज तम का हो रूपान्तर,
हम चिर अकलुष बनें अदिति का आश्रय पाकर।
यह मानव तन सतत सप्त ऋषियो से रक्षित,
चैत्य प्राण जिनमे सुषुप्ति मे भी चिर जागृत।

सदा भद्र सकल्पो से हम हो परिपोषित,
देवो को कर तुष्ट रहे नित स्वस्थ, हृष्ट चित।
भद्र सुनें ये श्रवण, भद्र देखें ये लोचन,
स्थिर अगो से सदा सत्य पथ करें ग्रहण जन।

देव सखा बन ऋजु प्रिय, रहें सुरो से वेष्टित,
उनकी भद्रा सुमति करे सबकी रक्षा नित।
पृथ्वी द्यौ औ अन्तरिक्ष की समिधा देकर
श्रम से, तप से, अमृत ज्योति का पायें हम वर।

सोमपायी

(१३)

चिर रमणीय वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा ऋतु सुखमय,
स्निग्ध शरद, हेमन्त शिशिर रमणीय असशय।
मधु केन्द्रो को घेर बैठते ज्यो नित मधुकर,
ज्ञान इन्द्रियो पर स्थित सोम पिपासु निरन्तर!—

ध्यान मग्न होकर जीवन मधु करते सचय,
अर्पित कर कामना, इन्द्र, तुममे होकर लय।
रथ पर रख ज्यो पर बैठ जाते वे तन्मय,
ऋजु पथ से तुम ले जाते उनको ज्योतिमय।

जिसकी महिमा गाते हिमवत सिन्धु नदी नद,
जिसकी बाहु दिशाम्रो-सी फैली हैं कामद
जहाँ अमत आनन्द ज्योति के झरते निर्झर,
मुक्त सोम रस पीकर पाते धाम वे अमर।

ब्रह्म लोक वह, सूर्य समान अमित ज्योतिर्मय,
मनोगगन द्यौ, विस्तृत सागर सदृश अनामय।
पृथ्वी से अगणित गुण इन्द्र वृहत बल ईश्वर
दिव्य शक्तियाँ उसकी शत शत किरणें भास्वर।

मंगल स्तवन

(१४)

अमित तेज तुम, तेज पूर्ण हो जनगण जीवन,
दिव्य वीर्य तुम वीर्य युक्त हो सबके तन-मन।
दीप्त ओज बल तुम बल ओज करें हम धारण,
शुद्ध मन्यु तुम, करें मन्यु से कलुष निवारण।
तुम चिर सह, हम सहन कर सकें, धीर शान्त मन
पूर्ण बनें हम सोम, सत्य पथ करें सब ग्रहण।
ज्ञान ज्योति का दिव्य चक्षु सामने अब उदित,
देखें हम शत शरद, शरद शत सुनें भद्र नित।
बोलें हम शत शरद, शरद शत तक हो जीवित
ऐश्वर्यों में रहें, शरद शत दैन्य से रहित।
शत शरदों से अधिक सुनें देखें हम निश्चित
तन मन आत्मा के वैभव से युक्त अपरिमित।
स्वर्ग शान्ति दे अन्तरिक्ष दे शान्ति निरन्तर,
पृथ्वी शान्ति शान्ति जल ओषधि शान्ति दें अजर।
विश्व देव दें शान्ति, वनस्पति शान्ति दें सकल,
ब्रह्म शान्ति दे सब शान्ति दें शान्ति दिशा पल।
शान्ति शान्ति दे हमें शान्ति हो व्यापक उज्ज्वल
शान्ति धाम यह धरा बने, हो चिर जन मंगल।

संन्यासी का गीत

छेड़ो हे वह गान, अन तादभव अबन्ध वह गान,
विश्व ताप से शून्य गह्वरों में गिरि के अम्लान
निभृत अरण्य प्रदेशों में जिसका शुचि जन्मस्थान,
जिनकी शान्ति न कनक काम यश लिप्सा का निःश्वास
भंग कर सका, जहाँ प्रवाहित सत चित की अविलास
स्रोतस्विनी, उमड़ता जिसमें वह आनन्द अपार,
गाओ, बढ़ वह गान वीर संन्यासी, गूँजे व्योम,
ओम तत्सत ओम्।
तोड़ो सब शृंखला, उन्हें निज जीवन बन्धन जान,
हों उज्ज्वल काञ्चन के अथवा क्षुद्र धातु के म्लान
प्रेम घृणा, सत असत, सभी ये द्वन्द्वों के सन्धान।

दास सदा ही दास, समादृत या ताडित, परतन्त्र,
स्वर्ण निगड होने से क्या वे सुदृढ न बंधन यन्त्र ?
अत उन्हे संन्यासी तोडो, छिन्न करो, गा मन्त्र,
ओम् तत्सत् ओम !

अंधकार हो दूर, ज्योति छल जल बुझ बारम्बार,
दृष्टि भ्रमित करता, तह पर तह मोह तमस विस्तार !
मिटे अजस्र तृषा जीवन की, जो आवागम द्वार,
जन्म मृत्यु के बीच खींचती आत्मा को अनजान,
विश्वजयी वह आत्मजयी जो, मानो इसे प्रमाण,
अविचल अत रहो संन्यासी, गाओ निर्भय गान,
ओम् तत्सत् ओम् !

'बोओगे पाओगे, निश्चित कारण कार्य विधान !'
कहते, 'शुभ का शुभ फल, अशुभ अशुभ का फल,' धीमान् !
दुर्निवार यह नियम, जीव के नाम रूप परिधान
बंधन हैं, सच है, पर दोनो नाम रूप के पार
नित्य मुक्त आत्मा करती है बंधन हीन विहार !
तुम वह आत्मा हो संन्यासी, बोलो वीर उदार,
ओम तत्सत ओम् !

ज्ञान शून्य वे, जिन्हें सूझते स्वप्न सदा निःसार—
माता, पिता पुत्र औ' भार्या, बान्धव जन, परिवार !
लिंग मुक्त है आत्मा ! किसका पिता पुत्र या दार ?
किसका शत्रु मित्र वह, जो है एक, अभिन्न, अनन्य,
उसी सर्वगत आत्मा का अस्तित्व, नहीं है अन्य !
कहो तत्त्वमसि संन्यासी, गाओ हे, जग हो धन्य,
ओम् तत्सत् ओम !

एक मात्र है केवल आत्मा, ज्ञाता, चिर निर्मुक्त,
नाम हीन वह रूप हीन, वह है रे चिह्न अयुक्त,
उसके आश्रित माया, रचती स्वप्नो का भव पाश,
साक्षी वह, जो पुरुष प्रकृति में पाता नित्य प्रकाश !
तुम वह हो, बोलो संन्यासी, छिन्न करो तमस्तोम,
ओम् तत्सत् ओम !

कहाँ खोजते उसे सखे, इस ओर कि या उस पार ?
मुक्ति नहीं है यहाँ, वृथा सब शास्त्र देवगृह द्वार !
व्यर्थ यत्न सब, तुम्हीं हाथ में पकडे हो वह पाश
खींच रहा जो साथ तुम्हें ! तो उठो, बनो न हताश,
छोडो कर से दाम, कहो संन्यासी, विहँसे रोम,
ओम तत्सत् ओम् !

कहो, शान्त हो सब, शान्त हो सचराचर अविराम
क्षति न उन्हें हो मुझसे मैं ही सब भूतों का ग्राम,
ऊँच-नीच दो मर्त्य विहारी, सवका आत्माराम !

त्याज्य लोक परलोक मुझे जीवन तृष्णा, भव बंध,
स्वर्ग मही पाताल—सभी आशा भय, सुखदुख द्वन्द्व।
इस प्रकार काटो बंधन, संन्यासी, रहो अबंध,
ओम तत्सत् ओम्।

देह रहे जाये, मत सोचो, तन की चिंता भार
उसका कार्य समाप्त, ले चले उसे कर्म गति धार,
हार उसे पहनाये कोई, करे कि पाद प्रहार,
मौन रहो, क्या रहा कहो निंदा या स्तुति अभिषेक?
स्तावक स्तुत्य, निंद्य औं' निंदक जब कि सभी हैं एक।
अत रहो तुम शांत, वीर संन्यासी, तजो न टेक,
ओम् तत्सत ओम।

सत्य न आता पास, जहाँ यश लोभ काम का वास,
पूर्ण नहीं वह, स्त्री में जिसको होती पत्नी भास,
अथवा वह जो किंचित् भी संचित रखता निज पास।
वह भी पार नहीं कर पाता है माया का द्वार
क्रोध ग्रस्त जो, अत छोड़कर निखिल वासना भार
गाओ धीर वीर संन्यासी, गूंजे मंत्रोच्चार,
ओम् तत्सत ओम।

मत जोड़ो गृह द्वार, समा तुम सको कहाँ आवास?
दूर्वादल हो तल्प तुम्हारा, गृह वितान आकाश,
खाद्य स्वत जो प्राप्त, पक्व वा इतर, न दो तुम ध्यान,
खान पान से कलुषित होती आत्मा वह न महान
जो प्रबुद्ध हो, तुम प्रवाहिनी स्रोतस्विनी समान
रहो मुक्त निर्द्वंद्व, वीर संन्यासी, छेड़ो तान
ओम तत्सत ओम।

विरले ही तत्वज्ञ! करेंगे शेष अखिल उपहास,
निंदा भी नर श्रेष्ठ ध्यान मत दो, निर्बंध, अयास
यत्र-तत्र निर्भय विचरो तुम, खोलो माया पाश
अंधकार पीड़ित जीवों के। दुख से बनो न भीत,
सुख की भी मत चाह करो, जाओ हे रहो अतीत
द्वंद्वों से सब, रटो वीर संन्यासी, मंत्र पुनीत,
ओम तत्सत ओम।

इस प्रकार दिन प्रतिदिन जब तन कर्म शक्ति हो क्षीण,
बंधन मुक्त करो आत्मा को, जन्म मरण हो लीन!
फिर न रह गये मैं, तुम ईश्वर जीव या कि भव बंध
मैं सबमें, सब मुझमें—केवल मात्र परम आनंद!
कहो तत्वमसि संन्यासी, फिर गाओ गीत अमंद
ओम् तत्सत ओम।

पुष्प वृष्टि हो,
नव जीवन सौंदर्य सृष्टि हो,
जो प्रकाश वर्षिणी दृष्टि हो।

लहरों पर लोटें नव लहरें
लाड प्यार की, पागलपन की,
नव जीवन की, नव यौवन की!

मोती की फुहार सी छहरें
प्राणों के सुख की, भावों की,
सहज सुरुचि की, चित चावों की!

इन्द्रधनुष-सी आभा फहरे
स्वप्नों की, सौंदर्य सृजन की,
आशा की, नव प्रणय मिलन की!
लहरों पर लोटें नव लहरें!

कूक उठे प्राणों में कोयल!
नव्य मंजरित हो जन जीवन,
नवल पल्लवित जग के दिशि क्षण,
नव कुसुमित मानव के तन मन!
बहे मलय साँसों में चंचल!

जीवन के बंधन खुल जायें,
मनुजों के तन-मन घुल जायें,
जन आदर्शों पर तुल जायें,
खिले धरा पर जीवन शतदल,
कूक उठे फिर कोयल!

युग प्रभात हो अभिनव!
सत्य निखिल बन जाय कल्पना,
मिथ्या जग की मिटे जल्पना,
कला धरा पर रचे अल्पना,
रुके युगों का जनरव!

प्रीति प्रतीति भरे हों अंतर
विनय स्नेह सहृदयता के सर,
जीवन स्वप्नों से दश सुंदर
सब कुछ हो फिर सम्भव!
जाति पाँति की कड़ियाँ टूटें,
मोह द्रोह मद मत्सर छूटें,
जीवन में नव निर्झर फूटें
वैभव बने पराभव,
युग प्रभात हो अभिनव!

आवाहन

(फिर) वीणा मधुर बजाओ।
वाणी, नव स्वर में गाओ।
उर के कम्पित तारों में
झंकार अमर भर जाओ।
आनंदित हो अन्तर
स्पंदित प्राणों के स्तर
नव युग के सौंदर्य ज्वार में
जीवन तपा डुबाओ।
ज्योतित हो मानव मन,
निर्मित नव जग जीवन,
देश जाति वर्णों से
निखरे नव मानवपन।
शोभा हो, श्री सुषमा,
धरणि स्वर्ग की उपमा,
नवल चेतना की जग में
स्वर्णिम किरणें बरसाओ।
(फिर) वीणा मधुर बजाओ।

प्राणाकांक्षा

बज पायल छम
छम छम।
उर की कम्पन में निर्मम
बज पायल छम
छम छम।

हृदय रक्त रंजित सुंदर
नृत्य मुग्ध प्रिय चरणों पर
प्राणों की स्वर्णाकांक्षा सम
प्रणय जड़ित, चंचल, निरुपम,
बज पायल छम
छम छम।

उद्वेलित हो जब अन्तर
व्यथा लहरियों पर पग धर
जीवन की गति लय से अक्लम
पद उन्मद, मत थम, मत थम,
बज पायल छम
छम छम।

रस स्रवण

रस बन,र स बन,
प्राणों मे !
निष्ठुर जग, निर्मम जीवन,
रस बन, रस बन,
प्राणों मे !
अंतस्तल मे व्यथा मथित हो,
भाव मर्म मे ज्ञान ग्रथित हो,
गीति छन्द मे प्रीति रटित हो,
क्षण क्षण छन,
रस बन, रस बन,
प्राणों मे !
तम से मुक्त प्रकाश उदित हो,
घृणा युक्त उर दया द्रवित हो,
जड़ता मे चेतना प्रसृत हो,
गरज न घन,
रस बन, रस बन,
प्राणों मे !

साधना

जीवन की साधना,
असफल जो सफल बना,
सिद्धि सही चिर तपना !
जीवन की साधना !
विपदाएँ
दुराशाएँ,
नष्ट मुझे कर जायें,
भ्रष्ट न हो पथ अपना !
चूर्ण हुई जो आशा,
पूर्ण न जो अभिलाषा,
घूर्ण हुई जो आशा—

भूषित हो उनसे मन,
लांछन से शशि शोभन,
सत्य बने जो सपना !
जीवन की साधना !

प्रेम मुक्ति

एक धार बहता जग जीवन
एक धार बहता मेरा मन !

आर पार कुछ नही कही रे
इस धारा का आदि न उदगम ।
सत्य नही यह स्वप्न नही रे
सुप्ति नही यह मुक्ति न बन्धन,
आते जाते विरह मिलन नित
गाते रोते जन्म मत्यु क्षण ।
व्याकुलता प्राणो म बसती
हँसी अधर पर करती नतन,
पीडा से पुलकित होता मन
सुख से ढलते आँसू के कण ।
शत वसन्त शत पतझर खिलते
झरते, नही कही परिवतन,
बँधे चिरन्तन आलिगन मे
सुख दुख, देह-जरा, उर यौवन ।
एक धार जाता जग जीवन
एक धार जाता मेरा मन,
अतल अकूल जलधि प्राणो का
लहराता उर म भर कम्पन ।

प्रतीति

विहगो का मधुर स्वर
हृदय क्यो लेता हर ?
क्यो चपल जल लहर
तन मे भरती सिहर ?
तुमसे ।
नीला सूना सा नभ
देता आनन्द अलभ
ऊषा सन्ध्या आभा
स्वण प्रभ,
तुमसे ।
यह विरोध वारिधि जग
धूल फूल सँग प्रतिपग,
लगता प्रिय मधुर सुभग,
तुमसे ।
लुटे घर द्वार मान,
छुटें तन मन प्राण,
कहता है बार - बार
मानव हृदय पुकार,
रह सकूगा निराधार
तुमसे !

रस स्रवण

रस बन, रस बन,
प्राणो मे !
निष्ठुर जग, निमम जीवन,
रस बन, रस बन,
प्राणो मे !
अंतस्तल मे व्यथा मथित हो,
भाव मणि मे ज्ञान ग्रथित हो,
गीति छन्द मे प्रीति रटित हो,
क्षण क्षण छन,
रस बन, रस बन,
प्राणो मे !
तम से मुक्त प्रकाश उदित हो,
घृणा मुक्त उर दया द्रवित हो,
जडता मे चेतना अमृत हो,
गरज न घन,
रस बन, रस बन,
प्राणो मे !

साधना

जीवन की साधना,
असफल जो सफल बना
सिद्धि सही चिर तपना !
जीवन की साधना !
विपदाएँ
दुराशाएँ,
नष्ट मुझे कर जायें,
भ्रष्ट न हो पथ अपना !
चूर्ण हुई जो आशा,
पूर्ण न जो अभिलाषा,
चूर्ण हुई जो आशा—

भूषित हो उनसे मन,
लाछन से शशि शोभन,
सत्य बने जो सपना !
जीवन की साधना !

प्रेम मुक्ति

एक धार बहता जग जीवन
एक धार बहता मेरा मन !

आर-पार कुछ नहीं यही रे
इस धारा का आदि न उद्गम।
सत्य नहीं यह स्वप्न नहीं रे
सुप्ति नहीं यह मुक्ति न बन्धन,
आते जाते विरह मिलन नित
गाते रोते जन्म मृत्यु क्षण!
व्याकुलता प्राणों में बसती
हँसी अधर पर करती नर्तन,
पीड़ा से पुलकित होता मन
सुख से ढलते आँसू के कण।
शत वसन्त शत पतझर खिलते
झरते, नहीं नहीं परिवर्तन
बँधे चिरन्तन आलिंगन में
सुख दुख देह जरा, उर यौवन।
एक धार जाता जग जीवन
एक धार जाता मेरा मन,
अतल अकूल जलधि प्राणों का
लहराता उर में भर कम्पन।

प्रतीति

विहगों का मधुर स्वर
हृदय क्यों लेता हर?
क्यों चपल जल लहर
तन में भरती सिहर?
तुमसे।
नीला सूना सा नभ
देता आनन्द अलभ
रूपा सन्ध्या आभा
स्वर्ण प्रभ,
तुमसे।
यह विरोध वारिधि जग
शूल फूल सँग प्रतिपग,
लगता प्रिय मधुर सुभग,
तुमसे।
लुटे घर द्वार मान,
छुटें तन मन प्राण,
कहता है बार-बार
मानव हृदय पुकार,
रह सकूँगा निराधार
तुमसे।

आशाएँ हों न पूर्ण
अभिलाषा अखिल चूर्ण,
जीवन बन जाय भार
सूख जाय स्नेह धार,
विजय बनेगी हार
तुमसे !

सार्थकता

वसुधा के सागर से
उठता जो वाष्प भार
बरसता न वसुधा पर
बन उर्वर वृष्टि धार,
सार्थक होता ?
तूने जो दिया मुझे
अमर चेतना का दान
तेरी ओर मेरा प्यार,
होता न धावमान,
सार्थक होता ?
घुमड़ता छायाकाश,
गरजता अंधकार
मृत्यु बाहुओं में बँधी
चेतना करती पुकार,
सार्थक होता ?
मर्त्य रहे, स्वर्ग रहे,
सृष्टि का आवागमन,
प्राणों में बना रहे
तेरा चिर रहस मिलन,
जीवन सार्थक होगा !

कुण्ठित

तुम्हें नहीं देता यदि अब सुख
चन्द्रमुखी का मधुर चन्द्र मुख,
रोग जरा भय, मृत्यु देह में,—
जीवन चिंतन देता यदि दुख,
आओ प्रभु के द्वार !
जन समाज का वारिधि विस्तृत
लगता अचिर फेन से मुखरित
हँसी खेल के लिए तरंगें
तुम्हें न यदि करतीं आमंत्रित,
आओ प्रभु के द्वार !

मेघों के सँग इन्द्रचाप स्मित
यदि न कल्पना होती धावित,
शरद वसन्त नहीं हरते मन
शशि मुख दीपित, स्वर्ण मंजरित,
आओ प्रभु के द्वार!

प्राप्त नहीं था ऐसे साधन
करो पुत्र दारा का पालन,
पौरुष भी जो नहीं, कर सको
जन मंगल, जनगण परिचालन,
आओ प्रभु के द्वार!

सम्भव है, तुम मग के कुण्ठित,
सम्भव है, तुम जग से लुण्ठित,
तुम्हें लोह से स्वर्ण बना प्रभु
जग के प्रति कर देंगे जीवित,
आओ प्रभु के द्वार!

आर्त

आयें प्रभु के द्वार!
जो जीवन में परितापित हैं,
हतभागे, हताश, शापित हैं,
काम क्रोध मद से त्रासित हैं,
आयें वे आयें वे प्रभु के द्वार!
बहती है जिनके चरणों से पतित पावनी धार!

जो भू के, मन के वासी हैं,
स्त्री धन जन यश फल आशी हैं,
ज्ञान भक्ति के अभिलाषी हैं,
आयें वे, आयें वे प्रभु के द्वार!
प्रभु करुणा के, महिमा के हैं मेघ उदार!

पाँव न जो आगे बढ़ सकते,
सुख में पकते, दुख में थकते,
टेढ़े - मेढ़े कुण्ठित लगते,
आयें वे, आयें वे प्रभु के द्वार!
पूर्ण समर्पण कर दें प्रभु को, लें सकल सँवार!

सब अपूर्ण खण्डित इस जग में,
फूलों से काँटे ही मग में,
मृत्यु साँस में, पीड़ा रग में,
आयें हे, आयें सब प्रभु के द्वार!
केवल प्रभु की करुणा ही है अक्षय, पूर्ण, उदार!

अविच्छिन्न

हे करुणाकर, करुणा सागर !
क्यों इतनी दुर्बलताओं का
दीप शून्य गृह मानव अंतर !
दैन्य पराभव आशंका की
छाया से पीड़ित, दुख जर्जर !
चौर हृदय के तम का गह्वर
स्वर्ण स्वप्न जो आते बाहर
गाते वे किस ज्योति प्रीति के
मंगल गीत प्रतीति रस मुखर ?

तुम अपनी आभा में छिपकर
दुर्बल मनुज बने क्यों कातर !
यदि अनंत कुछ इस जग में
वह मानव का दारिद्र्य भयंकर
अखिल ज्ञान संकल्प मनोबल !
पलक मारते होते ओझल,
केवल रह जाता अथाह नैराश्य
क्षोभ, संघर्ष निरंतर !

देव पूर्ण निज रूपों में स्थित,
पशु प्रसन्न जीवन में सीमित,
मानव की सीमा अशांत
छूने असीम के छोर अनश्वर !
रूप ज्योति का ही न यह तमस ?
कूप वारि सागर का अम्भस
वह उस जग का अंधकार रे
जिसमें तारा चंद्र दिवाकर !

अन्तर्वाणी

निःस्वर वाणी,
नीरव मम कहानी !
अंतर्वाणी !
नवजीवन सौंदर्य में ढलो,
सृजन व्यथा गाम्भीर्य में गलो,
चिर अकलुष बन विहँसो हे
जीवन कल्याणी,
निःस्वर वाणी !

व्यथा व्यथा
रे जगत की प्रथा,
जीवन कथा
व्यथा !

व्यथा मथित हो,
ज्ञान ग्रथित हो,—
सजल सफल, रस सबल बनो हे
उर की रानी,
नि:स्वर वाणी!

व्यथा हृदय में
अधर पर हँसी
बादल में
शशि रेख हो लसी!
प्रीति प्राण में
अमर हो बसी,
गीत मुग्ध हों जग के प्राणी,
नि:स्वर वाणी!

मुक्ति बन्धन

क्यों तुमने निज गीत विहग को
दिया न जग का दाना पानी,
आज आर्त अन्तर से उसके
उठती करुणा कातर वाणी!
शोभा के स्वर्णिम पिंजर में
उसके प्राणों को बन्दी कर
तुमने ज्यों उसके जीवन की
जीव मुक्ति ली पल भर में हर!
नीड़ बनाता वह डाली पर,
फिरता आँगन में कलरव भर,
उसे प्रीति के गीत सिखाने
दग्ध कर दिया तुमने अन्तर!
उड़ता होता क्या न गगन में?
चुगता होता दाने भू पर!
अपना उसे बनाने तुमने,
लिये जीव के पल ही कुतर!
क्यों तुमने निज गीत विहग को
दिया न भू का दाना पानी,
उसके आर्त हृदय से फिर-फिर
उठती सुख की कातर वाणी!

मातृ चेतना

तुम ज्योति प्रीति की रजत मेघ,
भरती आभा स्मिति मानस में,
चेतना रश्मि तुम बरसाती
शत तड़ित् अर्चि भर नस-नस में!

तुम उषा, तूलि की ज्वाला से
रंग देती जग के तम भ्रम को,
वह प्रतिभा, स्वर्णांकित करती
जो संसृति के विकसित क्रम को !
तुम सृजन शक्ति, जो ज्योति चरण धर
रजत बनाती रज कण को,
जड़ मे जीवन, जीवन मे मन,
मन में सँवारती स्वमन को !
तुम जननि, प्रीति की स्रोतस्विनि,
तुम दिव्य चेतना, दिव्य मना,
तुम स्वर्ण किरण की निर्झरिणी,
आभा देही, आभा वसना !
मुख पर हिरण्मय अवगुण्ठन,
अर्पित तुमको प्राणो का मन,
स्वीकृत हो तुमको पारस मणि,
स्वर्णिम हो मेरे जीवन क्षण !

मातृ शक्ति

दिव्यानने,
दिव्यमने,
भव जीवन पूर्ण बने !
दिव्यानने ?
आभा सर
लोचन वर
स्नेह सुधा सागर !
स्वर्ग का प्रकाश
हास
करता उर तम विनाश,
किरणें बरसाकर !
भयभंजने,
जनरंजने !
तुम्ही भक्ति
तुम्ही शक्ति
ज्ञान ग्रथित सदनुरक्ति !
चिर पावन
सजन चरण,
अर्पित तन
मन जीवन !
हृदयासने,
श्री - वसने !

प्रणाम

श्री अरविन्द, सभक्ति प्रणाम ।
स्वर्मानस के ज्योतित सरसिज,
दिव्य जगत जीवन के वर द्विज,
चिदानन्द के स्वर्णिम मनसिज,
ज्योति धाम,
सज्ञान प्रणाम !
विश्वात्मा के नव विकास तुम,
परम चेतना के प्रकाश तुम,
ज्ञान भक्ति श्री के विलास तुम,
पूर्ण प्रकाम,
सकम प्रणाम !
दिव्य तुम्हारा परम तपोबल
अमृत ज्योति से भर दे भूतल,
सफल मनोरथ सृष्टि हो सकल,
श्री ललाम,
निष्काम प्रणाम !

निर्झर

तुम, झरो हे निझर
प्राणो के स्वर,
झरो हे निझर !
चिर अगोचर
नील शिखर,
मौन शिखर

तुम प्रशस्त मुक्त मुखर,—
झरो धरा पर
झरो धरा पर
नव प्रभात, स्वर्ग स्नात,
सद्य सुघर !
झरो हे निझर,
प्राणो के स्वर,
झरो हे निझर !

ज्योति स्तम्भ तुल्य उतर
जग मे नव जीवन भर
उर मे सौन्दय अमर,
स्वर्ण ज्वार से निभर
झरो धरा पर
झरो धरा पर

तप पूत नवोदभूत
चेतना वर!
झरो हे निर्झर!

ज्योति झर

बरसो ज्योति अमर हे,
मेरे भीतर बाहर,
जग के तम से निखर निखर
बरसो भू जीवन ईश्वर!

झरते मोती के शत निर्झर
धौल शिखर से झर-झर,
फूटें मेरे प्राणों से वह
दिव्य चेतना के स्वर!

तन मन के जड़ बंधन टूटें
जीवन रस के निर्झर छूटें,
प्राणों का स्वर्णिम मधु लूटें
मुग्ध निखिल नारी नर!

विघ्नों के गिरि शृंग गिरें
चिर मुक्त सजन आनंद झरे,
फिर नव जीवन सौंदर्य भरे
जग के सरिता सर सागर!

बरसो जीवन ज्योति अमर हे
दिव्य चेतना की सावन झर,
स्वर्ण काल के कुसुमित अक्षर
लिख पुलकित वसुधा पर!

प्रीति निर्झर

यहाँ तो झरते निर्झर
स्वर्ण किरणों के निर्झर,
स्वर्ग सुषमा के निर्झर
निस्तल हृदय गुहा में
नीरव प्राणों के स्वर!
ज्ञान की कांति से भरे
भक्ति की शांति से भरे,
गहन श्रद्धा प्रतीति के
स्वर्णिम जल में तिरते
सतत सत्य शिव सुंदर!
अश्रु मज्जित जीवन मुख,
स्वप्न रंजित रे सुख-दुख,
रहस आनंद तरंगित
सहज उच्छ्वसित हृदय सरोवर!

गान मे भरा निवेदन
प्राण मे भरा समपण,
ध्यान मे प्रिय के दशन,
प्रिय ही प्रिय रे व्याप्त
अहर्निशि भीतर बाहर!
यहाँ तो झरते निझर
स्वण के सौ-सौ निझर,
स्वग शोभा के निझर,—
उमड - उमड उठता
प्रतीति के सुख से अन्तर!

अन्तर्लोक

यह वह नव लोक
जहाँ भरा रे अशोक
सूक्ष्म चिदालोक!
शोभा के नव पल्लव,
झरता नभ से मधुरव,
शाश्वत का पा अनुभव
मिटता उर शोक,
स्वग शान्ति ओक!

रूप रेख जग की लय
बनती वर देवालय,
श्रद्धा म विकसित भय,
भक्ति मधुर सुख दुख द्वय!
अनता सशय
स्वत विश्वास, नही रोक,
कान्ति लो विलोक!
यह वह वर लोक
हृदय म उदय अशोक,
सूक्ष्म चिदालोक!
स्वण शान्ति ओक!

स्वर्ग अप्सरी

सरोवर जल मे स्वण किरण रे
तिरती ज्वलित वण घन!
अतल से हँसी उमड कर
लसी लहरों पर चचल
तीर-सी धँसी किरण वह
ज्योति बसी प्राणो मे निरतत!

उड रहे रश्मि पख कण
जगमगाये जीवन क्षण !
सजल मानस मे मेरे
अप्सरी कसे एरे,
स्वग से गयी उतर
कब जाने तिर भीतर ही भीतर !
आज शोभा शोभा जल
ज्योति मे उठा अखिल जल,
सहज शोभा ही का मुख
लोट रहा लहरो मे प्रतिपल !
जागती भावो मे छवि,
गा रहा प्राणो म कवि,
चेतना मे कोमल
आलोक पिघल
ज्यो स्वत गया ढल !
हृदय सरसी के जल कण
सकल रे स्वण वरण घन,
ज्योति ही ज्योति अतल जल,
डूब गये सब जन्म मरण क्षण !

चित्रकरी

जीवन चित्रकरी ह
सृजन आनन्द परी है,
चित्रपट रँगो धरा पर
स्वण की किरण तूलि पर
नवल जीवन सौन्दय भरो
पतझर मे
रूप रग स्वर !
सूक्ष्म दशन से प्रेरित
रचो जग जीवन कुसुमित
मधुर मुख मानवता का
स्वग ज्योति से
रहे सहज स्मित !
जीवन चित्रकरी है
सृजन सौदय परी है,
खो गये भेदो मे जन
अहम मे सुप्त अब परम
प्रेम विश्वास शौय से
नव आशा से भर दो जन मन !
अरुण अनुराग रँगो घन
शान्ति के शुभ्र हों वसन,

हरित रँग शक्ति, पीत रँग भक्ति,
ज्ञान का नील हो गगन।

जीवन चित्रकरी है,
सृजन ऐश्वर्य परी है,
देह सौंदर्य गठित हो,
प्राण आनन्द सरित हो
दृष्टि नव स्वप्न जड़ित हो
स्वर्ण चेतना से जग जीवन
हो आलोकित।

अन्तर्विकास

विभा, विभा,
जगत ज्योति तमस द्विभा!
झरता तम का बादल
इन्द्रधनुष रँग में ढल
ओझल हँस इन्द्रधनुष
केवल फिर चिर उज्ज्वल
विभा!
मनस रूप भाव द्विभा!

इन्द्रियाँ स्वरूप जड़ित,
रूप भाव बुद्धि जनित,
भाव दुःख सुख कल्पित,
ज्ञान भक्ति में विकसित,
विभा!
जीवन भव सृजन द्विभा!

सृजन शील जग विकास,
जड़ जीवन मनोभास,
आत्माहम्, परे मुक्ति,
स्वर्ण चेतना प्रकाश,
विभा!
जन्म मरण मात्र द्विभा!

चेतन

गगन में इन्द्रधनुष,
अवनि में इन्द्रधनुष?

नयन में दृष्टि किरण,
श्रवण में शब्द गगन
हृदय के स्तर-स्तर में
उदित वह दिव्य वपुप!

अचित था चिर जहाँ तम,
दुरित जड़ता मति भ्रम,
जगत जीवन प्रभा में
मुदित वह ज्योति पुरुष!
तमस में गिर न रँगा,
नींद से पुन जगा,
मरण के गुण्ठन में
प्रकट वह चिर अकलुष!
क्षणों में इन्द्रधनुष,
कणों में इन्द्रधनुष,
स्पर्श पा चेतन का
जग उठे शप्त नहुष!

मृत्युंजय

ईश्वर को मरने दो हे, मरने दो,
वह फिर जी उठेगा, ईश्वर को मरने दो!
वह क्षण - क्षण मरता, जी उठता,
ईश्वर को नित नव स्वरूप धरने दो!
शत रूपों में, शत नामों में, शत देशों में,
शत सहस्रदल होकर उसे सृजन करने दो,
क्षण अनुभव के विजय पराजय, जन्म मरण,
औ' हानि-लाभ की लहरों में उसको तरने दो!
ईश्वर को मरने दो हे, फिर फिर मरने दो!
दूर नहीं वह तन से, मन से या जीवन से,
अथवा रे जनगण से!
द्वेष कलह संग्राम बीच वह,
अंधकार से औ' प्रकाश से शक्ति खींच वह
पलता, बढ़ता, विकसित होता अहरह
अपने दिव्य नियम से!
दूर नहीं वह तन से, मन से जीवन से
अथवा जनगण से!
एक दृष्टि से, एक रूप में, देख रहे हम
इस भूमा को, जग को औ' जगती के जीवन को निश्चय,
इसमें दुख सुख जरा मरण हैं, जड़ चेतन
संघर्ष शांति,—यह रे द्वंद्वों का आशय!
परम दृष्टि से, परम रूप में वह है ईश्वर,
अजर अमर औ' एक अनेक, सर्वगत, अक्षर,
व्यक्ति विश्व जड़ स्थूल सूक्ष्मतर!
स पर्यगात् शुक्रमकायमव्रणम
मस्नाविर शुद्धमपापविद्धम,
कविर्मनीषी परिभू स्वयम्भू—पूर्ण परात्पर!

मरने दो तब ईश्वर को मरने दो है
वह जी उठेगा, ईश्वर को मरने दो।
वह फिर - फिर मरता, जी उठता,
ईश्वर को चिर मुक्त सृजन करने दो।

लक्ष्मण

विश्व श्याम जीवन के जलधर,
राम प्रणम्य, राम हैं ईश्वर।
लक्ष्मण निर्मल स्नेह सरोवर
करुणा सागर से भी सुन्दर।

सीता के चेतना जागरण
राम हिमालय से चिर पावन,
मेरे मन के मानव लक्ष्मण
ईश्वरत्व भी जिन्हें समर्पण।

धीर वीर अपने पर निर्भर
झुका ग्रह धनु, धर सेवा शर,
कब से भू पर विचर रहे वे
लक्ष्मण, सच्चे भ्राता, सहचर।

युग युग से चिर असि व्रत धारी,
जग जीवन विघ्नों के हारी
जन सेवा उनकी प्रिय नारी
वह ऊर्मिला, हृदय को प्यारी।

रुधिर वेग से कम्पित थर थर
पकड़ ऊर्मिला का पल्लव कर
बोले, प्रिये, बिदा दो हँसकर
संग राम के जाता अनुचर।'

चौदह बरस रहे वह बाहर
बिछुड़े नहीं प्रिया से क्षण भर
सजग ऊर्मिला थी उर भीतर
मानस की - सी ऊर्मि निरन्तर।

स्नेह ऊर्मिला का चिर निश्छल
नहीं जानता विरह मिलन पल,
वह |बह वह अन्तर में अविरल
बनता रहता सेवा मंगल।

वह सेवा कर्त्तव्य नहीं है,
वह भीतर से स्वत बही है
हार्दिकता की सरित रही है
जिससे निश्चित हरित मही है।

सहज सलज्ज सुशील स्नेहमय,
जन-जन में साथी, चिर सहृदय,
मुक्त हृदय, विनयी, अति निर्भय,
जन्म-जन्म का हो ज्यों परिचय,

आते वे सम्मुख प्रसन्न मन
भू पर नत आनन्द में गगन,—
बरस गया जिसका ममत्व घन,
गौर चाँदनी-सा चेतन तन!

इस भू में मानव लक्ष्मण
कभी गा सकूँ उनका जीवन,
छू जिनके सेवा रत पद तल
बिछ जाते पथ शूल फूल बन!

राम पतित पावन, दुख मोचन,
लक्ष्मण भव सुख दुख में शोभन!
वे सर्वज्ञ, सर्वगत, गोपन,
ज्ञान मुक्त ये, पद नत लोचन!

छाया दर्पण

यह मेरा दर्पण चिर मोहित!
जीवन के गोपन रहस्य सब
इसमें होते शब्द तरंगित!

कितने स्वर्गिक स्वप्न शिखर औ'
माया की घाटियाँ मनोरम,
इसमें जगते इन्द्रधनुष-से
कितने रंगों के प्रकाश तम!

जो कुछ होता सिद्ध जगत में,
मन में जिसका उठता उपक्रम,
जादू के दर्पण में अविदित
घटना वह हो उठती चित्रित!

नंगे भूखों के क्रंदन पर
हँसता इसमें निर्मम शोषण,
आदर्शों के सौध बिखरते
खड़े जीर्ण जन मन में मोहन!

झंकृत इसमें मानव आत्मा
उर-उर में जो करती घोषण,
इस दर्पण में युग जीवन की
छाया गहरी पड़ी कलंकित!
दीख रहा उगता इसमें नव
मानव भावी का स्मित आनन,

मानव आत्मा जब धरती पर
विचरेगी धर ज्योति प्रिय चरण।

डूबेंगे नव मानवता मे
देश जाति गत कटु संघर्षण,
पाश मुक्त होगी यह वसुधा
मानव श्रम से बन मनुजोचित।

कौन युवक युवती, मानव की
घणित विवशताओं से पीडित,
मानवता के हित निज जीवन
प्राण करेंगे सुख से अर्पित।

(बहिरंतर के दैन्य दुःख स
अगणित तन मन रे परितापित।)
यह माया का दर्पण उनके
गौरव से होगा स्वर्णांकित।

छायाभा

छाया प्रकाश जग जीवन का
बन जाता स्वप्न मधुर संगीत,
इस घने कुहासे के भीतर
छिप जाते तारे इन्दु पीत।

देखते देखते आ जाता,
मन पा जाता
कुछ जग के जगमग रूप नाम,
रहते-रहते कुछ छा जाना,
उर को भाता
जीवन सौन्दर्य अमर ललाम।

प्रिय यहाँ प्रीति
स्वप्नों मे उर बाँधे रहती,
स्वर्णिम प्रतीति
हँस हँसकर सब सुख दुख सहती।

अनिवार कामना
नित अबाध भ्रमना बहती,
चिर आराधना
विपद मे बाँह सदा गहती।

जड रीति नीतियाँ
जो युग कथा विविध कहती,
भीतियाँ
जागते सोते तन मन को दहती।

क्या नही यहाँ ? छाया प्रकाश की ससृति मे !
नित जीवन मरण बिछुडते मिलते भव गति मे !
ज्ञानी ध्यानी कहते, प्रकाश, शाश्वत प्रकाश,
अज्ञानी मानी, छाया माया का विलास !

यदि छाया, यह किसकी छाया ?
आभा, छाया जग क्यो आया ?

मुझको लगता
मन मे जगता,
यह छायाभा है अविच्छिन्न,
यह आँखमिचौनी चिर सुदर,
सुख-दुख के सुरधनु रगो की
यह स्वप्न सृष्टि अनेय, अमर !

आह्वान

बरसो हे घन !
निष्फल है यह नीरव गर्जन,
चचल विद्युत् प्रतिभा के क्षण,
बरसो उर्वर जीवन के कण,
हाय अश्रु की झड से धो दो
मेरा मनोविषाद गगन !
बरसो हे घन !

हूँ क्या कि राऊँ नही जानता,
मन कुछ माने नही मानता,
मैं जीवन हठ नही ठानता
होती जो श्रद्धा न गहन,
बरसो हे घन !

शशि मुख प्राणित नील गगन था,
भीतर स आलोकित मन था,
उर का प्रति स्पदन चेतन था,
तुम मे यदि था विरह मिलन,
बरसो हे घन !

अब भीतर सशय का तम है,
बाहर मृगतृष्णा का भ्रम है,
क्या यह नव जीवन उपक्रम है,
होगो पुन शिला चेतन ?
बरसो हे घन !

आशा का प्लावन बन बरसो,
नव सौदय प्रेम बन सरसो,
प्राणो म प्रतीति बन हरसो,
अमर चेतना बन नूतन,
बरसो हे घन !

परिणति

स्वप्न समान बहा रे यौवन
पलकों में मँडरा क्षण !
बंध न सका जीवन बाँहों में,
अँट न सका पार्थिव चाहों में,
लुक छिप प्राणों की छाँहों में
व्यथ खो गया वह धन,
क्षण स्वप्नों का यौवन !

इन्द्र - धनुष का बादल सुन्दर
लीन हो गया नभ में उड़कर,
गरजा बरसा नहीं धरा पर,
विद्युत धूम मरुत घन,
हास अश्रु का यौवन !

विरह मिलन का प्रणय न भाया,
अबला उर में नहीं समाया,
भीतर बाहर ऊपर छाया
नव्य चेतना घन बन,
धूप छाँह पट यौवन !

आशा और निराशा आयी
सौरभ मधु पी मति अलसायी
सत्य बनी फिर फिर परछाई
तड़ित चकित उत्थान पतन,
अनुभव रंजित यौवन !

अब ऊषा, शशि मुख पिक कूजन,
स्मिति आतप मंजरित प्राण मन
जीवन स्पन्दन, जीवन दर्शन,
इस असीम सौन्दर्य सृजन को
आत्म समर्पण !

अचिर जगत में व्याप्त चिरंतन,
ज्ञान तरुण अब यौवन !

चौथी भूख

'मुझे भजन न होय गुपाला,'
यह कबीर के पद की टेक,
देह की है भूख एक !—
कामिनी की चाह, मन्मथ दाह
तन को हैं तपात
नित लुभाते विषय भोग अनेक,

चाहते ऐश्वर्य सुख जन,
चाहते स्त्री पुत्र भू धन,
चाहते चिर प्रणय का अभिषेक!
देह की है भूख एक!
दूसरी रे भूख मन की!
चाहता मन आत्म गौरव,
चाहता मन कीर्ति सौरभ,
ज्ञान मंथन, नीति दर्शन,
मान पद अधिकार पूजन!
मन कला विज्ञान द्वारा
खोलता नित ग्रंथियाँ जीवन मरण की!
दूसरी यह भूख मन की!
तीसरी रे भूख आत्मा की गहन!
इंद्रियों की देह से ज्यों है परे मन,
मनोजग से परे त्यों आत्मा चिरंतन,
जहाँ मुक्ति विराजती
औ' डूब जाता हृदय क्रन्दन!
वहाँ सत् का वास रहता,
वहाँ चित का लास रहता,
वहाँ चिर उल्लास रहता,
यह बताता योग दर्शन!
किंतु ऊपर हो कि भीतर
मनोगोचर या अगोचर,
क्या नहीं कोई कहीं ऐसा अमृत घन
जो धरा पर बरस भर दे भव्य जीवन?
जाति वर्गों में निखर जन
अमर प्रीति प्रतीति में बँध
पुण्य जीवन करें यापन,
औ' धरा हो ज्योति पावन!

अन्तिम पैगम्बर

दूर-दूर तक केवल सिकता, मरु नास्ति, सूनापन!—
जहाँ हिंस्र बर्बर अरबों का रण जर्जर था जीवन!
ऊष्मा झंझा बरसाते थे अग्नि बालुका के कण,
उस मरुथल में आप ज्योति निर्झर से उतरे पावन!
वर्ग जातियों में विभक्त बद्दू औ शेख निरंतर
रक्तधार में रँगते रहते थे रेती कट - मरकर!
मंद धीर ऊँटों की गति से प्रेरित प्रिय छंदों पर
गीत गूँथते गुनगुन जन, निर्जन को स्वप्नों से भर!
वहाँ उच्च कुल में जनमे तुम दीन कुरैशी के घर,
बने गडरिये, तुम्हें जान प्रभु भेड़ नवाती थीं सर!

हँस उठती थी हरित दूब मरु मे प्रिय पदतल छूकर,
प्रथित खादिजा के स्वामी तुम बने तरुण चिर सुदर।

छोड विभव घर द्वार एक दिन अति उद्वलित म
हिरा शैल पर चले गये तुम प्रभु की आज्ञा सिर ध
दिव्य प्रेरणा स नि सृत हो जहाँ ज्योति विगलित स्व
जगी ईश वाणी कुरान, चिर तप पूत उर भीतर

घेर तीन सौ साठ बुतो स काबा को, प्रति वत्सर
भेज कारवाँ करत थे व्यापार कुरेश धनेश्वर,
उस मक्का की ज मभूमि मे, निर्वासित भी होकर,
किया प्रतिष्ठित फिर से तुमने अब्राहम का ईश्वर।

ज्योति शब्द, विद्युत असि लेकर तुम अन्तिम पैगम्बर
ईश्वरीय जन सत्ता स्थापित करने आय भू पर।
नबी, दूरदर्शी, शासक, नीतिज्ञ, स य नायक वर,
धम केतु विश्वास सेतु तुम पर जन हुए निछावर।

'अल्ला एक मात्र ईश्वर है और रसूल मोहम्मद
घोषित तुमन किया, तडित असि चमका, मिटा अहम्मद।
ईश्वर पर विश्वास, प्राथना दान—स त की सम्पद
शान्ति धाम इस्लाम, जीव प्रति प्रेम, स्वग जीवन प्रद।

जाति व्यथ है, सब समान है मनुज, ईश के अनुचर
अविश्वास औ' वग भेद स है जिहाद श्रेयस्कर।
दुबल मानव, पर रहीम ईश्वर चिर करुणा सागर
ईश्वरीय एकता चाहता है इस्लाम धरा पर।

प्रकृति जीव ही को जीवन की मान इकाई निश्चित
प्राणो का विश्वास पथ कर तुमने प्रभु का निमित,
व्यक्ति चेतना के बदले कर जाति चेतना विकसित
जीवन सुख का स्वग किया अ तरतम नभ म स्थापित।

आत्मा का विश्लेपण कर या दशन का सश्लेपण,
भाव बुद्धि के सोपानो म बिलमाये न हृदय मन,
कम प्रेरणा स्फुरित शब्द स जन मन का कर शासन
ऊध्व गमन के बदले समतल गमन बताया साधन।

स्वग दूत जबरील तुम्हारा बन मानस पथ दशक
तुम्हे सुझाता रहा माग जन मगल का निष्कण्टक,
तर्कों वादो और बुतो के दासो को, जन रक्षक
प्राणो का जीवन पथ तुमने दिखलाया आकपक।

एक रात म मत मरु को कर तुमन जीवन चतन
पथ्वी को ही प्रभु के शब्दो को कर दिया समपण,
'मैं भी अय जनो सा हूँ।' कह, रह सबसे साधारण
पावन तुम कर गये धरा को, धम त त्र कर रोपण।

नरक मे स्वर्ग

(१)

गत युग मे जन पशु जीवन था जीता रौरव
यह छोटा सा राज्य नरक था इस पृथ्वी पर!
कीडो से रेंगते अपाहिज थे नारी नर,
मूल्य नही था जीवन का कानी कौडी भर!
उस दख युग-युग का मन कर उठता क्रन्दन
हाय विधाता, यह मानव जीवन सपपण!
जग के चिर परिताप वही करते थे नट्ट रण,
यह नृशसता, द्वेष, कलह का था जड प्रागण!
भाड फूस के भग्न घरोदा म लहराकर
हरी भरी गाँवो की धरती उठ ज्यो ऊपर
राज भवन के उच्च शिखर म उठा शास्त्रि कर
इगित करती थी अलक्ष्य की ओर निरन्तर।
उस अलक्ष्य मे युग भविष्य जो था अन्तर्हित
वह यथाथ था जितना, मन मे उतना कल्पित!
बाहर से थी राज्य प्रजा हो रही सगठित,
भीतर से नव मनुष्यत्व गोपन मे विकसित!

(२)

राज महल के पास एक मिट्टी के कच्चे घर मे
रहती थी मालिन की लडकी क्षुधा विदित पुर भर मे!
मौन कुई सी खिली गाँव के ज्यो निशीथ पोखर मे
वह शशिमुखी सुधा की थी सहचरी हर्म्य अम्बर मे!
नव युवती थी, फूना के मदु स्पर्शों स पोषित तन,
सहज बोध के सलज वन्त पर विकसित सौरभ का मन!
मुग्ध कली वह जग मादन नव मधु सा उसका यौवन,
भावो की पखडियो पर रजित निसग सम्मोहन!
उसके आँगन मे आ ऊषा स्वण हास बरसाती,
राजकुमारी सुधा द्वार पर खडी नित्य मुसकाती,
दोनो सखियाँ उपवन मे आ फूलो मे मिल जाती
इन्द्र चाप के रगो मे ज्यो इन्दु रश्मि रिल जाती!
कोमल हृदय सुधा का था चिर विरह गरल से तापित,
जननि जनक की इच्छा से थी प्रणय भावना शासित!
फूलो का तन मधुर क्षुधा का मधुप प्रीति से शोषित
राजकुमार अजित की थी वह स्वप्न सगिनी अविजित!
पकजिनी थी क्षुधा, पक मे, खिली दैन्य के निश्चय,
स्वण किरण थी सुधा धरा की रज पर उतरी सहृदय!
दोनो के प्राणो का परिणय था जन के हित सुखमय
स्वग धरा का मधुर मिलन हो ज्या स्रष्टा का आशय!
दोनो सखियाँ मिल गोपन मे करती मम निवेदन,
दोनो की दयनीय दशा बन गयी स्नेह दृढ बन्धन!

जीवन के स्वप्नों का जीवन की स्थितियों से था रण,
तन-मन की था क्षुधा बढ़ाता इधन बन नव यौवन।
कितने ऐसे युवति युवक हैं आज नहीं जो कुण्ठित ?
जिनकी आशा अभिलाषा युग स्वप्न नहीं भू लुण्ठित।
भीतर बाहर में विरोध जब बढ़ता है अनपेक्षित
तब युग का सचरण प्रगति देता जीवन को निश्चित।

(३)

राजभवन हे राजभवन, जन-मन के मोहन,
युग युग के इतिहास रहे तुम, भू के जीवन।
सस्कृति कला विभव के स्वप्नों से तुम शोभन
पृथ्वी पर थे स्वर्गिक शोभा के नन्दन वन।
मदिर लोचना से गवाक्ष थे मुग्ध कुवलयित
मधुर नूपुरों की कलध्वनि से दिशि पल गुजित।
नव वसन्त के तुम विलास थे शाश्वत कुसुमित,
भू मण्डल की विद्या की आभा से ज्योतित।
हाय आज किन तापों शापों से तुम पीड़ित
विस्फोटक बन गये धरा के उर के निन्दित।
जनगण के जीवन से तुम न रहे सम्बधित
अहम्मन्यता, धन मद, मति जड़ता में मज्जित।
अब भी चाहो तो सकते तुम जन-मन पूजन
जन मगल के लिए करो जो विभव समर्पण।
जन सेवा व्रत के चिर व्रती रहो तुम दृढ प्रण,
सस्कृति ज्ञान कला का करना सीखो पोषण।
यन्त्र तन्त्र से हो सकते न मनुज परिचालित
उनके पीछे जब तक हो न चेतना विकसित।
प्रजातन्त्र के साथ राज्य रह सकते जीवित
भू विकास में युग नियमों से हो अनुशासित।

(४)

इन्कलाब के तुमुल सिन्धु सा एक रोज हो उठा तरगित
वह छोटा सा राज्य क्रुद्ध जनता के आवेशों से निनदित।
था अग्रणी क्षुधा के कर में रक्त ध्वजा ज्वाला सी कम्पित,
काल पड़ा था, क्षुब्ध प्रजा को था लगान भरना अस्वीकृत।
बल प्रयोग था किया राज्य ने, जन मत का कर प्रजा सगठन
राजभवन को घेर अड़ी थी सत्वों के हित देने जीवन।
हाय क्षुधा का पकड़े था श्रम, उसका प्रिय साथी, प्रेमी जन
दीप शिखा का शलभ अजित था देख रहा उनको सरोष मन।
देख रही थी सुधा खोल किंचित अन्त पुर का वातायन
उस निंदित था सोदर के मन में जो था चल रहा इधर रण।
दोनों सखियों के नयनों ने मिलकर मौन किया सम्भाषण,
दोनों के उर में था आकुल स्पन्दन, आँखों में आँसू घन।
हार गये थे भूप मनाकर, बात प्रजा ने एक न मानी
सह सकती थी, सच है जनता और न शासन की मनमानी।

छोड भार सब राजकुवर पर थे निश्चिन्त नृपति अभिमानी,
कुपित अजित ने लोक दमन करने की हठ निज मन मे ठानी।
पा सकेत इधर सेना न, जो थी खडी सशस्त्र घेरकर,
अग्नि वृष्टि कर दी, जनगण थे मृत्यु काण्ड के लिए न तत्पर।
प्रबल प्रभजन से सभय ज्यो आलोडित हो उठता सागर
क्रन्दन गर्जन की हिल्लोलें उठन गिरने लगी धरा पर।
सिन्न धरित्री पीती थी निज रस मे पोषित मानव शोणित,
पृष्ठ द्वार से निकल सुधा हो गयी भीड मे इधर तिरोहित।
लाल ध्वजा का लक्ष्य बना निज, क्रुद्ध अजित ने हो उत्तेजित,
मृत्यु ज्वाल दी उगल सुधा पर, प्रीति बन गयी द्वेष की तडित।
'हाय, सुधा! हा, राजकुमारी!' दसो दिशा हो उठी ज्यो ध्वनित,
'सुध सखी, प्राणो की प्यारी! वज्र गिरा यह हम पर निश्चित!'
'ओ जन मानस राज हसिनी, तुमने प्राण दिये जनगण हित,
वैभव की सज सज हाय, तुम धरा धूलि पर अब चिर निद्रित!'
हलचल क्रन्दन कोलाहल से राजमहल हिल उठा अचानक!
देखा सबने सुधा अक मे राजकुमारी सोयी अपलक!
अश्रु अजस्र सुधा के उसको पहनाते थे स्नेह विजय स्रक,
उसने ली थी छीन सखी स रक्त जिह्नध्वज मृत्यु भयानक!
रोते थे नृपति विस्मृत से, रानी पास पडी थी मूर्छित,
किंकर्तव्य विमूढ खडा था अजित अवाक विजित, जीवन मृत!
नत मस्तक थे नृप, घुटनों बल प्रजा प्रणत थी, उभय पराजित,
प्रीति प्रताडित हृदय सुधा का था निष्पन्द प्रजा को अर्पित!
देख अजित को आत्मघात के हित उद्यत, जर्जर, दुख कातर,
झपट सुधा ने छीन लिया द्रुत शस्त्र हाथ स वह, धिक् कायर!
साश्रु नयन उस क्षुब्ध युवक के मुख से निकले सुधा सिक्त स्वर
'सुधा आज से वहिन सखा तुम, अजित विजित, जनगण का अनुचर!'
कथा मात्र है यह कल्पित, उपचेतन स अतिरजित
कही नही है राजकुमारी सुधा धरा पर जीवित!
मनुजोचित विधि से न सभ्यता आज हो रही निर्मित,
सस्कृत रे हम नाम मात्र को, विजयी हममे प्राकृत!
आज सुधा है, शोषित श्रम है, नग्न प्रजा तम पीडित,
प्रीति रहित है अजित काम, कामना न किंचित् विकसित!
अभी नही चेतन मानव से भू जीवन मर्यादित,
अभी प्रकृति की तमस शक्ति से मनुज नियति परिचालित!

दिवा स्वप्न

मेघो की गुरु गुहा-सा गगन,
वाष्प बिंदु का सिंधु समीरण!
विद्युत नयनो को कर विस्मित
स्वर्ण रेख करती हँस अंकित
हलकी जल फुहार, तन पुलकित,

स्मृतियो से स्पंदित मन,
हँसते रुद्र मरुद्गण!
जग, गधर्व लोक सा सुदर,
जन, विद्याधर यक्ष कि किनर,
चपला, सुर अगना नृत्यपर,—
घन से छाया का प्रकाश छन
स्वप्न सृजन करता घन!
ऐसा छाया बादल का जग
हर लेता मन, सहज क्षण सुभग!
भाव प्रभाव उसे देते रँग!
उर मे हँसते इन्द्रधनुष क्षण
सृजन शील यह सावन!

सावन

झम झम झम झम मेघ बरसते हैं सावन के,
छम छम छम गिरती बूँदें तरुओ से छन के!
चम चम बिजली चमक रही रे उर मे घन के,
थम थम दिन के तम मे सपने जगते मन के!
ऐसे पागल बादल बरसे नही धरा पर,
जल फुहार बौछारें धारें गिरती झर झर!
आँधी हर हर करती, दल मर्मर, तरु चर् चर,
दिन रजनी औ' पाख बिना तारे शशि दिनकर!

पखो-से रे, फैले फैले ताडो के दल,
लम्बी-लम्बी अगुलियाँ हैं, चौडे करतल!
तड तड पडती धार वारि की उन पर चचल,
टप टप झरती कर मुख से जल बूँदें झलमल!
नाच रहे पागल हो ताली दे-दे चलदल,
झूम झूम सिर नीम हिलाती सुख से विह्वल!
हरसिंगार झरते, बेला कलि बढती पल पल,
हँसमुख हरियाली मे खग कुल गाते मगल!

दादुर टर टर करते, झिल्ली बजती झन झन,
म्याँउ-म्याँउ रे मोर पीउ पिउ चातक के गण!
उडते सोन बलाक आर्द्र सुख से कर क्रन्दन,
घुमड घुमड घिर मेघ गगन मे भरते गर्जन!
वर्षा के प्रिय स्वर उर मे बुनते सम्मोहन,
प्रणयातुर शत कीट विहग करते सुख गायन!
मेघों का कोमल तम श्यामल तरुओं से छन
मन मे भू की अलस लालसा भरता गोपन!

रिमझिम रिमझिम क्या कुछ कहते बूँदो के स्वर,
रोम सिहर उठते, छूते वे भीतर अन्तर!

धाराओं पर धाराएँ झरती धरती पर,
रज के कण कण मे तृण तृण की पुलकावलि भर।
पकड़ वारि की धार झूलता है मेरा मन,
आओ रे सब मुझे घेरकर गाओ सावन।
इन्द्रधनुष के झूले मे झूलें मिल सब जन,
फिर फिर आये जीवन मे सावन मन भावन।

ताल कुल

संध्या का गहराया झुटपुट,
भीलों का-सा धरे सिर मुकुट,
हरित चूड कुकड़ूँ कूँ कुक्कुट।

एक टाँग पर तुले, दीर्घतर,
पास खडे तुम लगते सुंदर
नारिकेल के हे पादप वर।

चक्राकार दलों से संकुल
फैलाये तुम करतल वर्तुल,
मंद पवन के सुख से कँप कँप
देते कर मुख ताली थप थप,
धन्य तुम्हारा उच्च ताल कुल।

धूमिल नभ के निकट तुम खडे
हाड मात्र भर प्रेत से बडे
मुझे डराते हिला हिला सर
बीस मूड, सौ बाहु नचाकर।

अति कठोर रस भरे नारिफल
मित जीवी फैले थोडे दल।

देवों की-सी रखते काया
देते नही पथिक को छाया।
अगर न ऊँचे होते दादा,
कद का ऊँट तुम्हे खा जाता।
—एक बात, पर लगता प्यारा,
दूर, तरंगित क्षितिज तुम्हारा।

क्रोटन की टहनी

कच्चे मन सा काँच पात्र, जिसमे क्रोटन की टहनी,
ताजे पानी स नित भर, टेबुल पर रखती बहनी।
धागों सी कुछ उसमे पतली जडें फूट अब आयीं,
निराधार पानी मे लटकी दर्तीं सहज दिखायीं।
तीन पात, छींटे सुफेद सोय चित्रित से जिन पर,
चौथा मुट्ठी खोल, हथेली फैलाने को सुंदर।

बहन, तुम्हारा बिरवा, मैंने कहा एक दिन हँसकर,
यों कुछ दिन निर्जल भी रह सकता है, मात्र हवा पर!
किन्तु चाहती जो तुम यह बढ़कर दे आँगन उर भर
तो तुम इसके मूलों को डालो मिट्टी के भीतर!
यह सच है, वह किरण वर्णियों के पाता प्रिय चुम्बन,
पर प्रकाश के साथ चाहिए प्राणी को रज का तम!
पौधे ही क्या, मानव भी यह भू-जीवी निःसंशय,
मम कामना के बिरवे मिट्टी में फलते निश्चय!

नव वधू के प्रति

दुग्ध पीत अधखिली कली सी
मधुर सुरभि का अन्तस्तल,
दीप शिखा सी, स्वर्ण वर्ण के
इन्द्र चाप का मुख मण्डल!
शरद व्योम सी, शशि मुख का
शोभित लेखा लावण्य नवल,
निर्झर स्रोत-सी, स्वच्छ, सरल
जो जीवन में बहता कल-कल!
ऐसी हो तुम, सहज बोध की
मधुर सृष्टि, सन्तुलित, गहन,
स्नेह चेतना सूत्र गुँथी-सी,
सौम्य सुघर जैसे हिमकण!
घुटनों के बल नहीं चलीं तुम,
धर प्रतीति के धीर चरण,
बड़ी हुई जग के आँगन में
थाम रहा बाँह जीवन!
आती हो तुम, सौ सौ स्वागत,
दीपक बन घर की आओ
श्री शोभा सुख स्नेह शान्ति की
मंगल किरणें बरसाओ!
प्रभु का आशीर्वाद तुम्हें, सेंदुर
सुहाग शाश्वत पाओ,
सामच्छन्द के पुनीत स्वर
जीवन में प्रति पग गाओ!

आशंका

यदि जीवन संग्राम
नाम जीवन का,
अमृत और विष ही परिणाम
उदधि मन्थन का—

सृजन प्रथा तव प्रगति विकास नहीं है,
वृद्धि और परिणति ही क्या सही है।
नित्य पूर्ण यह विश्व चिरंतन,
पूर्ण चराचर, मानव तन मन,
अंतर्बाह्य पूर्ण चिर पावन।
केवल जीव वृद्धि पाते हैं,
वे परिणत होते जाते हैं,
जीवन क्षण, जीवन के युग,
जीवन की स्थितियाँ
परिवर्तित परिवर्धित होकर
भव इतिहास कहाते हैं।
छाया प्रकाश दोनों मिलकर
जीवन को पूर्ण बनाते हैं।
यदि जैसा संग्राम
नाम जीवन का,
अमृत और विष ही परिणाम
उदधि मन्थन का,
तव परिणति ही है इतिहास सृजन का,
क्रम विकास अध्यास मात्र रे मन का।

जन्मभूमि

जननी जन्मभूमि प्रिय अपनी, जो स्वर्गादपि चिर गरीयसी।

जिसका गौरव भाल हिमाचल,
स्वर्ण धरा हँसती चिर श्यामल,
ज्योति ग्रथित गंगा यमुना जल
वह जन जन के हृदय में बसी।
जिसे राम लक्ष्मण औ' सीता
बना गये पद धूलि पुनीता,
जहाँ कृष्ण ने गायी गीता
बजा अमर प्राणों में बसी।
सावित्री राधा सी नारी
उतरीं आभा दही प्यारी,
शिला बनी तापस सुकुमारी
जड़ता बनी चेतना सरसी।
शान्ति निकेतन जहाँ तपोवन,
ध्यानावस्थित हो ऋषि मुनि गण
चिद् नभ में करते थे विचरण,
जहाँ सत्य की किरणें बरसीं।

आज युद्ध जर्जर जग जीवन,
पुन करेगी मन्त्रोच्चारण
वह वसुधैव बना कुटुम्बकम्,
उसके मुख पर ज्योति नव लसी।
जननी जन्मभूमि प्रिय अपनी, जो स्वर्गादपि है गरीयसी।

युगागम

आज रे युगों का सगुण
विगत सभ्यता का गुण,
जन - जन में, मन - मन में
हो रहा नव विकसित,
नव्य चेतना सर्जित।

आ रहा नव नूतन
जानता जग का मन,
स्वर्ण हास्यमय नूतन
भावी मानव जीवन,—
बानता अंतमन।

जा रहा पुराचीन
सजन कर, गजन कर,
आ रहा चिर नवीन
वपण कर, सजन कर।

तमस का घन अपार,
सृष्टि वृष्टि धार,
गरजता, — अहंकार
हृदय भार।

है अभिनव, भू पर उतर,
रज के तम को छूकर
स्वर्ण हास्य से दो भर
भू मन को कर भास्वर।

सृजन करो नव जीवन,
नव कम, वचन, मन।

गणपति उत्सव

कितना रूप, राग रंग,
कुसुमित जीवन उमंग।—
अध सभ्य भी जग में
मिलती है प्रति पग में।
श्री गणपति का उत्सव,
नारी नर का मधुरव।

श्रद्धा विश्वास का
आशा उल्लास का
दृश्य एक अभिनव।

युवक नव युवती सुघर!
नयनों से रहे निखर
हाव भाव सुरुचि चाव
स्वाभिमान, अपनाव,
संयम सम्भ्रम के कर।

कुसमय! विप्लव का डर!
आये यदि जो अवसर
तो कोई हो तत्पर
कह सकेगा वचन प्रीत,

'मारो मत, मृत्यु भीत,
पशु हैं रहते लड़कर!
'मानव जीवन पुनीत,
मृत्यु नहीं हार जीत,
रहना सबको भू पर!'

'कह सकेगा साहस भर
देह का नहीं यह रण,
मन का यह संघर्षण!

'आओ, स्थितियों से लड़ें
साथ साथ आगे बढ़ें,
भेद मिटेंगे निश्चय
ऐक्य की होगी जय!

'जीवन का यह विकास,
आ रहे मनुज पास!
उठता उर में रव है,—

एक हम मानव हैं
भिन्न हम दानव हैं।'

स्वप्न-निर्बल

'तुम निर्बल हो, सबसे निर्बल!'
बोला माधव!
'मैं निर्बल हूँ जन युग में निर्बल का सम्बल,'
बोला यादव,

'यह युग की चेतना आज जो मुझमें बहती,
बुद्धिमना, अति प्राणमना यह सब कुछ सहती!
एक ओर युग का वैभव है, एक ओर युग तृष्णा,
एक ओर युग दुःशासन औ एक ओर युग कृष्णा!

'देहमना मानव मुरझाता,
आत्ममना मानव दुख पाता,
इस युग में प्राणों का जीवन
बहता जाता, बहता जाता!'

'क्या है यह प्राणों का जीवन?
कैसा यह युग दर्शन?
बोला माधव,
प्रिय यादव,
'यह भेद बताओ गोपन!'

'यह जीवनी शक्ति का सागर
उद्वेलित जो प्रतिक्षण,

जिसका युग चेतना सदा से
करती आयी मन्थन!'
बोला यादव,
'प्रिय माधव,

'कर शम्भु चाप का भंजन
किया राम ने मुक्त
जीर्ण आदर्शों से जग जीवन!

बनकर युग चेतना राम फिर
नव युग परिवर्तन में
मध्य युगों की नैतिक असि
खण्डित करती जन-मन में!

'गत युग की संकीर्ण नीति यह असि धारा का सा पथ,
आज नहीं चल सकता इस पर भव मानवता का रथ!

'जिसको तुम दुर्बलता कहते, युग प्राणों का कम्पन,
मुक्त हो रही विश्व चेतना तोड़ युगों के बंधन!'
'प्यारे माधव,'
बोला यादव,
'हम दुर्बल हैं, यह सच है पर युग जीवन में दुर्बल,
सूक्ष्म शरीरी स्वप्न आज के होंगे कल के सम्बल!'

लोक सत्य

बोला माधव,
'प्यारे यादव,
'जब तक होंगे लोग नहीं अपने सत्वों से परिचित
जन संग्रह बल पर भव संस्कृति हो न सकेगी निर्मित!
आज अल्प हैं जीवन जग में औ' असंख्य उत्पीड़ित,
लौह मुष्टि से हमें छीननी होगी सत्ता निश्चित!'

बोला यादव,
'प्यारे माधव,
'मुझको लगता आज वृत्त मे घूम रहा मानव मन,
भौतिकता के आवर्तन से रण जजर जग जीवन!
समतल व्यापी दृष्टि मनुज की देख न पाती ऊपर,
देख न पाती भीतर अपने, युग स्थितियों स बाहर!

'नही दीखता मुझे जनो का भूत भ्राति में मगल,
बाह्य क्राति से प्रबल हृदय मे क्राति चल रही प्रतिपल!
मध्य वग की वैभव तद्रा के स्वप्नो से जगकर
हमको अभिनव लोक सत्य है स्थापित करना भू पर!

'युग-युग के जीवन से औ' युग जीवन से उत्सर्जित
सूक्ष्म चेतना मे मनुष्य की, सत्य हो रहा विकसित!
आज मनुज को ऊपर उठ औ' भीतर से हो विस्तृत
नव्य चेतना से जग जीवन को करना है दीपित!'

बोला यादव,
'प्यारे माधव,
'वही सत्य कर सकता मानव जीवन का परिचालन
भूतवाद हो जिसका रज तन, प्राणिवाद जिसका मन,
औ' अध्यात्मवाद हो जिसका हृदय गम्भीर चिरतन
जिसमे मूल सृजन विकास के, विश्व प्रगति के गोपन!

'आज हमे मानव मन को करना आत्मा के अभिमुख,
मनुष्यत्व मे मज्जित करने युग जीवन के सुख-दुख!
पिघला देगी लौह मुष्टि को आत्मा की कोमलता
जन बल से रे कही बडी है मनुष्यत्व की क्षमता!'

सामजस्य

भाव सत्य बोली मुख मटका 'तुम मैं की सीमा है बधन,
मुझे सुहाता घन सा नभ मे लय हो जाना, खो अपनापन!
ये पार्थिव सकीर्ण हृदय हैं, मोल तोल ही इनका जीवन,
नही देखते एक धरा है, एक गगन है, एक सभी जन!'
बोली वस्तु सत्य मुह बिचका 'मुझे नही भाता यह दशन,
भिन्न देह हैं जहाँ, भिन्न रुचि भिन्न स्वभाव, भिन्न सबके मन!
नही एक मे भरे सभी गुण, द्वद्व जगत मे हैं नारी नर,
स्नेही द्रोही, मूख चतुर हैं, दीन धनी कुत्सित औ' सुन्दर!'
आत्म सत्य बोली मुसकाकर, 'मुझे ज्ञात दोनो का कारण,
मैं दोनो को नही भूलती, दोनो का करती सचालन!'
'पख खोल सपने उड जाते, सत्य न बढ पाता गिन गिन पग
सामजस्य न यदि दोनो मे रखती मैं, क्या चल सकता जग?'

ग्रामीण

'अच्छा, अच्छा,' बोला श्रीधर,
हाथ जोडकर, हो मर्माहत,
'तुम शिक्षित, मैं मूर्ख ही सही,
व्यर्थ बहस, तुम ठीक, मैं गलत।

'तुम पश्चिम के रग मे रँगे,
मैं हूँ दकियानूसी भारत',
हँसा ठहाका मार मनोहर,
तुम औ' कट्टर पन्थी? लानत!

'सूट बूट मे सजे धजे तुम
डाल गले फाँसी का फदा,
तुम्हें कहे जो भारतीय वह,
है दो आँखोवाला अन्धा!'

'अपनी अपनी पृथक दृष्टि है,'
दिया क्षुब्ध श्रीधर ने उत्तर,
'भारतीय ही नही, बल्कि मैं
हूँ ग्रामीण हृदय के भीतर।

'धोती कुरते चादर मे भी
नयी रोशनी के तुम नागर,
मैं बाहर की तडक-भडक मे
चमकीली गगा जल गागर।'

'यह सच है कि,' मनोहर बोला,
'तुम उथले पानी के डाभर,
मुझको चाहे नागर कह लो
या खारे पानी का सागर।'

'तुमने केवल अधनगे
भारत का गँवई तन देखा है,
श्रीधर सयत स्वर मे बोला,
'मैने उसका मन देखा है।

भारतीय मूसा पिंजर म
तुम हो मुखर पश्चिमी तोते
नागरिको के दुराग्रहो
तर्कों वादो के पण्डित थोथे।

'मैं मन स ग्रामो का वासी
जो भग तृष्णाओ से ऊपर
सहज आतरिक श्रद्धा से
सद विश्वासो पर रहते निर्भर।

'जो अदृश्य विश्वास सरणि स
करते जीवन सत्य नित ग्रहण
जो न त्रिशकु सदृश लटके हैं,
भू पर जिनके गडे युग चरण।

'उस श्रद्धा विश्वास सूत्र मे
बँधा हुआ मैं उनका सहचर
भारत की मिट्टी मे बोये
जो प्रकाश के बीज हैं अमर !'

आज़ाद

पैगम्बर के एक शिष्य ने
पूछा, 'हज़रत, बन्दे को क्या
है आज़ाद यहाँ तक इन्सां
दुनिया म, पाबन्द कहाँ तक ?'

'खड़े रहो !' बोले रसूल तब,
'अच्छा, पैर उठाओ ऊपर,'
'जैसा हुक्म !' मुरीद सामने
खड़ा हो गया एक पैर पर !

'ठीक, दूसरा पैर उठाओ'
बोले हँसकर नबी फिर तुरत,
बार बार गिर, कहा शिष्य ने
'यह तो नामुमकिन है हज़रत !'

'हो आज़ाद यहाँ तक, कहता
तुममे एक पैर उठ ऊपर,
बँधे हुए दुनिया से कहता
पैर दूसरा अड़ा ज़मी पर !'—
पैगम्बर का था यह उत्तर !

काले बादल

सुनता हूँ, मैंने भी देखा,
काले बादल म रहती चाँदी की रेखा !

काले बादल जाति द्वेष के,
काले बादल विश्व क्लेश के,
काले बादल उठते पथ पर
नव स्वतन्त्रता के प्रवेश के !

सुनता आया हूँ है देखा
काले बादल मे हँसती चाँदी की रेखा !

आज दिशा हैं घोर अँधेरी,
नभ मे गरज रही रण भेरी,
चमक रही चपला क्षण-क्षण पर,
झनक रही झिल्ली झन-झन कर !

नाच-नाच आँगन मे गाते केकी केका
काले बादल में लहरी चाँदी की रेखा।

काले बादल, काले बादल,
मन भय से हो उठता चचल।
कौन हृदय मे कहता पल पल
मृत्यु आ रही साजे दलबल।

आग लग रही, घात चल रहे, विधि का लेखा।
काले बादल मे छिपती चाँदी की रेखा।

मुझे मृत्यु की भीति नही है,
पर अनीति से प्रीति नही है,
यह मनुजोचित रीति नही है,
जन मे प्रीति प्रतीत नही है।

देश जातियो का कब होगा
नव मानवता मे रे एका,
काले बादल मे कल की
सोने की रेखा।

जाति मन

सौ-सौ बाँह लड़ती है, तुम नही लड रहे
सौ सौ देह कटती हैं तुम नही कट रहे
हे चिर मत, चिर जीवित भू जन।

अन्ध रूढियाँ झडती है, तुम नही झड रहे
सूखी टहनी छँटती है, तुम नही छँट रहे,
जीवन-मत नव जीवित भू जन।

जाने से पहिले ही तुम आ गये यहाँ
इस स्वर्ण धरा पर
मरने से पहिले तुमने नव जन्म ले लिया,
धन्य तुम्हे, हे भावी के नारी नर।

काट रहे तुम अन्धकार को,
छाट रहे मृत आदर्शों को,
डुबा रहे नव चेतनता मे
युग मानव के सघर्षों को।

मुक्त कर रहे मृत योनि से
भावी के स्वर्णिम वर्षों को
हाँक रहे तुम जीवन रथ, नव मानव बन,
पथ मे बरसा, शत आशाओ को,
शत हर्षों को।

सौ-सौ बाहें, सौ सौ देहें नहीं कट रही,
बलि के अज, तुम आज कट रहे,
युग युग के वैषम्य, जाति मन,
एवमस्तु, बहिरन्तर जो तुम
आज छंट रहे।

क्षण जीवी

रक्त के प्यासे, रक्त के प्यासे!
सत्य छीनते ये अबला से,
बच्चों को मारते, बला से!
रक्त के प्यासे!

मृत प्रेत ये मनो भूमि के
सदियों से पाले पोसे,
अँधियाली लालसा गुहा में
अन्ध रूढ़ियों के शोषे!

मरने और मारने आये
मिटते नहीं एक-दो से,
ये विनाश के सृजन दूत हैं,
इनको कोई क्या कोसे!
रक्त के प्यासे!

यह जड़त्व है मन की रज का
जो कि मृत्यु से ही जाता,
धीरे धीरे धीरे जीवन
इसको कहीं बदल पाता!

ऊर्ध्व मनुज ये नहीं, अधोमुख,
उलटे इनके जीवन मान,
अन्धकार खींचता इन्हें है,
गाता रुधिर प्रलय के गान!

रक्त के प्यासे!
हृदय नहीं, ये देह लूटते हैं अबला से,
जाति-पाँति से रहित, दुधमुँहे
बच्चों को मारते, बला से!
रक्त के प्यासे!

× × ×

ऊर्ध्व मनुज बनना महान है,
ये प्रमाद की हैं सन्तान,
ऊर्ध्व मनुज बनना महान है,
करना उन्हें आत्म निर्माण!
उस अनादि अनन्त सत्य का
करना है आदान-प्रदान,

धर प्रतीति ज्वाला हाथो मे
करना जीवन का सम्मान।

उड़ प्रेम को, सत्य ज्योति को
शलभ - समर्पित करने प्राण
धुल जायें धरती के धब्बे
इनके प्राणो की बरसा से।
सत्य के प्यासे।

मनुष्यत्व

छोड नही सकते रे यदि जन
जाति, वर्ग, नय, धर्म के लिए रक्त बहाना,
बर्बरता को संस्कृति का बाना पहनाना,—
तो अच्छा हो अगर छोड दें
हम हिन्दू मुस्लिम औ ईसाई कहलाना।
मानव होकर रहे धरा पर,
जाति वर्ण धर्मों से ऊपर
व्यापक मनुष्यत्व मे बँधकर।
नही छोड सकते रे यदि जन
देश राष्ट्र राज्यो के हित नित युद्ध कराना,
हरित जनाकुल भू पर विष पावक बरसाना,—
तो अच्छा हो अगर छोड दें
हम अमरीकन रूसी औ' इंग्लिश कहलाना।
निखरे भू देशो से ऊपर,
पृथ्वी हो सब मनुजो का घर,
हम उसकी संतान बराबर।
छोड नही सकते हैं यदि जन
नारी मोह, पुरुष की दासी उसे बनाना,
देह द्वेष औ' काम क्लेश के दृश्य दिखाना,—
तो अच्छा हो अगर छोड दें
हम समाज मे द्वंद्व पुरुष स्त्री मे बँट जाना।
स्नेह मुक्त सब रहें परस्पर,
हो स्वतंत्र नारी जस नर,
देव द्वार हो मात कलेवर।

पतिता

रोता हाय मारकर माधव,
वृद्ध पडोसी जो चिर परिचित,
'क्रूर, लुटेरे हत्यारे कर गये
बहू को, नीच, कलंकित।'

'फूटा करम, धरम भी लूटा!'
धीरा हिला, रात सब परिजन
'हा अभागिनी, हा कलंकिनी!'
सिसक रहे गा गाकर पुरजन!

सिसक रही सहमी कोने में
अबला साँसों की-सी ढेरी,
कोस रही घेरे पड़ोसिनें,
आँख चुराती घर की चेरी!

इतने में घर आता केशव,
'हा बेटा!' कर दारुण रोदन
माथा लेते पीट कुटुम्बी,
छिन्न लता सा कँप उठता तन!

'सब सुन चुका!' चीखता केशव,
बन्द करो यह रोना धोना!
उठो मालती, सील जायगा
तुमको घर का काला कोना!

'मन से होते मनुज कलंकित,
रज की देह सदा से दूषित,
प्रेम पतित पावन है, तुमको
रहने दूँगा मैं न कलंकित!'

परकीया

विनत दृष्टि हो बाली करुणा, आँखों में थे आँसू के घन
'क्या जाने क्या आप कहेंगे, मेरा परकीया का जीवन!'
स्वच्छ सरोवर सा वह मानस, नील शरद नभ से वे लोचन
कहते थे वह मम कथा जो उमड़ रही थी उर में गोपन!
बोला विनय समझ सकता हूँ, मैं स्वकता का मानस क्रन्दन,
पूत पंच कन्याओं में ही आप छठी हैं पातक मोचन!
'यदपि जबाला सदृश आपको अर्पित कर अपना यौवन धन
मूल्य चुकाना पड़ा जन्म का तोड़ बाह्य सामाजिक बन्धन!
'फिर भी लगता मुझे, आपने किया पुण्य जीवन है यापन,
बतलाती यह मन की आभा, कहता यह गरिमा का आनन!
'पति पत्नी का सदाचार भी नहीं मात्र परिणय से पावन
काम निरत दम्पति जीवन यदि भोग मात्र का परिणय साधन!
'प्राणों के जीवन से ऊँचा है समाज का जीवन निश्चय,
अंग लालसा में सामाजिक सर्जन शक्ति का होता अपचय!
'पंकिल जीवन में पंकज सी शोभित आप देह से ऊपर,
वही सत्य जो आप हृदय से, शेष शून्य जग का आडम्बर!
'अतः स्वकीया या परकीया जन समाज की है परिभाषा
काम मुक्त औ प्रीति युक्त होगी मानवता, मुझको आशा!'

ध्वजा वन्दना

फहराम्रो तिरंग, फहराम्रो ।
मात चेतना के जाग्रत ध्वज,
ज्योति तरंगो मे लहराम्रो ।
इन्द्रधनुष - से घन गर्जन मे,
पौरुष से जग जीवन रण मे,
जन स्वतन्त्रता के प्रागण मे
विजय शिखा से उठ छहराम्रो ।
उठते तुम, उठते दृग अपलक,
स्वाभिमान से उठते मस्तक
उठते बहु भुज चरण प्रचानक,
लौह की दीवार गरजती
हम त्याग का पन्थ दिखाम्रो ।
तुम्हे देख जन मन निर्भय हो,
धरती पर नव स्वर्णोदय हो,
आत्म विजय ही विश्व विजय हो,
जब जब जग मे लोक क्रान्ति हो
तुम प्रकाश किरणें बरसाम्रो ।
भगे अविद्या दैन्य निराशा,
जगे उच्च जीवन अभिलाषा,
एक ध्येय हो भूषा भाषा,
शान्त शक्ति के धर्म चक्र तुम
जग मे नित जन मंगल लाम्रो ।

१५ अगस्त १९४७

चिर प्रणम्य यह पुण्य अहन् जय गाम्रो सुरगण
आज अवतरित हुई चेतना भू पर नूतन ।
नव भारत फिर चीर युगो का तिमिर आवरण,
तरुण अरुण-सा उदित हुआ परिदीप्त कर भुवन ।
सभ्य हुआ अब विश्व सभ्य धरणी का जीवन
आज खुले भारत के संग भू के जड़ बन्धन ।
शान्त हुआ अब युग-युग का भौतिक संघर्षण
मुक्त चेतना भारत की यह करती घोषण ।
आम्र मौर लाम्रो हे [illegible] वनाम्रो
पावन गगा जल नर [illegible] सजाम्रो ।
नव अशोक पल्लव के बन्दनवार बँधाम्रो
जय भारत गाम्रो [illegible] जय भारत गाम्रो !
उन्नत लगता चन्द्र [illegible] आज हिन्दु[illegible]
चिर [illegible] हों [illegible]

स्वर्ण धूलि

लहर - लहर पर इन्द्रधनुष ध्वज फहरा चचल
जय निनाद करता, उठ सागर, सुख से विह्वल !
धन्य आज का मुक्ति दिवस, गाओ जन-मगल,
भारत लक्ष्मी से शोभित फिर भारत शतदल !
तुमुल जयध्वनि करो, महात्मा गांधी की जय,
नव भारत के सुज्ञ सारथी वह निःसशय !
राष्ट्र नायको का हे पुन करो अभिवादन,
जीर्ण जाति मे भरा जिन्होंने नूतन जीवन !
स्वर्ण शस्य बाँधो भू वेणी मे युवती जन,
बनो वज्र प्राचीर राष्ट्र की, वीर युवकगण !
लोह सगठित बने लोक भारत का जीवन,
हो शिक्षित सम्पन्न क्षुधातुर नग्न भग्न जन !
मुक्ति नही पलती दृग जल से हो अभिसिचित,
सयम तप के रक्त स्वेद से होती पोषित !
मुक्ति मॉगती कर्म वचन मन प्राण समर्पण,
वृद्ध राष्ट्र को, वीर युवकगण, दो निज यौवन !
नव स्वतन्त्र भारत हो जग हित ज्योति जागरण,
नव प्रभात मे स्वर्ण स्नात हो भू का प्रांगण !
नव जीवन का वैभव जाग्रत हो जनगण मे,
आत्मा का ऐश्वर्य अवतरित मानव मन मे !
रक्त सिक्त धरणी का हो दु स्वप्न समापन,
शान्ति प्रीति सुख का भू स्वर्ग उठे सुर मोहन !
भारत का दासत्व दासता थी भू मन की,
विकसित आज हुईं सीमाएँ जग जीवन की !
धन्य आज का स्वर्ण दिवस, नव लोक जागरण,
नव सस्कृति आलोक करे जन भारत वितरण !
नव जीवन की ज्वाला से दीपित हो दिशि क्षण,
नव मानवता मे मुकुलित धरती का जीवन !

हृदय तारुण्य

आम्र मजरित, मधुप गुजरित,
गन्ध समीरण मन्द सचरित !
प्राणो का पिक बोल उठा फिर
अतर मे कर ज्वाल प्रज्वलित !

डाल - डाल पर दौड रही वह
ज्वाल रग रगो मे कुसुमित,
नस - नस मे कर रुधिर प्रवाहित
उर मे रस वश गीत तरगित !

तन का यौवन नही हृदय का
यौवन रे यह आज उच्छ्वसित,

फिर जग मे सौन्दय पल्लवित
प्राणो मे मधु स्वप्न जागरित।
आम्र मजरित, मधुप गुजरित,
गध समीरण अध सचरित।
प्राणो म पिक बोल उठा फिर
दिशि-दिशि मे कर ज्वाल प्रज्वलित।

प्रणय कुज

तुम प्रणय कुज मे जब आयी
पल्लवित हो उठा मधु यौवन
मजरित हृदय की अमराई।
मलय हुआ मद चचल
लहराया सरसी जल,
अलि गूज उठे, पिक ध्वनि छायी।
अब वह स्वप्न अगोचर,
मम व्यथा मर्मान्तक करती अन्तर,
प्राणो के दल झर-झर
करते आकुल ममर।
चिर विरह मिलन मे भर लायी,
तुम प्रणय कुज मे जब आयी।

मर्म कथ

बाँध दिये क्यो प्राण
प्राणो से।
तुमने चिर अनजान
प्राणो से।
गोपन रह न सकेगी
अब यह मम कथा,
प्राणो की न रुकेगी
बढती विरह व्यथा,
विवश, फूटते गान,
प्राणो से।
यह विदेह प्राणो का बन्धन,
अन्तर्ज्वाला मे तपता तन।
मुग्ध हृदय सौन्दय शिखा को
दग्ध कामना करता अपण।
नही चाहता जो कुछ भी आदान
प्राणो से।
बाँध दिये क्यों प्राण
प्राणो से।

मर्म व्यथा

प्राणों में चिर व्यथा बाँध दी!
क्यों चिर दग्ध हृदय को तुमने
वृथा प्रणय की अमर साध दी!

पर्वत को जल, दारु को अनल,
वारिद को दी, विद्युत चंचल,
फूल को सुरभि, सुरभि को विकल
उड़ने की इच्छा अबाध दी!

हृदय दहन रे हृदय दहन,
प्राणों की व्याकुल व्यथा गहन!
यह सुलगेगी, होगी न सहन,
चिर स्मृति की श्वास समीर साथ दी!

प्राण गलेंगे, देह जलेगी,
मर्म व्यथा की कथा ढलेगी,
सोने-सी तप, निखरेगी
प्रेयसि प्रतिमा, ममता अगाध दी!
प्राणों में चिर व्यथा बाँध दी!

गोपन

मैं कहता कुछ, रे बात और!
जग में न प्रणय को कहीं ठौर!

प्राणों की सुरभि बसी प्राणों में
बन मधु सिक्त व्यथा,
वह नीरव गोपन मर्म मधुर
वह सह न सकेगी लोक कथा,

क्यों व्यथा प्रेम आया जग में
सिर पर काँटों का धरे मौर!
मैं कहता कुछ, रे बात और!

सौंदर्य चेतना विरह मूढ़,
मधु प्रणय भावना बनी मूक,
रे हूक हृदय में भरती अब
कोकिल की नव मंजरित कूक!

काले अक्षर का जला प्रेम
लिखते कलियों से सटे भौंर!
मैं कहता कुछ, रे बात और!

शरद चाँदनी

शरद चाँदनी!
विहँस उठी अनल मौन
नीलिमा उदासिनी!

आकुल सौरभ समीर
छल-छल चल सरित नीर,
हृदय प्रणय से अधीर,
जीवन उन्मादिनी!

अश्रु सजल तारक दल
अपलक दृग गिनते पल,
छेड़ रही प्राण विकल
विरह वेणु वादिनी!

जगी कुसुम कलि थर थर
जगे रोम सिहर सिहर,
शशि असि सी प्रेयसि स्मृति
जगी हृदय ह्लादिनी!
शरद चांदनी!

स्वप्न बन्धन

बाँध लिया तुमने प्राणों को फूलों के बन्धन में,
एक मधुर जीवित आभा सी लिपट गयी तुम मन में!
बाँध लिया तुमने मुझको स्वप्नों के आलिंगन में!
तन की सौ शोभाएं सम्मुख चलती फिरती लगती,
सौ-सौ रंगों में, भावों में तुम्हें कल्पना रँगती,
मानसि, तुम सौ बार एक ही क्षण में मन में जगती!
तुम्हें स्मरण कर जी उठते यदि स्वप्न, आंक उर में छवि,
तो आश्चर्य प्राण बन जायें गान, हृदय प्रणयी कवि?
तुम्हें देखकर स्निग्ध चांदनी भी जो बरसावे रवि!
तुम सौरभ सी सहज मधुर बरबस बस जाती मन में,
पतझर में लाती वसंत, रस स्रोत विरस जीवन में
तुम प्राणों में प्रणय, गीत बन जाती उर कम्पन में!
तुम देही हो? दीपक लौ सी दुबली, कनक छबीली
मौन मधुरिमा भरी, लाज ही सी साकार लजीली
तुम नारी हो? स्वप्न कल्पना सी सुकुमार सजीली?
तुम्हें देखने शोभा ही ज्यों लहरी सी उठ आयी,
अंग भंगिमा तनिमा बन मृदु देही बीच समायी
कोमलता कोमल अंगों में पहिले तन धर पायी!
फूल खिल उठे, तुम बसी हो भू को दी दिखलायी
सुंदरता वसुधा पर खिल सौ-सौ रंगों में छायी,
छाया सी ज्योत्स्ना सकुची, प्रतिछवि सी उषा लजायी!
तुममें जो लावण्य मधुरिमा, जो असीम सम्मोहन,
तुम पर प्राण निछावर करने पागल हो उठता मन!
नहीं जानती क्या तुम निज बल, निज अपार आकर्षण?

बांध लिया तुमने प्राणों को प्रणय स्वप्न बंधन में,
तुम जानो, क्या तुमको भाया, मम छिपा क्या मन में।
इंद्रधनुष बनकर हँसती तुम अश्रु वाष्प के घन में।

स्वप्न देही

स्वप्न देही हो, प्रिये, तुम
देह तनिमा अश्रु धोयी।
रूप की लौ - सी सुनहली
दीप में तन के सँजोयी।

सेज पर लेटी सुघर
सौंदर्य छाया - सी सुहायी,
काम देही स्वप्न - सी
स्मृति तल्प पर तुम दी दिखायी।

कल्पना की मधुरिमा - सी
भाव मृदुता में डुबोयी।

देह में मृदु देह - सी
उर में मधुर उर-सी समाकर,
लिपट प्राणों से गयी तुम
चेतना सी निपट सुन्दर।

प्रेम पलकों पर प्रकल्पित
रूप की सी स्वप्न सोयी।

विरल पट से झलक
ऊर्मिल अलक करते हृदय मोहित,
सरित जल में तैरती ज्यों
नील घन छाया तरंगित।

काम वन में प्रणय ने हो
कामना की बेलि बोयी।

लालसा तम - से तुम्हारे
कुंतलों के जाल में भ्रम
क्यों न होता प्यार अंधा
छवि अपार निहार निरुपम।

मम की आकुल तृषा तुम
प्रणय श्वासों में पिरोयी।

स्नेह प्रतिमा सी मनोरम
मम इच्छा से विनिर्मित,
हृदय शतदल में सतत तुम
झूलती अभिलाष स्पंदित।

सार तत्त्वों की बनी तुम
देह मूर्तो बीच सोयी।

मानसी

यह दृश्य नारी का रूपक है। नेपथ्य मे गीत वाद्य दृश्यो के अनुरूप वेश विन्यास पिक मिलन भोग का, पपीहा विरह त्याग का प्रतीक है। कुल नारियो शालीन रगो के वस्त्रो मे, गोपिकाएँ चटकील फूलते लहँगो और ओढ़नियो मे, भिक्षु भिक्षुणियाँ केसरी और गेरुवे लबादो म, तथा आधुनिकाएँ विविध प्रातो के सुरग सुरुचिपूर्ण परिधानो मे नाचती हैं। अन्तिम दृश्यो मे भविष्य के निर्माता कृषक श्रमिक तथा मध्य उच्च वर्गों के युवक सफद और खाकी खादी मे, एव सस्कृति की सन्देश वाहिकाएँ नव युवतियाँ रगीन रेशमी वस्त्रो मे, नृत्य नाट्य एव अभिनय करती हैं। जहाँ अकेले पिक चातक तथा युवक युवती की आत्मा के गीत हैं, वहाँ प्रदर्शन की सुविधानुसार अन्य युवक-युवतियाँ भी सहायक हो सकती हैं।

प्रथम दृश्य

युवक (१)

पिक, गाओ!
नव जीवन के चारण वन
नव प्रणय कथा बरसाओ।
पिक, गाओ।

प्रीति मुक्त हो, बने न बन्धन,
विरह मिलन देवें आलिगन,
हो प्रतीति मन नर नारी जन
दिशि - दिशि ज्वाल जलाओ।

आज वसन्त विचरता भू पर
नव पल्लव के पख खोलकर,
नवल चेतना की स्वर्णिम रज
गन्ध समीर, उड़ाओ।

कौन तरुणि तुम हँसी रँगीली
बिखराती आँसू से गीली ?
जीवन गल, प्रिये, कँकरीली
आओ, पर तुम आओ।
पिक, गाओ।

पिक (२)

बौरी थी यौवन अमराई,
गन्ध मन्द शीतल पुरवाई,
वह मुग्धा जीवन मे आयी
नव ऊषा-सा सहज लजायी।
कुहू, कुहू कूहू।

फूलों का उसका कोमल मन,
सौरभ की साँसों का मृदु तन,
रोम्रो - रोम्रो मे आलिंगन
चित्र लिखी थी रूप लुनाई !
कूहू, कुहू कूहू !

कुटिल कँटीला इस जग का मग,
रँगे रुधिर से जीवन के पग,
पीडा की प्रेमी की रग - रग,
व्यथा प्रेम की ही परछाँई !
कूहू, कुहू कूहू !

प्रेम ? प्रेम को मिला शाप रे,
मनस्ताप वह मनस्ताप रे,
जग जीवन के लिए पाप रे,
नभ मे विरह घटा घिर छायी !
कूहू, कुहू कूहू !

(३)

युवक

तुम जाम्रो, सखि, जाम्रो !
पाप शाप से बचो, प्रिये, तुम
ताप न उर मे पाम्रो !
तुम जाम्रो !

प्राण, प्रणय विष पान मत करो,
प्राणो को दे प्राण मत हरो,
प्रिय का उर मे ध्यान मत धरो,
पथ मे मत बिलमाम्रो !

जब तक जीवन मे वसन्त है,
यौवन से मुकुलित दिगन्त है,
म्राशा सुख सपने अनन्त हैं,
प्रिय का मोह भुलाम्रो !
तुम जाम्रो !

युवती

जैसे तुम हो, वैसे ही जन,
वही हृदय, छबि लोभी लोचन,
वही प्रणय का ताप है गहन,
तुम मत हृदय दुखाम्रो !
प्रिय, म्राम्रो !

किसको रे वह ऐसी क्षमता
रोक सके प्राणो की ममता,
यह स्वभाव मन का, वह रमता,
मुझको राह सुझाम्रो !
प्रिय, म्राम्रो !

युवक

फूलो की मृदु देह तुम्हारी,
काटो की कटु गैल हमारी,
प्रणय ताप अति दु सह प्यारी,
वृथा न हृदय लुभाओ।
तुम जाओ।

प्रणय अचिर दो दिन का सपना,
तन का तपना, मन का तपना
सुन न सकूगा प्रिये कलपना,
अपना सुख न गँवाओ।
तुम, जाओ।

दूसरा दृश्य

(४)

पपीहा

पी कहाँ, पी कहाँ?
प्रेम बिना सूना जग जीवन,
प्रिय के मधुर प्रतीक्षा के क्षण,
बरसाओ प्रिय, स्वाति सुधा कण
बाट जोहता विश्व यहाँ।
प्रेम बिना जन हैं जीवन-मृत
प्रम बिना अपने म सीमित,
मिलता जहा प्रणय चरणामृत,
मत्यु न आती पास तहा।

प्रेम नही प्राणो का ब धन,
प्रेम न अस्थिर विरह मिलन क्षण,
प्रेम मुक्ति है, प्रेम ही सजन,
सुख-दुख मे आन द जहाँ।

प्रेम वष्टि मे कर अवगाहन
बनो भीत प्रणयी चिर पावन
जहाँ हृदय म लगन, स्वाति घन
बरसेंगे हो विवश वहाँ।

प्रेमी के आँसू के हा घन
प्रेयसि की स्मृति के विद्युत व्रण,
चिर अतृप्ति की उर म गजन,
विरह मिलन बन जाय महा।

युवक

(५)

तुम आती हो तो आओ प्रेयसि, आओ,
जीवन पथ म सौ दय किरण बरसाओ।

यह सच है, सूना प्रेम विना जग जीवन,
नर नारी उर का प्रणय ग्राज दृढ़ बंधन,
तुम छाया नारी से मानवी कहाग्रो।
तुम विरह मिलन से मुक्त प्रणय बन ग्राना,
तन भीति रहित, भव जीवन को अपनाना,
निज हृदय माधुरी मे जग को नहलाग्रो!
तुम सृजन शक्ति बन मेरे उर मे गाना,
तुम चिर प्रतीति बन जन मन मे घुल जाना,
प्राणो मे स्वर्गिक सौरभ मधुर बसाग्रो!
जन एक प्राण, दो देह, ग्रभिन्न हृदय हो,
प्रत्यय हो मन म, सशय नही उदय हो,
उर की उर, जीवन की जीवन बन जाग्रो!
तुम ग्राती हो तो ग्राग्रो, प्रेयसि, ग्राग्रो!

युवती

मैं ग्राती हूँ, जीवन, ग्राती हूँ प्रियतम,
हृदया का प्रेम प्रकाश, नही तन का तम,
तुम खोल हृदय पट, प्रिय, फिर मुझे बुलाग्रो,
युवक—तुम ग्राग्रो मानसि, ग्राग्रो, प्रेयसि, ग्राग्रो!
प्रिय, मैं ही सीता, मैं सावित्री, राधा,
हरती ग्रायी जग जीवन पथ की बाधा,
पा मातृ शक्ति, जन मगल, प्राण, मनाग्रो,
युवक—ग्राग्रो हे ग्राभा देही देवी, ग्राग्रो!
युवती—मैं गार्गी, घोषा, सूर्या, ग्रदिति, प्रवीणा,
भारती, मालती, मल्ली, खना, नवीना,
जन-जन के उर मे तुम ग्राह्वान उठाग्रो,
युवक—ग्राग्रो हे, युग की दिव्य विभा बन ग्राग्रो!
युवती—मैं दुर्गा लक्ष्मी काली पावन चरणा,
मैं भक्ति शक्ति सौंदय माधुरी करुणा,
तम का विनाश, युग का निर्माण कराग्रो,
युवक—ग्राग्रो हे, जग जीवन धात्री तुम ग्राग्रो!
युवती—कब से मुख पर धर लज्जा का ग्रवगुण्ठन
मैं बनी मनुज की मोह वासना की तन,
मैं तुम्हे शक्ति देती, व्यवधान हटाग्रो,
युवक—ग्राग्रो, ऊषा बन, ग्रनवगुण्ठिते, ग्राग्रो!

तीसरा दृश्य
(६)

युवती—मैं ग्रायी फिर प्रियतम, ग्रायी!
युग-युग के रूपो की मेरी
देखो तुम छिपती परछाँई!

तुम क्या नर थे, मैं क्या नारी,
वधू अधीना, पति अधिकारी,
तुमने मेरी फूल देह पर,
वप्त लालसा सेज सजायी।

मैं मानवी आज जन धात्री,
मानव सहचरि, जीवन छात्री,
भीत न होओ, प्रिय, अब नारी
लेती जागति की अँगड़ाई।

मुझको अब नारी तन धोना,
देह मोह निज तुमको खोना,
मैं यदि फिसलूगी युग पथ पर
प्रिय, तुम होगे उत्तरदायी।

खिसका आज देह की छाया
आभा पुन बनेगी माया,
संस्कारो की भ्रांति धरा पर
स्वर्ण शान्ति लायगी स्थायी।

युग युग के रूपो की मेरी
देखो, प्रिय, छिपती परछाँई।

(७)

सीता राम, सीता राम,
दया धाम हे प्रणाम।
हम नर - छाया, कुल नारी,
पतिव्रता, पति की प्यारी,
गृह दासी, सुत महतारी
कलह अविद्या अँधियारी।
लज्जा सज्जामय गुण ग्राम,
सीता राम, सीता राम।
जब घर से बाहर जाती
छुईमुई - सी कुम्हलाती
देख जनो को सकुचाती,
नयन लालसा उकसाती।
करती नित घर के सब काम,
सीता राम सीता राम।
युग - युग स हम अवगुंठित,
गृह की दीप शिखा कम्पित
देह मोह मे ही सीमित
पुरुष मात्र से आतंकित।
विधि सदैव से हम पर वाम,
सीता राम, सीता राम।

कौन जगाता हमे स्वजन
उर मे तम मे भर कम्पन,
दबा राख मे पावक कण,
उसे जगा दे आज पवन !
प्रभु अबला का लें कर थाम,
सीता राम, सीता राम !

(८)

राधे श्याम, राधे श्याम,
विश्व रूप हे ललाम !
आयी थी एक बार
हम तन-मन प्राण वार,
सुन मधु मुरली पुकार
छोड नेह गेह द्वार,
तज निज सब काज काम,
राधे श्याम, राधे श्याम !
यमुना की कल तरग
बनी चपल भृकुटि भग,
अग-अग मे उमग
नृत्य गीत रास रग,
अधरो पर मधुर नाम
राधे श्याम, राधे श्याम !
बही गीति काव्य धार
रस के निर्भर अपार,
सस्कृति वह थी उदार
जीवन था नही भार,
जन-मन थे पूर्ण काम
राधे श्याम, राधे श्याम !
निखिल नायिका ललाम
हम ब्रज की रही बाम,
प्रीति रीति मे प्रकाम,
बिकी बँधी बिना दाम
मधुर भाव मे अकाम,
राधे श्याम, राधे श्याम !
कौन आज यह कुमार
करता फिर से प्रचार,
किसलिए कुलीन नार
करे फिर घराऽभिसार ?
ऐसा वह कौन काम,
राधे श्याम, राधे श्याम !

(९)

बुद्ध की शरण,
धम की शरण,
सघ की शरण।
इच्छा मानव दुख का कारण,
इच्छा का यदि करें निवारण,
तो जग जीवन हो फिर पावन
चिर निर्वाण मिले भव तारण।
बुद्ध की शरण,

सेवा ही हो जीवन का व्रत,
सवा ही मे हो जीवन रत
सवा हित जो हो मस्तक नत
बोधिसत्व के मिलें शुचि चरण।
बुद्ध की शरण,

जीव मात्र पर बरस करुणा,
मानव उर म हरस करुणा,
सेवा के हित तरसे करुणा,
मिटें शोक सब जन्म रुज मरण।
बुद्ध की शरण,

छोडो हे मिथ्या माया जग,
रोग जरा भय मत्यु के विहग
पकडो भिक्खु-भिक्खुणी का मग
जीवन की भय भीति हो हरण।
बुद्ध की शरण,

किन्तु उच्छ्वसित हो रह रह मन
प्राणो मे भरता क्यो क्रन्दन,
स्वप्नाकुल क्यो होते लोचन
भिक्खु नात क्या तुमको कारण?

बुद्ध की शरण
धम की शरण,
सघ की शरण।

चौथा दृश्य

नेपथ्य गीत

(१०)

जीवन मे जितना डूबोगे उतना ही तुम उकताओग,
मधु मे लिपटाकर पख, मधुप, फिर सहज नही उड पाओगे।
सुख की तृष्णा बनती विषाद, सुख-दुख म जो तुम धीर रहो
दुख म तुम रुकना सीखोगे, प्रिय, सुख म चरण बढाओग।

तुम म क्या उर गरिमा ?
केवल तन की लघिमा ।
आधुनिका ।

(१२)

हम प्रीति शिखा
अति आधुनिका ।
पथ रही दिखा ।

हम गोरी भोरी प्रिय परिया
हम अस्ताचल की अप्सरियाँ,
मधु मुखर प्रणय की निर्झरियाँ,
हम नव युग ज्योति उजागरिया,
हम प्रीति शिखा ।

हम पढी लिखी नव नागरिया
गोरस न सुरा की गागरिया,
हम नही गहो की चाकरिया,
हम नत्य निपुण गुण आगरिया।
अति आधुनिका ।

अगो पर देती विरल वसन
जिसस विमुक्त निखरे यौवन,
हम तोड प्रणय के कटु ब धन
मोहित करती जन जन के मन,
हम प्रीति शिखा ।

तन पर न हमारे अवगुण्ठन,
घर हाथ पकड लेती हम मन
मिलती सबस खुल के गोपन
क्या हम आदश नही स्त्री जन ?
अति आधुनिका ।

युवक

प्रिय सखि, तुम पूरब म आयी
पर तनिक नही जागति लायी
ले फूल विहग की सुघराई
तुम विभव स्वप्न मे अलसायी,
अयि प्रीति शिखा ।

तुमको प्रिय प्राणो का जीवन
अनि भरा स्नायुआ मे स्प दन,
तुम हो युग जीवन की दपण
यह प्रगति नही री चपल चरण,
अति आधुनिका ।

जो सहज तैर लेते जग मे, आगे बढ पार वही पाते,
तुम रँगे लालसा रँग म जो, गेरुवा पहन के जाओगे !
आसक्ति विरक्ति अकेले ही घूघट पट नही उठायेंगी,
जो निरत हुए पछताओगे, जो विरत हुए क्या पाओगे ?
रति और विरति के पुलिनो म बहती जीवन रस की धारा,
रति से रस लोगे और विरति से रस का मूल्य लगाओगे !
नारी मे फिर साकार हो रही नव्य चेतना जीवन की,
तुम त्याग भोग को सजन भावना मे फिर नवल डुबाओगे !

(११)

रूप शिखा
आधुनिका !

फूलो की तन-सुवास,
लहरो का चरण लास,
शशि का मधु सुधा हास
विद्युत का भ्रू विलास
रूप शिखा !

भाल पर न बेंदि सुघर
माग मे न सेंदुर वर
रँगती हम मधुर अधर
भ्रू धनु मे कज्जल भर !
आधुनिका !

छूट गयी पट सस्कृति,
हृदय रहित मधुराकृति,
दे रही प्रगति को गति
हम नव युग की भारति,
रूप शिखा !

युवक
शोभा का है प्रिय तन,
मुक्त नही तन से मन,
प्रिये, धीर धरो चरण
रिक्त क्या न यह जीवन ?
आधुनिका !

आयी घर से बाहर
चकाचौंध नयनो पर,
छोड मध्य युग की डर
मानवी बनी न निखर !
रूप शिखा !

तुम थी भारत महिमा,
आज ध्वस युग प्रतिमा !

तुम म क्या उर गरिमा ?
केवल तन की लघिमा ।
आधुनिका ।

(१२)

हम प्रीति शिखा
अति आधुनिका ।
पथ रही दिखा ।

हम गोरी भोरी प्रिय परियाँ
हम अस्ताचल की अप्सरियाँ,
मधु मुखर प्रणय की निर्झरियाँ,
हम नव युग ज्योति उजागरियाँ,
हम प्रीति शिखा ।

हम पढी लिखी नव नागरियाँ
गोरस न, सुरा की गागरियाँ,
हम नही गृहा की चाकरियाँ,
हम नृत्य निपुण गुण आगरियाँ,
अति आधुनिका ।

अगो पर देती विरल वसन
जिससे विमुक्त निखरे यौवन
हम तोड प्रणय के कटु बधन
मोहित करती जन जन के मन,
हम प्रीति शिखा ।

तन पर न हमारे अवगुण्ठन
धर हाथ पकड लेती हम मन
मिलती सबस खुल के गोपन
क्या हम आदश नही स्त्री जन ?
अति आधुनिका ।

युवक

प्रिय सखि, तुम पूरब म आयी
पर तनिक नही जागृति लायी
ले फूल विहग की सुघराई
तुम विभव स्वप्न म अलसायी
अयि प्रीति शिखा ।

तुमको प्रिय प्राणो का जीवन
अति भरा स्नायुओ म स्प दन,
तुम हो युग जीवन की दपण
यह प्रगति नही, री चपल चरण,
अति आधुनिका ।

पाँचवाँ दृश्य

(१३)

नैपथ्य गीत

शारदे !
शरद हासिनी,
तम विनाशिनी, जग प्रकाशिनी,
नव स्मिति की ज्योत्स्ना बरसाओ
वसुधा पर, जीवन विकासिनी !
शारदे !

नवल नीलिमा मे रत अम्बर,
निर्मल सुख से कम्पित सरि सर,
उतरो हे आभामयि, भू पर,
कुमुद आसनी !

शुभ्र चेतना-सी नव विचरो,
भाव लहरियो को छू निखरो,
पृथ्वी के तण-तृण पर बिखरो,
ज्योति लासिनी !

स्वप्न जडित भू रज हो चेतन,
तन से ज्योत्स्ना-सा छिटके मन,
दग तारा से झरें नव किरण,
हृदय वासिनी !

आओ, नव नारी बन आओ,
जग की शोभा मे लिपटाओ,
नव जीवन की सुधा पिलाओ,
श्री विलासिनी !

नैपथ्य गीत (१४)

ताराओ-सी शुचि आत्माएँ मैं आज धरा पर भेजूगी,
नव भाव शक्तियो से भू को मैं फिर से सहज सहेजूगी !
मैं ही सोयी जग के तम मे, मैं ही प्रात रगो मे जगती,
मैं नर-नारी मे आज द्विधा हो जीवन के भुज भेटूगी !
जो जन मन आज उठे ऊपर मैं फिर धरती पर उतरूंगी,
मानव के उर म कर प्रवेश जग मे नव जीवन वितरूगी !
लो, आज तुम्हें छूती हूँ मैं अपने आभा के अचल से,
मानव के स्वर्गिक स्वप्नो को मैं जीवन की देही दूगी !

छठा दृश्य

(१५)

युवक

मानिनि, अधिक विलम्ब मत करो !
ओ मानव की स्वर्णिम मानसि,
उतरो अब धरती पर उतरो !

युवती

प्रिय मैं उतर धरा पर आयी!
उदय शिखर पर नव युग की अब
देखो, स्वर्ण ध्वजा फहरायी!

युवक

निखिल सृष्टि की बन तुम आशय,
जीवन की संकल्प असंशय,
अंतर्मन की चिर अभिलाषा
सृजन तत्व की सार बन प्रणय,
युग - युग के जग जीवन के
चिर ज्ञान कला से प्रेयसि, निखरो!
मानव की प्रिय मानसि, विचरो,
तुम फिर से धरती पर विचरो!

युवती

मानव उर की आशा के पर,
जीवन के स्वप्नों का तन धर,
सृजन चेतना सी सदेह अब,
उर मे मधुर प्रतीति बन अमर,
आज सृजन आनंद से उमँग
मैंने जीवन रज लिपटायी!
पुन सूक्ष्म से स्थूल बनी मैं
छिपी ज्योति मे सब परछाइं!
प्रिय, मैं उतर धरा पर आयी!

(१६)

नेपथ्य गीत

आज हँस उठे जीवन के रँग!
फूल कली तृण सतरँग बादल
उमँग उठे पुलकित हो उर अँग!
मधुर अवनि अब, मधुर निखिल जग
मधुर नीलिमा, मधुर मुखर खग,
मधुर शूल, सुमधुर जीवन मग,
मधुर दुख सुख, मधुर मरण सँग!
आशा अभिलाषाएँ हँसती,
प्रीति प्रतीति हृदय मे बसती,
देव भावना उर मे जगती
आत्मत्याग से झंकृत रग - रग!
नव प्रकाश से गयी दिशा भर
लोट रही किरणें भू रज पर,
स्वर्ग धरा पर उतर गया हो
स्वर्ण सृष्टि लगती सहज सुभग!

युग युग के दुख ग्लानि पराभव
मनुज विजय से दीपित अभिनव,
मिला भिक्षु को त्रिभुवन वैभव,
रोके रुकते नहीं प्रीति पग!

(१७)

युवक

पुण्य स्पर्श नारी का पावन!
देह प्राण से आज उठ गया
ऊपर प्रमदा का शोभा तन!
अब तक दीप शिखा तन छूकर
उद्दीपित होता था अंतर,
मुक्त चेतना का प्रवाह अब
बहता उस तन से सजीवन!
पुष्पा की श्री का तन शोभन
बना प्रीति का पुण्य निकेतन,
आज शांत उसका आकर्षण
आलोकित उसका उद्दीपन!
नारी अब न देह अवगुण्ठन,
केवल हृदय, हृदय वह मोहन,
अब वसुधा पर होगा स्वर्गिक
भावों के पुष्पों का वपण!
तन-मन से ऊपर जो जीवन
पाकर उसका नव संवेदन
स्वर्ण धरा पर स्वर्ग सृजन नव
प्रिये, करेंगे अब भू के जन!

सातवां दृश्य

(१८)

युवती

धिक, हम कैसे प्रेम पथिक!
प्रीति सूत्र में बँधकर जो हम
बन सकते भू के न श्रमिक!
आओ, भू को आज बुहारें
युग-युग का अघ कदम झारें,
जीवन का गृह प्रथम सँवारें,
जन श्रम से शोभित हो दिक!
किया नहीं सौंदर्य सृजन जो
किया नहीं माधुर्य वहन जो
रे किस लिए मनुज जीवन जो
जन में नहीं विभव आत्मिक!
पिया नहीं जो जीवन मधु दुख,
मिला न जो भू रचना में सुख,

तो क्यो नर नारी हो उ मुख
युग्म प्रीति के रिक्त रसिक ।
प्रिय, तुम बीज—प्राण, तुम धरती,
अंकुर - सी उठ सृष्टि निखरती,
जीवन हरियाली मन हरती
प्रीति हमारी नहीं क्षणिक ।
आओ, भरें धरा पर प्लावन
स्वेद सिक्त श्रम का चिर पावन,
युग्म प्रीति का विश्व जागरण
गावें मुक्त पिकी नव पिक ।

(१९)

युवक युवतियाँ
प्रतीति प्रीति प्राण मे,
चरण धरो, चरण धरो,
लिये हो हाथ हाथ मे,
न तुम डरो, न तुम डरो ।
मनुष्यता रही पुकार
छोड देह मोह भार,
खोल रुद्ध हृदय द्वार,
देह द्रोह दो विसार ।
भाल के कलक पक
को मनुष्य के हरो ।
महान क्रान्ति आज हो,
अखण्ड राम राज हो
अभीष्ट लोक काज हो,
सुसम्य जन समाज हो ।
उठो, सदुच्च ध्येय, धैर्य
शौर्य, वीर्य को वरो ।
न रक्तपात युद्ध हो,
न ऊर्ध्व शक्ति रुद्ध हो,
मनुष्य शुद्ध बुद्ध हो
विदेह मन न क्रुद्ध हो,
अभय अमर हो मृत्यु आज
साथ - साथ जो मरो ।
क्षुधार्त रे असख्य प्राण,
नग्न देह, बुद्धि म्लान
रोग व्याधि से न त्राण,
निश्चय लो आज जान,
तुम प्रथम मनुष्य हो,
न युग्म मात्र, स्त्री नरो ।

विनम्र शिष्ट निरभिमान
पुरुष नारि हों समान,
प्रीति प्राण, मुक्त ज्ञान,
मुक्त कला नृत्य गान,
स्वर्ग तुल्य हो धरा,
जघन्य रूढ़ियो, झरो!

(२०)

नव युवतियाँ

ये पारिजात प्रिय पूजन के,
ये आम्र मौर अभिनन्दन के,
ये सित सरोज पावन मन के,
अपलक गुलाब प्रेमी जन के,
यह संस्कृति का सन्देश नवल,
तुम ग्रहण करो, तुम ग्रहण करो!
यह शान्ति सभ्यता की प्रियतम,
तुम वहन करो, तुम वहन करो!

भीनी चम्पा नव भावों की,
यह जुही सुघर रुचि चावों की,
मृदु शीलमयी प्रिय मौलसिरी,
उर गरिमा से केतकी भरी,
तुम स्नेह दया सहृदयता से
जन मन की ईर्ष्या घृणा हरो!

ये बेला की कलियाँ स्मृति की,
यह कुन्द कली निश्छल स्मिति की,
स्मित चारु चमेली सज्जा की,
नत छुईमुई प्रिय लज्जा की,
तुम नव जीवन की श्री शोभा,
सुख आशा वैभव आज भरो!

मंजरि अशोक की मंगलमय,
रोमिल शिरीष शोभा में लय,
ये हँस-हँस झरते हर सिंगार,
यह पुलकाकुल कचनार डार,
तुम विनय साधना सत्य त्याग से
भू बाधाएँ निखिल हरो!

स्वप्नों की जुई मधुर मोहन,
पाटल विराग से गरिव तन,
कामिनी सती सी स्वच्छ सुघर,
स्वर्णिम गेंदा सन्तोष अमर!
नव मानवता की सौरभ से
तुम वसुंधरा को आज भरो!

ये पौरुष से रक्तिम पलाश,
ये स्वर्ण शान्ति के अमलतास,
मालती भरी उर ममता से,
सुर चन्दन सौरभ क्षमता से,

मानव जीवन के योग्य बना
इस पृथ्वी को, मानव विचरो।
यह संस्कृति का सन्देश नवल।

युवक—प्रतीति प्रीति प्राण में,
चरण धरो, चरण धरो।
युवतियाँ—हृदय सुमन, प्रणय सुरभि,
ग्रहण करो, ग्रहण करो।
युवक—लिये हो हाथ हाथ में,
न तुम डरो, न तुम डरो।
युवतियाँ—सृजन विकास की शिखा
वहन करो, वहन करो।

मधुज्वाल

[प्रथम प्रकाशन वर्ष १९४७]

प्रिय बच्चन को

जीवन की मर्मर छाया में नीड़ रच अमर
गाये तुमने स्वप्न रँगे मधु के मोहक स्वर,
यौवन के कवि, काव्य काकली पट मे स्वर्णिम
सुख-दुख के ध्वनि वर्णों की चल धूप-छाँह भर!

घुमड़ रहा था ऊपर गरज जगत संघर्षण,
उमड़ रहा था नीचे जीवन वारिधि क्रन्दन,
अमृत हृदय मे, गरल कण्ठ में मधु अधरों मे—
आये तुम, वीणा धर कर मे जन मन मादन!

मधुर तिक्त जीवन का मधु कर पान निरन्तर
मथ डाला हर्षोद्वेगो से मानव अन्तर
तुमने भाव लहरियो पर जादू के स्वर से
स्वर्गिक स्वप्नों की रहस्य ज्वाला सुलगाकर!

तरुण लोक कवि, वृद्ध उमर के संग चिरपरिचित
पान करो फिर, प्रणय स्वप्न स्मित मधु अधरामृत,
जीवन के सतरंग बुद्बुद पर अब निमीलित
प्रीति दृष्टि निज डाल साथ ही जाग्रत विस्मृत!

विज्ञापन

उमर खैयाम की रुबाइयों का प्रस्तुत गीतान्तर मैंने सन् १९२९ मे उर्दू के प्रसिद्ध शायर तथा अपने स्नेही मित्र स्वर्गीय असगर साहब गोंडवी की सहायता से इण्डियन प्रेस के आग्रह पर किया था। असगर साहब जिस भावुकता एव तल्लीनता से मुझे फारसी की रुबाइयो का भावार्थ समझाते थे और साथ ही फारसी के अन्य कवियो की मिलती जुलती रुबाइयां को भी सुनाना नही भूलते थे, उससे प्रेरणा पाकर मैंने उस प्रेम और सौन्दर्य के गन्धोच्छवास से घने वातावरण को गीतो की प्यालियो मे ढालने का प्रयत्न किया था। उसके बाद ही मैं बीमार पड गया और यह संग्रह भी तब से अप्रकाशित ही रह गया। आशा है, उमर के प्रीति-मधु के प्रेरित इन उदगारो मे पाठको को मनोरंजन की पर्याप्त सामग्री मिलेगी। स्वर्गीय असगर साहब की इस मधुर स्मृति को पाठको के हाथ सौंपने में मुझे आज प्रसन्नता हो रही है। हिन्दी मे उमर की रुबाइयो के अधिकांश अनुवाद फिट्जरैल्ड के अंग्रेजी रूपान्तर के आधार पर हुए हैं। फिटजरल्ड का कल्पना सौन्दर्य अपना है, भाव उमर के। इसी का अनुसरण मैंने भी अपने इस चपल प्रयास मे किया है। इसलिए बुलबुल के साथ कोयल के स्वर, गुलाब के साथ आम्र मंजरी की गन्ध भी इन स्वप्न मद-भरे गीतो मे सहज ही मिल गयी है।

सुमित्रानंदन पंत

[१]

रे जागो, बीती स्वप्न रात !
मदिरारुण लोचन तरुण प्रात
करती प्राची से पलक पात !
अम्बर घट से, साकी हँसकर,
लो, ढाल रहा हाला भू पर,
चेतन हो उठा सुरा पीकर,
स्वर्णिम शाही मीनार शिखर !

[२]

खोलकर मदिरालय का द्वार
प्रात ही कोई उठा पुकार
मुग्ध श्रवणो मे मधु रव घोल—
जाग उन्मद मदिरा के छात्र !
ढुलककर यौवन मधु अनमोल
शेष रह जाय नही मृद मात्र,
ढाल जीवन मदिरा जी खोल
लबालब भर ले उर का पात्र !

[३]

प्रीति सुरा भर, साकी सुन्दर,
मोह मथित मानस हो प्रमुदित !
स्वप्न ग्रथित मन, विस्तृत लोचन,
मर्त्य निशा हो स्वर्ग उषा स्मित !
प्रणय सुरा हो, हृदय भरा हो,
लज्जारुण मुख हो प्रतिबिम्बित,
पी अधरामृत हो मृत जीवित
प्रीति सुरा भर, प्रीति सुरा नित !

[४]

हाय, कोमल गुलाब के गाल
झुलस दे ऊष्मा का अभिशाप ?
प्रथम यौवन कलियो के जाल
स्वय कुम्हला जायें चुपचाप !
विजन वन कुंजो मे भर प्यार
तरुण बुलबुल गाती थी गान,
आज उसके उर के उद्गार
किधर हो गये विलीन अजान !

सभी एक से तिथि, मिति वासर,
जुमा, पीर, इतवार, शनीचर।
नीति - नियम नि सार।
धर्म का यह इजहार,
खुदा है खुदा, न वह तिथि वार।

[१०]

राह चलते चुभता जो शूल
वही उसके स्वभाव अनुकूल।
कामिनी की वह कुंचित अलक
कभी था कुटिल भकुटि, चल पलक।
खड़े जो सुन्दर सौध विशाल
सुनो उनकी ईंटों का हाल,
सचिव की उँगली थे वे गोल,
शाह के रत्न शीश अनमोल।

[११]

सुरालय हो मेरा संसार,
सुरा सुरभित उर के उदगार।
सुरा ही प्रिय सहचरि सुकुमार,
सुरा, लज्जारुण मुख साकार।
उमर को नहीं स्वर्ग की चाह,
सुरा में भरा स्वर्ग का सार।
सुरालय राह स्वर्ग की राह,
सुरालय द्वार स्वर्ग का द्वार।

[१२]

मदिराधर रस पान कर रहस
त्याग दिया जिसने जग हँस हस,
उसको क्या फिर मसजिद मंदिर
सुरा भक्त वह मुक्त अनागस।
हृदय पात्र में प्रणय सुरा भर
जिसने सुर नर किये प्रेम वश,
पाप, पुण्य, भय, उसे न संशय,
वह मदिरालय अजर अमर यश।

[१३]

हंस से बोली व्याकुल मीन
करुणतर कातर स्वर में क्षीण,
'बन्धु क्या सुन्दर हो' प्रतिवार
लौट आये जो बहती धार!'
हंस बोला, 'हमको जल व्याप
भून डालेगा, तब क्या साथ ?

[५]

मदिराधर कर पान
नहीं रहता फिर जग का ज्ञान।
आता जब निज ध्यान
सहज कुण्ठित हो उठते प्राण।
जाग्रत विस्मृत साथ
सतत जो रहता, वह अविकार।
वृद्ध उमर भी माथ
नवाता उसे सखे, साभार।

[६]

वह अमृतोपम मदिरा, प्रियतम,
पिला, खिला दे मोह म्लान मन,
अपलक लोचन, उन्मद यौवन,
फूल ज्वाल दीपित हो मधुवन।
जगम यह जग, दुगम मति मग,
उर के दृग, प्रिय साकी, दे रंग।
मदिरारुण मुख हो दृग सम्मुख
रुक न जाँय जब तक डगमग पग।

[७]

बैठ, प्रिय साकी, मेरे पास,
पिलाता जा, बढ़ती जा प्यास।
सुनेगा तू ही यदि न पुकार
मिलेगा कैसे पार?
स्वप्न मादक प्याली में आज
डुबा दे लोक लाज, जग काज,
दुआ जीवन से, सखे, निराश
बाँध, निज भुज मद पाश।

[८]

वृथा यह कल की चिन्ता, प्राण,
आज जी खोल करें मधुपान।
नीलिमा का नीलम का जाम,
भरा ज्योत्स्ना से फेन ललाम।
इन्दु की यह सलज्ज मुसकान,
रहेगी जग में चिर अम्लान,
हमारा पर न रहेगा ध्यान,
व्यथ फिर कल की चिन्ता, प्राण।

[९]

मदिराधर कर-पान,
सखे, तू धर न जुमे का ध्यान,
लाज स्मित अधरामृत कर पान।

सभी एक से तिथि, मिति, वासर
जुमा, पीर, इतवार, शनीचर ।
नीति - नियम निःसार ।
धर्म का यह इज़हार,
खुदा है खुदा, न वह तिथि वार ।

[१०]

राह चलते चुभता जो शूल
वही उसके स्वभाव अनुकूल ।
कामिनी की वह कुंचित अलक
कभी था कुटिल भृकुटि, चल पलक ।
खड़े जो सुन्दर सौध विशाल
सुनो उनकी इंटों का हाल,
सचिव की उँगली थे वे गोल,
शाह के रत्न शीश अनमोल ।

[११]

सुरालय हो मेरा संसार,
सुरा सुरभित उर के उद्गार ।
सुरा ही प्रिय सहचरि सुकुमार,
सुरा, लज्जारुण मुख साकार ।
उमर को नहीं स्वर्ग की चाह,
सुरा में भरा स्वर्ग का सार ।
सुरालय राह स्वर्ग की राह,
सुरालय द्वार स्वर्ग का द्वार !

[१२]

मदिराघर रस पान कर रहस
त्याग दिया जिसने जग हँस हँस,
उसको क्या फिर मसजिद मंदिर
सुरा भक्त वह मुक्त अनागस ।
हृदय पात्र में प्रणय सुरा भर
जिसने सुर नर किये प्रेम वश,
पाप, पुण्य, भय, उसे न संशय,
वह मदिरालय अजर अमर यश ।

[१३]

हंस से बोली व्याकुल मीन
करुणतर कातर स्वर में क्षीण,
'बंधु, क्या सुन्दर हो' प्रतिवार
लौट आये जो बहती धार ।'
हंस बोला, 'हमको कल व्याध
भून डालेगा, तब क्या साध ?

सूख जाये, बह जाये धार
बने अथवा बिगड़े संसार !'

[१४]

ज्ञानोज्वल जिनका अन्तस्तल
उनको क्या सुख-दुःख, फलाफल ?
मदिरालय जिसका उर तन्मय,
उसको क्या फिर स्वर्ग-नरक-भय ?
वह मानस जिसमें मदिरा रस
उसे वसन क्या ? टाट कि अतलस !
अवश पलक पायें न प्रिय झलक
जब तक, तकिया शिला तभी तक !

[१५]

मदिर अधरोंवाली सुकुमार
सुरा ही मेरी प्रिया उदार !
मौन नयनों में भरे अपार
तरुण स्वप्नों का नव संसार !
चूमता मुख मैं बारम्बार
गया ज्यों पान पात्र भी हार !
उमर मदिरा बन एकाकार
गये दोनों दोनों पर वार !

[१६]

अधर मधु किसने किया सृजन ?
सरल गरल !
रची क्यों नारी चिर निरुपम ?
रूप अनल !
अगर इनसे रहना वंचित
यही विधान,
दिये विधि ने तप संयम हित
न क्यों दृढ़ प्राण ?

[१७]

उमर दिवस निशि काल और दिशि
रहे एक सम, जब कि न थे हम !
फिरता था नभ सूर्य चन्द्र प्रभ,
देख मुग्ध छवि गाते थे कवि !
चन्द्र वदनि की सी अलकावलि
लहराती थी लोल धावलिनि !
कोमल चंचल धरणी श्यामल
किसी मृगनयनि की थी दृग कनि !

[१८]

छूट जावें जब तन से प्राण
सुरा में मुझे कराना स्नान !

सुरा, साकी, प्याली का नाम
सुनाना मुझे उमर अविराम।
खोजना चाहे कोई भूल
मुझे मेरे मरने के बाद,
पान्थशाला की सूखे धूल,
दिलायेगी वह मेरी याद।

[१९]

अधर घट मे भर मधु मुसकान,
मूर्ति बोली, 'ऐ निष्ठावान,
तुझे क्यो भाया यह उपचार—
भजन, पूजन, दीपन, शृंगार।'
भक्त बोला, 'जिसने अनजान
दिये हम दोनो को दो रूप,
उसी ने मुझे उपासक प्राण।
बनाया तुम्हे उपास्य अनूप।'

[२०]

तुम ऋतुपति प्रिय सुघर कुसुमचय
हम कण्टक गण।
स्वाति स्वप्न सम मुक्ता निरुपम
तुम हम हिम कण।
निठुर नियति छल हो कि कर्म फल
यह चिर अविदित,
चख मदिरा रस, हँस रे परवश,
त्याग हिताहित।

[२१]

यहाँ नीलिमा हँसती निर्मल,
कँपता हरित तृणो का अचल,
गाता फेन ग्रथित जल कल कल।
अरे, त्याग तप संयम मे रत।
किस मिथ्या, ममता हित मे व्रत?
यह विराग क्यो भग्न मनोरथ?
बंकिम दृग, रक्तिम मदिराधर,
यह सुरांगना सुरा मनोहर
तुझे बुलाती, इसे अंक भर।
कौन जानता, क्या होगा फिर,
सुरा फेन - सा जीवन अस्थिर,
पी रे, मदिरा का यौवन चिर।

[२२]

सुनहले फूलो से रच अंग
सलज लाला-सा मुख सुकुमार,

सुरा घट-सा दे मादक रंग
शिखर तरु सा उन्नत आकार !
न जाने तुमने क्यों, करतार,
भरी प्राणों में तरुण उमंग !
बुना क्यों स्वप्न मधुर संसार
हृदय सर में भर मदिर तरंग !
रचे जो मुरझाने को फूल,
तड़पने को बुलबुल का प्यार,
उमर मदिराधर रस में भूल
न क्यों तब दे सब शोक बिसार !

[२३]

इस जीवन का भेद
जिसे मिल गया गंभीर अपार,
रहा न उसको खेद
मरण भी बना स्वर्ग का द्वार !
कर ले आत्म विकास,
खोज पथ, जब तक दीपक हाथ,
मरने बाद, निराश,
छोड़ देगा प्रकाश भी साथ !

[२४]

फेन ग्रथित जल, हरित शस्य दल,
जिससे सरित पुलिन आलिंगित,
उस पर मत चल, वह चिर कोमल
ललना की रोमावलि पुलकित !
गुल लाला सम मुख छवि निरुपम
उस मृगनयनी की थी सस्मित,
वह मुकुलित तन आज धूल बन
हुआ कूल दूर्वादल मण्डित !

[२५]

हृदय जो सदय, प्रणय आगार,
भक्त, उस उर पर कर अधिकार !
न मंदिर मसजिद के जा द्वार
न जड़ काबे पर तन मन वार !
अगर ईश्वर को कुछ स्वीकार
हृदय जो सदय, प्रणय आगार !
हृदय पर यदि न तुझे अधिकार
भक्त, पी अमर प्रणय मधु धार !

[२६]

चपल पलक से कुटिल अलक से
बिंध बँधकर होना हत मूर्छित,

सतत मचलना, वृत्ति बदलना
हृदय, तुम्हारा यदि स्वभाव नित ।
फिर अंतिम क्षण तजना प्रिय तन
प्राण, तुम्हारा अगर यही प्रण,
विधि ने क्यों कर तो प्रिय सहचर
मुझे दिये—जीवन, नव यौवन ?

[२७]

भला कैसे कोई निःसार
स्वप्न पर जाये जग के वार ?
हँस रही जहाँ अश्रुजल माल
विभव सुख के ओसों की हार ।
अथक श्रम से सुख सेज सँवार
लेटता जब तू शोक बिसार,
बज्र स्वर में कहता द्रुत काल
अरे उठ गाफिल, चल उस पार ।

[२८]

रम्य मधुवन हो स्वर्ग समान,
सुरा हो, सुरबाला का गान ।
तरुण बुलबुल की विह्वल तान
प्रणय ज्वाला से भर दे प्राण ।
न विधि का भय, न जगत का ज्ञान,
स्वर्ग की स्पृहा, नरक का ध्यान —
मदिर चितवन पर दूं जग वार
चूम अधरों की मदिरा - धार ।

[२९]

वनमाला में जो गुल लाला
लहरा रहा अनल ज्वाला सम,
रुधिर अरुण था किसी तरुण
वह वरुण तुल्य नृप सुत का निरुपम ।
नील नयन में फँसा रहा मन
फूल बनफशा जो चिर सुंदर,
वह मयन में चारु अंक - सा
तिल निराक था तरुणी मुख पर ।

[३०]

उमर दो दिन का यह संसार
लबालब भर ले उर शृंगार ।
क्षणिक जीवन यौवन का मेल,
सुरा प्याली का फेनिल खेल ।
देख, वन के फूलों की डाल
ललक खिलती, झरती तत्काल ।

सुरा घट-सा दे मादक रंग
शिखर तरु सा उन्नत आकार।
न जाने तुमने क्यों, करतार,
भरी प्राणों मे तरुण उमग।
बुना क्यो स्वप्न मधुर ससार
हृदय सर मे भर मदिर तरग।
रचे जो मुरझाने को फूल,
तड़पने को बुलबुल का प्यार,
उमर मदिराधर रस मे भूल
न क्यो तब दे सब शोक बिसार।

[२३]

इस जीवन का भेद
जिसे मिल गया गभीर अपार,
रहा न उसको क्लेद
मरण भी बना स्वर्ग का द्वार।
कर ले आत्म विकास,
खोज पथ, जब तक दीपक हाथ,
मरने बाद, निराश,
छोड़ देगा प्रकाश भी साथ।

[२४]

फेन ग्रथित जल, हरित शस्य दल,
जिससे सरित पुलिन आलिंगित,
उस पर मत चल, वह चिर कोमल
ललना की रोमावलि पुलकित।
गुल लाला सम मुख छबि निरुपम
उस मृगनयनी की थी सस्मित,
वह मुकुलित तन आज धूल बन
हुआ कूल दूर्वादल मण्डित।

[२५]

हृदय जो सदय, प्रणय आगार,
भक्त, उस उर पर कर अधिकार।
न मन्दिर मसजिद के जा द्वार
न जड़ काबे पर तन मन वार।
अगर ईश्वर को कुछ स्वीकार
हृदय जो सदय, प्रणय आगार।
हृदय पर यदि न तुझे अधिकार
भक्त, पी अमर प्रणय मधु धार।

[२६]

चपल पलक से कुटिल अलक से
बिंध बँधकर होना हत मूर्छित,

सतत मचलना, धृति बदलना
हृदय, तुम्हारा यदि स्वभाव नित !
फिर अंतिम क्षण तजना प्रिय तन
प्राण, तुम्हारा अमर यही प्रण,
विधि ने क्यों कर तो प्रिय सहचर
मुझे दिये—जीवन, नव यौवन ?

[२७]

भला कैसे कोई निःसार
स्वप्न पर जाये जग के वार ?
हँस रही जहाँ अश्रुजल माल
विभव सुख के मोतों की हार !
प्रणय श्रम से सुख सेज सँवार
लेटता जब तू शोक बिसार,
वज्र स्वर में कहता द्रुत काल
अरे उठ, गाफिल, चल उस पार !

[२८]

रम्य मधुवन हो स्वर्ग समान,
सुरा हो, सुरबाला का गान !
तरुण बुलबुल की विह्वल तान
प्रणय ज्वाला से भर दे प्राण !
न विधि का भय, न जगत का मान,
स्वर्ग की स्पृहा, नरक का ध्यान,—
मदिर चितवन पर दूँ जग वार
चूम अधरों की मदिरा-धार !

[२९]

वनमाला में जो गुल लाला
लहरा रहा अनल ज्वाला सम,
रुधिर अरुण था किसी तरुण
वह वरुण तुल्य नप सुत का निरुपम !
नील नयन में फँसा रहा मन
फूल बनफ़शा जो चिर सुंदर,
वह मयंक में चारु अंक-सा
तिल निशंक था तरुणी मुख पर !

[३०]

उभर दो दिन का यह संसार
लबालब भर ले उर मगार !
क्षणिक जीवन यौवन का मेल,
सुरा प्याली का फेनिल खेल !
देख, वन के फूलों की डाल
ललक खिलती, झरती तत्काल !

व्यथ मत चिंता कर, नादान,
पान कर मदिराधर कर पान !

[३१]

मधुऋतु चचल, सरिता ध्वनि कल,
श्यामल पुलिन ऊर्मि मुख चुम्बित,
नवल वयस बालाएँ हँस-हँस
बिखराती स्मिति पखडियाँ सित !
स्वप्निल पलक सुरा, साकी, चख,
मदिराधर मद से रहे छलक !
मन्दिर भय, मसजिद का सशय
जा रे भूल, विलोक प्रियाऽलक !

[३२]

उमर कर सब से मृदु बर्ताव,
न रख तू शत्रु मित्र का भाव !
प्रेम से ले निज अरि को जीत,
नम्र बन, रख सबसे अपनाव !
मधुर बन, निमय, सरल, विनीत,
बना हाला बाला को मीत !
छाँह सी भावी, स्वप्न अतीत,
मात्र मदिरामृत स्वग पुनीत !

[३३]

लज्जारुण मुख, बैठी सम्मुख
प्रेयसि कम्पित कर से उत्सुक
भर ज्वाला रस, हाला हँस हँस
उमर पिलाये, हृदय हो अवश !
हृदय हीन कह लें मलीन,
मैं मधु वारिधि का मुग्ध मीन !
अपवग व्यथ केवल निसग
सगीत, सुरा, सुदरी,—स्वग !

[३४]

मधुर साकी, भर दे मधु पात्र,
प्रणय ज्वाला से उर का पात्र !
सुरा ही जीवन की आधार,
मर्त्य हम, केवल क्षर म मात्र !
पुष्प के प्याले भर भर आज
लुटाता यौवन मधु ऋतु राज,
उमर तज भजन, यजन, उपचार,
भजन से ईश्वर को क्या काज !
गन्धवह बहता हो जब मद,
गा रहा हो कल सरिता नीर,

अधर मधु पीकर रह स्वच्छन्द,
भजन हित हो मत व्यर्थ अधीर !

[३५]

पंचम पिकरव, विकल मनोभव,
यौवन उत्सव !
मधुवन गुंजित, नीर तरंगित,
तीर वल ध्वनित !
हँसमुख सुंदर प्रिय सुख सहचर,
प्रिया मनोहर,
पी मदिराधर सखे, निरंतर,
जीवन क्षण भर !

[३६]

सुरा पान से, प्रीति गान से
आज पांथशाला है गुंजित,
मधु निकुंज सी खग पिक कूजित !
कोटि प्रतिज्ञा तोड़, अवश्य
धर्म कर्म की मैंने की नित,
पी-पी प्रेयसि का अधरामृत !
उभर कलुषमय, प्रभु करुणामय,
करुणा औ' कल्मष चिर परिचित,
मेरे अघ से क्षमा अलंकृत !

[३७]

अधर सुख से हो स्पंदित प्राण,
बहे या विरह अश्रु जल धार,
फूल बरसें, या कंटक, बाण,
मुझे प्रभु की इच्छा स्वीकार !
तुम्हारी रुचि मेरी रुचि नाथ,
गहो या गहो न मेरा हाथ,
छोड़ दो जीर्ण तरी मँझधार
लगाओ या भव सागर पार !

[३८]

अंगों में हो भरी उमंग,
नयनों में मदिरालस रंग,
तरुण हृदय में प्रणय तरंग !
रोम - रोम से उन्मद गंध
छूटें, टूटें जग के बंध,
रहे न सुख - दुख से सम्बन्ध !
कोमल हरित तृणों से संकुल
मेरी निभृत समाधि से अतुल

निकले मदोच्छवास मदिराकुल!
यदि कोई मदिरा का पागल
आये उसके ढिग, विरहानल
उसे सूघ हो जाये शीतल।

[३६]

बधु चाहता काल
तोड दे हमे, छोड ककाल!
यही दैव की चाल,
जगत स्वप्नो का स्वर्णिम जाल।
जब तक सुरा रसाल
काल भी मोहित साकी, ढाल,
ढाल सुरा की ज्वाल,
मृत्यु भी पी, जी उठे निहाल।

[४०]

पूछते मुझसे, 'ए खैयाम,
तुझे क्यो भाया मधु व्यापार?'
सुनो, 'मैंने धर्मों को छान
किया इस मदिर दृगी से प्यार।
स्वर्ग सुख मदिराधर पर वार!
'न मैं नास्तिक, न नीति मर्याद
तोडता, करता वाद-विवाद,
रहे मदिरालय चिर आबाद,
न आये मुझको अपनी याद!
खुदा है उमर मृत्यु के बाद!'

[४१]

कल-कल छल छल सरिता का जल
बहता छिन छिन!
मर्मर सन सन बन्य समीरण
ले जाते दिन!
कल का क्या दुख? आज से विमुख
मत हो अन्तर!
हृदय द्विधा हर, प्रणय सुधा कर
पान निरन्तर!

[४२]

उमर मत माँग दया का दान,
जगत छल का मत कर विश्वास!
चाहता विभव भोग, सम्मान?
ओस जल से कब बुझती प्यास!
धीर बन सुख दुख मे रह शान्त
विश्व मरुथल, सुख मृग जल भ्रान्त!

पान कर मदिराधर का पान,
इसी में स्वर्ग, मुक्ति, कल्याण!

[४३]

प्रणय लहरियों में सुख मंथर
बहे हृदय की तरी निरंतर,
जीवन सिंधु अपार!
इसका कहीं न ओर-छोर रे,
यह अगाध है, तू विभोर रे,
वृथा विमथ विचार!
यौवन की ज्योत्स्ना में चंचल
प्रणय ऊर्मियों में बहता चल,
छोड़ मोह पतवार!
मधु ज्वाला से हृदय पात्र भर
चूम प्रेयसी के द्राक्षाधर,
डूबे या हो पार!

[४४]

पाप न कर उद्दाम,
पाप कर मत कर पश्चात्ताप!
व्यर्थ ग्लानि संताप
न इससे मिटता उर का ताप!
पापी, दुर्गुण धाम
ईश से पाते क्षमाऽभिराम,
प्रभु चिर करुणावान,
पाप भय से रे फिर क्या काम?

[४५]

सरिता से बहते जाते
चंचल जीवन पल,
आदि अन्त अज्ञात,
ज्ञात बस फेनिल कल कल!
हार गये सब खोज
मिली पर थाह न निस्तल,
डूब गया जो, पाया
उसने भेद, वह सफल!

[४६]

दुख से मथित, व्यथित यदि तू नित
क्षुब्ध न हो रे, विधि गति अविदित!
पर से निज दुख बदल, यही सुख,
व्यर्थ न रो रे, पी मदिरामृत!
हृदय पात्र भर, प्रणय छात्र बन,
विस्मृति में कर सुख दुख मज्जित,

स्वप्न फेन क्षण जीवन के क्षण
हँस हँस साकी को कर अर्पित!

[४७]

मदिराधर चुम्बन, प्रसन्न मन,
मेरा यही भजन औ' पूजन!
प्रकृति वधू से पूछा मैंने
प्रेयसि, तुमको दूँ क्या स्त्री धन?
बोली, प्रिय, तेरा प्रसन्न मन
मेरा यौतुक, मेरा स्त्री धन!

[४८]

स्तुत्य यदि तेरे काम,
न तेरे गुण से वे, सच जान!
निन्द्य यदि तू अघ धाम,
न तेरा दोष, व्यर्थ अभिमान!
छोड़ सदसद् अविचार,
बन्धु, ईश्वर सबका करतार!
उसी के सब व्यापार,
तुझे क्यों भय, मिथ्याहंकार!

[४९]

अपना आना किसने जाना?
जग में आ फिर क्या पछताना?
जो आते वे निश्चय जाते,
तुमको मुझको भी है जाना!
बाँध कमर, ओ साकी सुन्दर,
उठ, कम्पित कर मे प्याली धर,
प्रीति सुधा भर, भीति द्विधा हर,
फिर विस्मृति मे डूबें अन्तर!

[५०]

मद से कम्पित मदिराधर स्मित
साकी, पी दिन-रात!
भुला दे जग के अखिल अभाव,
सुरा प्रेयसि से कर न दुराव!
जीवन सागर, साकी, दुस्तर,
दुख की झंझावात
उठे यदि, तू निज डगमग पाँव
बढ़ा दे, सुरा नूह की नाव!

[५१]

कितने ही कल चले गये छल,
रहा दूर नित मृग जल!

हा दुख, हा दुख, कह-कह सब सुख
हुआ स्वप्नवत ओझल।
अब का पल मत खो रे दुबल,
पान पात्र भर फेनिल,
तुहिन तरल जीवन न जाय ढल,
प्रणय ज्वाल पी गाफिल।

[५२]

प्रिये, गाओ बहार के गान
मिला स्वर में सलज्ज मुसकान,
करूँ मैं मदिराधर मधु पान।
सराहूँगा मैं उसके भाग
सुरा से जिसे मम अनुराग,
हृदय में जिसके मादक आग।
उमर को नहीं और कुछ काम
संग हो प्रेयसि मधुर सलाम,
रंग उर में, कर में हो जाम।

[५३]

मुझे यदि मिले स्वर्ग का द्वार
विनय हो मेरी बारम्बार,
मदिर अधरों वाली सुकुमारि
पिलाये मुझे प्रणय मधु धार।
नहीं मुझमें ऐसा तप त्याग
मिले मुझको दुलभ अपवर्ग,
हृदय में जो साकी की आग
सुरा की घूट मुझे हो स्वर्ग।

[५४]

चंचल दावनम-सा यह जीवन
गिरा न दे कल काल समीरण।
मत थम, निरुपम प्रणय सुरा भर,
हाला ज्वालामय हो अंतर।
क्षण-क्षण यह मन नव तृष्णाकुल,
जग का मग कांटों से संकुल।
जीवन के क्षण मत खो, मूरख,
साधक, मादक मदिराऽमृत चख।

[५५]

कहाँ वह करुणा, करुणागार,
विषय रस में रत मेरे प्राण।
पीठ पर लदा मोह का भार,
कहाँ वह दया, करे जो त्राण।
मुझे यदि मिला स्वर्ग का द्वार,
उमर जप-तप कर या दे दान,

उपार्जन होगा वह, उपहार
न करुणा का, प्रभु का वरदान !

[५६]

हे मेरे अमर सुरा वाहक,
निज प्रणय ज्वाल सी सुरा ढाल
तुम भरो हृदय घट में मादक !
चिर स्नेह हीन मेरा दीपक
दीपित न करोगे तुम जब तक
कैसे पाऊँगा दिव्य झलक ?
अधरों पर धर निज मदिराधर
तुम जिसे पिलाते हो क्षण भर
वह तुम पर हो चिर न्योछावर
मधु घट सा उठता छलक छलक !
हे मेरे मधुर सुरा वाहक,
मैं हूँ मधु अधरों का ग्राहक !
ढालो निज पावक दुख-दाहक
मद से हो जायें अवश पलक !

[५७]

उमर रह, धीर वीर बन रह,
सुरा के हित अधीर बन रह !
प्रेम का मन्त्र याद कर रह,
न व्यर्थ विवाद वाद कर रह !
प्रणय की पन्थ धूल बन रह,
सदा हँस, गन्ध फूल बन रह !
किसी की मधुर चाह बन रह,
यार के लिए राह बन रह !

[५८]

राह में यों मत चल, खैयाम
डरें सब, करें सलाम !
न मसजिद ही में तुझे इमाम
बनायें, सुनें कलाम !
न सब में बन तू स्वयं प्रधान,
बड़े हो दें सम्मान,
मधुर बन विनयी बन, मतिमान,
सभी को समझ समान !

[५९]

तरुण साकी भी हो जो साथ
अधर पर धरे मधुर मुसकान,
सुरा के रँग की भी अविराम
मदिर जो वृष्टि करें भगवान !

स्वर्ग की हूरें स्वयं उतर
सुनाएँ भी जो अश्रुत गान,
नहीं यदि प्रेमोन्मत्त हृदय
स्वर्ग भी है तब नरक समान।

[६०]

उमर पी साँस - साँस में चाह,
सतत कर हास विलास,
गले में डाल प्रिया की बाँह,
पान कर मुख उच्छवास।
सान्त जीवन, अनन्त सुख भोग,
सखे, क्षण - क्षण अनमोल,
गँवा मत मधुर स्वर्ण संयोग,
अधर मधु पी जी खोल।

[६१]

विरह व्यथित मन, साकी, तत्क्षण
अधरामृत पी होता विस्मृत
कलुषित अन्तर रति से घुल कर
बनता पूत, सुरा समाधि स्थित।
शोक द्रवित होता आनंदित
मादक मदिराधर कर चुम्बित,
उसे न सुख दुख, वह नित हँसमुख,
स्वर्ग फूल सा भू पर लुण्ठित।

[६२]

ढालता रहता वह अविराम,
उमर पात्रों में मदिराधार,
सुनहले स्वप्नों का मधु फेन
हृदय में उठता बारम्बार।
डूबते हमसे तुमसे, प्राण,
सहस्रों उसमें बिना विचार।
भरा रहता साकी का जाम,
बिगड़ते बनते शत संसार।

[६३]

श्यामल, दूर्वा दल स्मित भूतल,
रंग भरा फूलों का अंचल,
यह क्या कुछ कम? उस पर शबनम
कँपती पखड़ियों पर चंचल।
चुवा चुवा नव कुसुमों का रंग
साकी हाला से भर अन्तर,
फिर न रहेगी यह बहार
हम तुम तृण, शबनम, कुसुम, पात्र भर।

[६४]

मीना की ग्रीवा से झर झर
गाती हो मदिरा स्वर्णिम स्वर,
गान निरत उर, वाद्य रव मधुर,
नूपुर ध्वनि हरती हो अंतर।
हाला के रँग मे तन मन लय,
मुग्धा बाला हो सँग सहृदय।
फिर सुरपुर सम हो जग निरुपम,
विधि से क्षमतावान बने नर।

[६५]

चंचल जीवन स्रोत
बहता व्याकुल वेग,
पुलिन - फेन - परिप्रोत
सुख दुख, हर्षोद्वेग।
ले बहु भाव तरंग
भगुर बदबुद गान
मिलता वारिधि संग
एक रूप हो, प्राण।

[६६]

यह जग मेघो की चल माया,
भावी, स्वप्नो की छल छाया।
तू बहती सरिता के जल पर
देख रहा अपनी प्रतिछवि नर।
उठ रे, कल के दुख से व्याकुल,
जीवन सतरँग वाष्पो का पुल।
कल का दुख केवल पागलपन,
पल पल बहता स्वप्निल जीवन।
ले, उर मे हाला ज्वाला भर,
सुरा पान कर, सुधा पान कर।

[६७]

प्रेम के पायवास मे आज
मस्त का पहना मैंने ताज।
आत्म विस्मृति, मदिराधर पान
यही मेरा जप ध्यान।
विश्वमय का जो विशद निवास
व्याप्त उसमे मेरे चिर प्राण,
उच्च मस्तक मेरा आकाश,
गात्र ब्रह्माण्ड महान।

[६८]

स्वर्गिक अप्सरि-सी प्रिय सहचरि
हो हँसमुख सँग,

मधुर गान हो, सुरा पान हो
सज्जायण रँग ।
कल-कल छल छल बहता हो जल
तट हो कुसुमित,
कोमल शाद्वल चूमे पद तल,
साकी हो स्मित ।
इससे अनिदाय स्वर्ग न सुखमय
यही सुर सदन,
छोड मोह भय, मदिरा मे लय
हो विमूढ मन ।

[६९]

विरह मथित उर का आमोद
मधुर मदिरामृत पान,
शून्य जीवन का मात्र प्रमोद
सुरा, साकी, प्रिय गान ।
प्रणय रस भरा हृदय का जाम,
विरह व्याकुल चिर प्राण,
उमर को रे किससे क्या काम
सुरा मे कर, मन, स्नान ।

[७०]

सुरा मे दुरा स्वर्ग का सार,
भले ही उमर खुमार ।
सुमन उर मे सौरभ उदगार,
भले तन छेदे खार ।
प्रेयसी का उर प्रणयागार,
बदमता भी स्वीकार ।
मिलन मे मर्मोल्लास अपार,
विरह का भी यदि भार ।

[७१]

विश्व वीणा का जो कल गान,
प्रेम वह गान ।
तरुण पिक की जो मादक तान,
प्रेम वह तान ।
कहाँ नारी के कोमल प्राण ?
प्रेम मे प्राण ।
हृदय करता नित किसका ध्यान ?
प्रेम का ध्यान ।
रूप के मधुवन का जो फूल,
प्रेम वह फूल ।
कसकता उर में चिर जो शूल,
प्रेम वह शूल ।

रहस जीवन लतिका का मूल ?
प्रेम वह मूल !
दुख-सुखमय संसृति की भूल ?
प्रेम वह भूल !

[७२]

प्रणय का हो उर में उन्मेष
सुरा पर यदि विश्वास !
सफल हो जीवन का प्रावेश
हृदय में यदि उल्लास !
श्वास हो जब तक अन्तिम शेष
सखे, कर हास विलास !
मिटा हाला से जग के क्लेश,
प्रिया सँग कर सहवास !

[७३]

तुम्हारा रक्तिम मुख अभिराम,
भरा जामे जमशेद !
घिरा मदिरा का फेन ललाम,
वदन पर रति सुख स्वेद !
निछावर करना तुम पर प्राण
तोड़ जीवन के बंध,
प्रतीक्षा में रहना प्रति याम—
यही स्वर्गिक आनंद !
तुम्हारे चरणों पर हो माथ,
मात्र उर की अभिलाष !
तुम्हारे पद रज कण में, नाथ,
भरा शत सूर्य प्रकाश !

[७४ [

मधुर साकी, उर का मधु पात्र
प्रीति से भर दे तू प्रति बार,
जन्म जन्मों की मेरी साध
सुरा हो मेरी प्राणाधार !
मुझे कर मधु स्वप्नों में लीन,
मृत्यु हो मेरी मदिराधीन !
बनूं मैं बन मग हाला बीन,
यही हो वृद्ध उमर का दीन !

[७५]

यह हँसमुख मृदु दूर्वादल
है आज बना क्रीडा स्थल !
इसने मेरे हित फैलाया
श्यामल पुलकित अंचल !

मेरे तन की रज पर कल
यह दूब खिलेगी कोमल,
कोई सुंदर साकी उस पर
खेलेगा फिर कुछ पल !

[७६]

उस हरी दूब के ऊपर
छाया जो बादल सुंदर,
वह बरस पड़ा अब झर झर,
वह चला गया हँस रोकर !
यह, भार हुआ यह जीवन
ज्यों अश्रु भरा सावन घन,
साकी के मधु अधरों पर
झर झर हो जाय निछावर !

[७७]

मनुज कुछ धन म जिनके प्राण,
जिन्हें निज नृप कुल का अभिमान !
उधर कुछ वे, जो विद्यावान
चाहते यश पूजन सम्मान !
व्यक्ति ऐसे भी, जिनका ध्यान
स्वर्ग पर, करते जप - तप दान,
हटेगा आँखों से व्यवधान,
सभी से सुरा विमुख, अज्ञान !

[७८]

जिसके प्रति अपनाव
वही अपना खैयाम !
जिसमें है दुर्भाव
गैर है उसका नाम !
विष दे जीवन दान
सुधा वह बने ललाम,
मधु अहि दश समान
न विस्मृति दे यदि जाम !

[७९]

यदि तेरा अचल वाहक
मैं भी बन सकता, प्रियतम !
भर देती उर घावों को
तेरी करुणा की मरहम !
उस निस्तल मधु सागर से
पीते जिससे जड़ चेतन
साकी, मैं भी पा जाता
तब एक बूंद उर मादन !

[८०]

इस पल - पल की पीड़ा का
वह, मोल कहाँ है, साकी !
यह स्वर्ग मर्त्य से बढ़कर
अनमोल दवा है, साकी !
भर दे फिर उर का प्याला
छवि की हाला से सुन्दर,
जग के देशों से उसका
है एक बूँद श्रेयस्कर !
अपनी चिर उन्मद चितवन
तू फेर इधर को क्षण भर,
तेरे ये निस्तल लोचन
पृथ्वी नभ से भी दुस्तर !
इस घुल - घुल कर मिटने की
चिर गूढ़ व्यथा है, साकी !
यह स्वर्ग मर्त्य से बढ़कर
अनमोल व्यथा है, साकी !

[८१]

वह प्याला भर साकी सुन्दर,
मज्जित हो विस्मृति मे अन्तर,
धन्य भ्रमर वह, तेरे मुख की
लाली पर जो सतत निछावर !
जिस नभ मे तेरा निवास
पद रेणु कणो से वहाँ निरन्तर
तेरी छबि की मदिरा पीकर
घूमा करते कोटि दिवाकर !

[८२ [

पान करना या करना प्यार
अमर यदि हो अपराध,
साधुवर, क्षमा करो, स्वीकार
न मुझको वाद विवाद !
करो तुम जप पूजन उपचार,
नवाओ प्रभु को माथ,
सुरा ही मुझे सिद्धि साकार,
मधुर साकी हो साथ !

[८३]

अम्बर फिर फिर क्या करता स्थिर
यह चिर अविदित !
छीन स्वप्न सुख, देता क्यो दुख
वह सबको नित !

बीते युग क्षण करते चिंतन
स्थिर न हुआ चित,
किया क्या उमर, गँवा दी उमर,
रहा अनिश्चित।

[८४]

हुआ इस जग में ऐसा कौन
विषय रस किया न जिसने पान?
मिला ऐसा निमल न स्वभाव
रहा अघ से जो चिर अनजान।
अगर हो वृद्ध उमर में दोष
न साक़ी, करना उस पर रोष।
घात के प्रति करना आघात
तुम्हारा रहा न कभी विधान।

[८५]

अगर साकी, तेरा पागल
न हो तुममें तन्मय, तल्लीन,
उमर वह मृत्यु दण्ड के योग्य
भले हो वह मयूर नवीन।
सुरा पीकर हो वह विस्मृत,
भजन पूजन में हो कि प्रवीण,
नहीं वह दया क्षमा के योग्य
भक्ति श्रद्धा से यदि वह हीन।

[८६]

स्नेहमय हुआ हृदय का दीप
प्रिया की रूप शिखा धर मौन।
प्रेम के हित दे निज बलिदान
नहीं जी उठा सखे, वह कौन?
दीप का करना यदि गुण गान,
शलभ से कहो, जिसे अपनाव,
उमर यह है निगूढ़ कुछ बात,
जलों पर पड़ता अधिक प्रभाव।

[८७]

उमर क्यों मग्न स्वर्ग की तृषा?
कल्पना मात्र शून्य अपवर्ग,
धरा पर ही यह जीवन स्वर्ग।
स्वर्ग का नूर सुरा, प्रिय हूर,
सुरा सुन्दरी यहाँ कब दूर?
गान, मधु पान पात्र भरपूर!
हरित वन तीर, तरंगित नीर,
सुरा अंगूरी, मदिर समीर,
सखे, हाला भर, हृदय अधीर।

[८८]

जब तुम किसी मधुर अवसर पर
मिलो कहीं हे बंधु परस्पर,
एक - दूसरे पर हो जाओ
तुम अपने को भूल निछावर!
जब हँसमुख साकी आ सुंदर
अधरों पर धर दे मदिराधर,
वृद्ध उमर को भी तब क्षण भर
कर लेना तुम याद दया कर!

[८९]

बाला सुंदर, हाला घट भर,
उमर हमारे प्रिय सहचर नित!
उर का सुख दीपक बन हँसमुख
सुहृद् सभा करता आलोकित!
प्रेम प्रदान, आनंद, वसन,
तन पुलक अंकुरित, हृदय उल्लसित,
जो कुछ प्रियतर सुखद मनोहर
सखे, हमारे लिए विनिर्मित!

[९०]

तंद्रिल तरुतल, छाया शीतल,
स्वप्निल मर्मर!
हो साधारण खाद्य उपकरण,
सुरा पात्र भर!
गाओ जो तुम प्रेयसि निरुपम,
गीत मनोहर,
फिर यह निर्जन स्वर्ग सदन सम
हो चिर सुखकर!

[९१]

मुख छवि विलोक जो अपलक
रह जाय न, वे क्या लोचन?
विरहानल में जल - जलकर
गल जाय न जो, वह क्या मन!
तुझको न भले भाता हो
प्रेमी का यह पागलपन,
उर - उर में दहक रहा पर
तेरे प्रेमानल का कण!

[९२]

प्रिया तरुणी हो, तटिनी कूल,
अरुण मदिरा, बहार के फूल,
मधुर साकी हो, विधि अनुकूल,
दर्द दिल जावे अपना भूल!

खुली हो मदिरालय की राह,
छलकता हो नभ घट से माह,
मदिर नयनी की हो बस चाह,
उमर जग से हो लापरवाह!

[६३]

जगत छलना की उन्हें न चाह,
धीरे जो नर, धीमान!
सुरा का बहता रहे प्रवाह,
डूब जायें तन प्राण!
सुराही से हो सुरा प्रपात,
दर्द से दिल बेताब!
मूर्ख वे, खाते गम दिन रात,
उमर पीते न शराब!

[६४]

मेरी मधुप्रिय आत्मा प्रभुवर,
नित्य तुम्हारे ही इंगित पर
चलती है मधु विस्मृति होकर!
मेरा काम कलाप तुम्हारा,
धर्म वचनों से मैं हारा,
पाप पुण्य में मैं प्रभु अनुचर!
निखिल लालसाएँ जब उर में,
भरते सतत तुम्हीं निज सुर में,
तब क्यों हे चिर जीवन सहचर!
दोष रोष का हो मुझको भय,
कुटिल कर्म क्यों हो न सभी क्षय,
जब प्रभुवर चिर करुणा सागर!

[६५]

पान पात्र था प्रेम छात्र!—
प्रेयसि के कुंचित अलकों में
उलझा था बन्दी पलकों में!
ग्रीवा पर थी मूठ सुघर
मृदु बाह, मधुर आलिंगन सुख
लेती थी प्रेयसि का उत्सुक!

[६६]

वह हृदय नहीं
जिसमें प्रियतम की चाह नहीं!
वह प्रणय नहीं
जिसमें विरहानल दाह नहीं!
वह दिवस नहीं
यदि अविरत सुरा प्रवाह नहीं!
वह वयस नहीं
जो बाला के गल बाँह नहीं!

[९७]

अगर हो सकते हमको ज्ञात
नियति के, प्रिये, रहस्य अपार,
जान सकते हम विधि का भेद,
विश्व मे क्यो चिर हाहाकार!
चूर्ण कर जग का यह मद पात्र
उडा देते अनन्त मे धूल,
और फिर हम दोनो मिल, प्राण,
उसे गढते उर के अनुकूल!

[९८]

चाँद ने मार रजत का तीर
निशा का अचल डाला चीर,
जाग रे, कर मदिराधर पान,
भोर मे दुख से हो न अधीर!
इदु की यह अमद मुसकान
रहेगी इसी तरह अम्लान,
हमारी हृदय धूलि पर, प्राण,
एक दिन हँस देगी अनजान!

[९९]

छलक नत नीलम घट स मौन
मुसकुराता आती जब प्रात,
स्फटिक प्याली कर मे धर, बधु
ढाल मदिरा का फेन प्रपात!
लोग कहते, सुनता सयाम,
सत्य कटु होता, यह प्रख्यात!
सुरा कडवी है सबको ज्ञात,
पान करना ही सच्ची बात!

[१००]

गगन के चपल तुरग को साथ
कसी जब विधि ने क्षीन लगाम,
ज्वलित तारो की लडियाँ बाँध
गले मे डाली रास ललाम!
उसी दिन मानव के हित, प्राण,
रचा स्रष्टा ने चिर अज्ञान,
अहर्निश कर मदिराधर पान,
उसे मिल सके मोक्ष, कल्याण!

[१०१]

मधु के दिवस, गधवह सालस
डोल रहा वन मे भर मर्मर!
सकरुण घन फूलो का आनन
धुला रहा, बरसा जल सीकर!

गाती बुलबुल, भौंरे कुसुमकुल,
खोलो मधुपायी मदिराधर!
खिल जाये मन, रंग जाये तन,
पी लो, पी लो मदिरा की झर!

[१०२]

सलज गुलाबी गालों वाली
हाला मेरी चिर सहचर,
बिना मादनी का जग जीवन
बिना चाँदनी का अम्बर!
वे कहते हैं विधि वर्जित है
इस जीवन में मदिरा पान!
मुझे सुलभ वह यहाँ, स्वर्ग में
पियें मूढ़ अपना अनुमान!

[१०३]

कितने कोमल कुसुम नवल
कुम्हलाते नित्य धरा पर झर झर,
यह नभ अब तक सुख प्रिय बालक,
मिटा चुका कितने मुख सुन्दर।
मान न कर चंचल यौवन पर
यह मदिरा का बुद्बुद अस्थिर,
सरिता का जल, जीवन के पल
लौट नहीं आते रे, फिर फिर!

[१०४]

नवल हर्षमय नवल वर्ष यह,
कल की चिन्ता भूलो क्षण-भर,
लाला के रंग की हाला भर
प्याला मदिर धरो अधरों पर!
फेन वलय मृदु बाँह पुलकमय
स्वप्न पाश सी रहे कण्ठ में,
निष्ठुर गगन हमें जितने क्षण
प्रेयसि, जीवित धरे दया कर!

[१०५]

फूलों के कोमल करतल पर
ओसों के कण लगते सुन्दर,
मुग्धा का मदिरालस आनन
उभर मुग्ध कर लेता अन्तर!
ओ रे, कल के मोह से मलिन,
बीत गया अब वह कल का दिन!
उठ, अब हँसकर पान पात्र भर,
चूम प्रेयसी के मदिराधर!

[१०६]

मादक स्वप्निल प्याला फेनिल
साकी, फिर फिर भर अंतर का,
आलोकित जिनका उर निश्चित
पीते वे मधु मदिराघर का!
जग के तम से, संशय भ्रम से
मोह मलिन जिनका मन मंदिर,
उनके भीतर जीवन - भास्वर
जलता दीप न साकी का फिर!

[१०७]

मधु के घन से, मन्द पवन से
गंध उच्छ्वसित अब मधु कानन,
निज मर्माहत मृदु उर का क्षत
विस्मृति से तू भर ले कुछ क्षण!
सघन कुंज तल छाया शीतल,
बहती मन्थर धारा कल - कल,
फलक ताकता ऊपर अपलक,
आज धरा यौवन से चंचल!
मदिरा पी रे धीरे धीरे
साकी के अधरों की कोमल,
उसे याद कर जिसकी रज पर
आज अंकुरित नव दूर्वादल!

[१०८]

सरित पुलिन पर सोया था मैं
मधुर स्वप्न सुख में तल्लीन,
विधुवदनी बैठी थी सम्मुख
कर में मधु घट धरे नवीन!
झलक रहा था मदिर सुरा में
प्रेयसि का मुख बिम्ब तरल
रजत सीप में मुक्ता जैसे
प्रात सर में रक्त कमल!
उसी समय मेरे कानों में
गूंज उठी घण्ठध्वनि घोर,
बीती रात जाग रे गाफिल,
तज सुख स्वप्न, हुआ अब भोर!

[१०९]

निभृत विजन में मेरे मन में
हुआ एक दिन स्वप्नाभास,—
मुग्ध यौवना गीत गुनगुना
बैठी है ज्यों मेरे पास!

मेरा मन खो गया विहग बन
नयन नीलिमा मे तत्काल,
वैभव सुख की, सुत के मुख की
रही न फिर मुझको अभिलाष।

[११०]

उभरे तीर्थ यात्री ज्यो थककर
करते क्षण - भर को विश्राम,
नगर प्रान्त के पास खोजकर
मर्मर तरु छाया अभिराम।
नवपरिचित सुहृदो से करते
बैठ घड़ी - भर स्नेहालाप,
इसी तरह हम जीवन - पथ के
पान्थ जुटे जग मे क्षण याम।

[१११]

तू प्रसन्न रह, महाकाल यह
है अनन्त, विधि गति अनिवार,
नक्षत्रो की मणियो से नित
खचित रहेगा गगन अपार।
वे ईंटें जो तेरे तन की
मिट्टी से होगी तैयार,
किसी शाह के रगमहल की
सखे, बनेंगी वे दीवार।

[११२]

मेरे नयनो के आँसू का
एक बूद यह पारावार,
क्रीडा की प्रिय सामग्री का
एक सीप यह व्योम उभार।
मेरे शोकानल का केवल
एक अग्निकण नरक प्रचण्ड,
उर के सुख के एक दिवस का
एक मधुर क्षण स्वर्ग अपार।

[११३]

यदि मदिरा मिलती हो तुझको
व्यथ न कर, मन पश्चात्ताप,
सौ - सौ वचक तुझको घेरे
करें भले ही भ्रान्त प्रलाप।
ऐसे समय सुहाता किसको
नीरस मनस्ताप, खैयाम,
फाड रही जब कलिका अचल,
बुलबुल करती प्रेमालाप।

[११४]

छोड काज, आओ मधु प्रेयसि,
बैठो वृद्ध उमर के सग,
कैकुवाद औ' कैखुसरू का
छेडो मत प्राचीन प्रसग!
हुआ धराशायी चिर रुस्तम
जीत जगत जीवन सग्राम,
रहा न हातमताई का भी
सा ध्य भोज का अब रस-रग!

[११५]

वह मनुष्य जिसके रहने को
हो छोटा आगन, गह द्वार,
खाने को रोटी का टुकडा
पीने को मदिरा की धार!
जो न किसी का सेवक शासक,
हँसमुख हो जिसके सहचर,
कहता उमर सुखी है वह नर,
स्वग उसे है यह ससार!

[११६]

तूस और काऊस देश से
एक बूद मदिरा सुदर,
कैकुवाद के सिहासन से
सुघर प्रिया के मदिराधर!
मधुशायी जो नाला करता
उमर नित्य उठ प्रात काल
सौ मुल्लाओ के अजान से
वह प्रभु को प्रिय है बढकर!

[११७]

बिन्दु सिन्धु से उमर विलग हो
करता सतत रुदन कातर,
हस हँसकर नित कहता सागर
मैं ही हूँ तेरे भीतर!
निखिल सृष्टि मे व्याप्त एक ही
सत्य, न कुछ उसके बाहर
फिर अखण्ड बन जायेगा तू
अगर पी सके मदिराधर!

[११८]

वीणा वशी के दो स्वर जब
हो जाते आपस मे लय,
प्रिये, हमारा मधुर मिलन भी
हो सकता सुखमय निश्चय!

मदिरा की विस्मृति मे जब दो
हृदयो का होता विनिमय,
वह न बिछुड़ा सकता कोई,
इसमे नही तनिक सशय !

[११९]

सुरापान को, प्रणय गान को
सखे, समझते जो अपराध,
जो रूखे सूखे साधू हैं,
भाता जिनको वाद - विवाद,
स्वर्गलोक जाकर वे उसको
कर देंगे नीरस, छविहीन,
स्वर्ग प्राप्ति से तब क्या फल ? हम
यही सुरा पी हरें विषाद !

[१२०]

प्रिये, तुम्हारी मृदु ग्रीवा पर
झूल रही जो मुक्तामाल,
वे सागर के पलने मे थे
कभी सीप के हसमुख बाल !
झलक रहे प्रिय अगो पर जो
मणि-माणिक रत्नालकार,
वे पर्वत के उर प्रदेश के
कभी सुलगते थे उद्गार !
गूढ रहस्यो को जीवन के
नित्य खोजते हैं जो लोग
वही स्वर्ग की रत्न राशि का
उमर अतुल करते उपभोग !

[१२१]

हे मनुष्य, गोपन रहस्य यह
स्वर्गलोक से हुआ प्रकाश,
मात्र तुम्हारे अतर से ही
निखिल सृष्टि का हुआ विकास !
तुम्ही देवता हो, तुम दानव,
हिंसक पशु, स्नेही मानव,
तुम्ही साधु, खल, स्वर्गदूत
दुष्कृती तुम्ही तुम नित अभिनव !
तुम्ही मात्र अपनी तुलना हो,
तुमसे सब कुछ है सम्भव,
सखे तुम्हारे ही स्वप्नो से
हुआ तुम्हारा भी उद्भव !

[१२२]

बाहर - भीतर ऊपर - नीचे
जुटा अनत समाज,

मायामय की रंगभूमि में
छाया - अभिनय आज।
इंद्रजाल का खेल हो रहा,
दीप, सूर्य, ग्रह, चाँद,
स्वप्नाविष्ट खेलते सब जन
यहाँ सहर्ष विषाद।

[१२३]

तेरा प्रेम हृदय में जिसके
हुआ अंकुरित, बना विभोर,
उस मर्म में छिपा, अश्रु से
सींचेगा वह प्रिय, निशि भोर।
भले परीक्षा मिस या छल से
झटके तू अपना अंचल,
कभी न छोड़ेगा यह दामन
फिरे न जब तक करुणा कोर।

[१२४]

लाओ, हे लज्जास्मित प्रेयसि,
मदिर लालिमा का घट सुंदर,
मधुर प्रणय के मदिरालस में
आज डुबाओ मेरा अंतर।
ज्ञानी, रसिक विमूढ़ों को जो
बंदी कर निज प्रीतिपाश में
विस्मृत कर देती क्षण भर को,
लाओ वह मंजुज्वाल पात्र भर।

[१२५]

मदिर नयन की, फूल वदन की
प्रेमी को ही चिर पहचान,
मधुर गान का, सुरापान का
मौजी ही करता सम्मान।
स्वर्गोत्सुक जो, सुरा विमुख जो
क्षमा करे, उनको भगवान,
प्रेयसि का मुख, मदिरा का सुख
प्रणयी के, मद्यप के प्राण।

[१२६]

उस गुलवदनी को पाकर भी
पा न सकोगे उसका प्यार,
जब तक क्रूर विरह का कण्टक
सखे, न कर देगा उर पार।
कली को लो, तार-तार जब तक
न हुआ था उसका गात,

फेर सकी वह नही उगलियाँ
प्रेयसि अलको पर सुकुमार।

[१२७]

अधकार मे लिखा हुआ जो
कौन पढ सका उसका भेद?
इस निगूढ जग का रहस्य
चिर अविदित, सखे, करो मत खेद।
जिसे सुधार सके न पार कर
ज्ञानी गुणी, यती, धीमान्
उसी अधवीथी का क्या तुम
आज करोगे अनुसधान।
आओ, वृद्ध उमर के सँग सब
बैठ, करो क्षण मदिरापान,
स्वर्ग प्राप्ति का, स्वर्ग भोग का
तुमने अगर लिया व्रत ठान।

[१२८]

आतप आकुल मदुल कुसुम कुल
हरने मम तपा निज, प्राण,
ऊपर उठकर हृदय पात्र भर
करता स्वर्ग सुधा का पान।
तू भी जगकर भ्रमर सुरा भर
सुख सुमन बन हे अनजान,
उसी फूल-से सभी धूल से
उपजे हम बालक नादान।
एक प्रात द्रुत हमे वृन्तच्युत
करके निर्मम नभ तत्काल
शून्य पात्र सा गात्र मान यह
फूल, धूल मे देगा डाल।

[१२९]

उमर न कभी हरित होगा फिर
पलित वयस का गलित लिबास,
मेरे मन अनुकूल फिरेगा
भाग्यचक्र, यह व्यर्थ प्रयास।
पान पात्र, भर ले मदिरा से
शोक न कर, मदिरा कर पान,
कभी सुराही टूट, सुरा ही
रह जायेगी, कर विश्वास।

[१३०]

अध मोह मे बध तोडकर
तू स्वच्छद सुरा भर पान,

क्षण-भर मधु अधरो का मिलना,
यह जीवन विधि का वरदान ।
स्वप्नो के सुख मे वह बेसुध,
मदिर गध से भर ले प्राण,
उमर कहाँ से आये हम,
जायेंगे कहाँ, नही कुछ ज्ञान ।

[१३१]

जिसके उर का अघकूप
हो उठा प्रीति जल से परिप्लावित,
हँसने - रोने मे न गँवाता
वह अमूल्य जीवन क्षण निश्चित ।
प्रिय चरणो पर उमर निछावर
चखता स्वत स्फुरित मदिरामृत,
लाला के रँग की हाला भर
पीता बाला के सँग प्रमुदित ।

[१३२]

साकी, ईश्वर है करुणाकर,
उसकी कृपा अपार क्षमामय,
दुष्कृत से फिर तू क्यो वचित,
सबके लिए समान सुरालय ।
दान-पुण्य फल यदि करुणाचल,
न्याय दया में तब क्या अन्तर ?
छोड कलुष भय, हो नि सशय,
पाप दया सहचर हैं निश्चय ।

[१३३]

हाय, कही होता यदि कोई
बाधाहीन निभृत सस्थान
मम व्यथा की कथा भुलाकर
जहाँ जुडा सकता मैं प्राण ।
वही कहीं छिप उमर अकिंचन
करता क्षण भर को विश्राम,
जीवन-पथ की श्रांति-क्लांति हर
करता इच्छित मदिरापान ।

[१३४]

प्रिये, तुम्हारे बाहुपाश के
सुख में सोया मैं उस बार
किसी अतीन्द्रिय स्वप्नलोक मे
करता था बेसुध अभिसार ।
सहसा आकर प्रात वात ने
बिखरा ज्यों हिमजल की धार

छिन्न कर दिया मेरे स्वर्गिक
स्वप्नो के सुमनो का हार।

[१३५]

शीतल तरुछाया मे बैठे
हरते थे निज क्लान्ति पान्थ जन,
कम्पित कर से पान पात्र भर,
देख सुरा का रक्तिम आनन।
हँसमुख सहचर मधुर कण्ठ से
गाते थे मदिरालस लोचन,
बोला हँसकर एक पात्र भर
उमर बीत जायेंगे ये क्षण।

[१३६]

मेरी आत्मा जो कि तुम्हारी
प्रीति सुरा की पीती धार,
भटक रही किस रोष दोष वश
वह इस जग मे बारम्बार।
पहले तुमने कभी न ऐसा
नाथ, किया निमम व्यवहार,
भोग रही वह आज दण्ड क्यो,
वहन कर रही जीवन भार।

[१३७]

तेरे करुणाम्बुधि का केवल
एक भाग यह नीलाकाश,
तेरे आंगन के कोने मे,
सौ सजीव काबो का वास।
यदि मैं तेरे दया द्वार तक
पहुच सकू, जीवन हो धन्य,
थककर मग ही मे रह जाऊँ
तो न व्यथ हो वह आयास।

[१३८]

तेरी कातिल असि से मेरा
साकी, जो कट जाये सर
नयनो के घन भी बरसायें
रुधिर अश्रुओ की जो झर।
रोम-रोम मेरे शरीर का
यदि जी उठे पृथक तन धर,
एक-एक कर करूँ न तुझ पर
अगर निछावर, मैं कायर।

[१३९]

इस जग की चल छाया चित्रित
रग यवनिका के भीतर

छिप जायेंगे जब हम प्रेयसि,
जीवन का छल अभिनय कर!
रंग धरा पर हास-अश्रु के
दृश्य रहेंगे इसी प्रकार
हम न रहेंगे मायामय का
पर न रुकेगा खेल, उमर!

[१४०]

निस्तल यह जीवन रहस्य,
यदि थाह न मिले, क्या है खेद!
सौ मुख से सौ बातें वह लें
लोग भले, तू रह अक्लेद!
सूक्ष्म हृदय इस मुक्ताफल का
कभी न कोई पाया वेध,
गोपन सत्य रहा नित गोपन,
भेद रहा चिर अविदित भेद!

[१४१]

सौ-सौ धर्मा घो से बढ़कर
पूत एक मदिरा का जाम,
चीन देश से भी अमूल्य रे,
मधु का फैला फेन ललाम!
निखिल सृष्टि की प्रिया सुरा यह,
जीवों के प्राणों की सार,
सौ-सौ गुलवदनों से मादक
गुलनारी मदिरा, खैयाम!

[१४२]

बुझता हो जीवन प्रदीप जब
उसको मदिरा से भरना,
मृत्यु स्पर्श से। मुरझाये
पलकों को मधु से तर करना!
द्राक्षा दल का अंगराग मल
ताप विकल तन का हरना,
स्वप्निल अंगूरी छाया में
कब्र बना, मुझको धरना!

[१४३]

सुनता हूँ रमजान माह का
उदय हुआ अब पीला चाँद,
मदिरालय की गलियों में अब
फिर न सकूँगा कर फरियाद!
मैं जी-भर शाबान महीने
पी सूका मदिरा इतनी,

पडा रहूँ अलमस्त ईद तक
रह न रोजों की भी याद।

[१४४]

मधुशाला के साथ सुरा पी,
उमर विजन में कर तू वास,
जग से दूर, जहाँ जीवन के
तापों का न मिले आभास।
दो दिन का साथी यह जीवन
ज्यों वनफूलों का आमोद,
गुलवदनों से मधु अधरों से
भर ले कुछ क्षण हास विलास।

[१४५]

लता द्रुमों, खग पशु कुसुमों में
सकल चराचर में अविकार
भरी लबालब जीवन मदिरा
उमर कह रहा सोच विचार।
पान पात्र हों भले टूटते
मदिरालय में बारम्बार
लहराती ही सदा रहेगी
जग में बहती मदिराधार।

[१४६]

यहाँ उमर के मदिरालय में
कोई नहीं दुखी या दीन,
सबकी इच्छा पूरी करती
सुरा बना सबको स्वाधीन।
जब तक आशा श्वासा उर में
सखे, करो मदिराधर पान
क्षण भर को भी रह न मानस
जग की चिंता में तल्लीन।

[१४७]

आह, समापन हुई प्रणय की
मम कथा, यौवन का पत्र।
सुख स्वप्नों का नव वसंत भी
हुआ शिशिर सा शून्य अपत्र।
मनोल्लास का स्वर्ण विहग वह
था किशोरपन जिसका नाम
उमर हाय, जाने कब आया
और उड गया कब अन्यत्र।

[१४८]

सतत यत्न कर सुख हित कातर
जर्जर प्राण, जीर्ण अब वेश,

श्रीहत तन, निर्वेद युक्त मन,
कुण्ठित यौवन का आवेग।
तलछट मात्र रही अब मदिरा
रिक्तप्राय साकी का जाम,
ज्ञात नहीं पर वृद्ध उमर के
वष आयु के कितने शेष।

[१४९]

हाय, चुक गया अब सारा धन,
रिक्त हो गया जीवन कोष।
बुझा चुका यह काल समीरण
कितने प्राण दीप निर्दोष।
लौट नहीं आ पाया कोई
जाकर फिर जग के उस पार,
उमर पूछकर हाल वहाँ के
पथिकों का करता सतोष।

[१५०]

धर्मवक्को को यदि मुझसे
कभी मित्रता हो स्वीकार
वे मेरे दुखो के बदले
इतना मात्र करें उपकार,—
मेरे मरने बाद देह की
रज से ईंटें कर तैयार
चुनवा दें वे मदिरालय के
खँडहर की टूटी दीवार।

[१५१]

दो शब्दो मे कह दू तुमसे
उमर अंत म सच्ची बात,
उसने विरहानल मे जलकर
पायेगी यह राख नजात।
और उसी की प्रीति सुरा से
दीपशिखा सी उठ तत्काल
पुन जी उठेगी, ज्योतित कर
महामृत्यु की काली रात।

श्री सुमित्रानंदन पंत

कौसानी, जि० अल्मोड़ा में जन्म २० मई, १९००। जन्म के छः घण्टे बाद मां की मृत्यु। गोसाइंदत्त नामकरण। १९०५ में विद्यारम्भ। १९०७ में स्कूल में काव्यपाठ के लिए पुरस्कार। १९१० में अपना नाम बदलकर सुमित्रानंदन रखा। १९११ में अल्मोड़ा के गवनमेंट हाईस्कूल में प्रवेश। १९१२ में नेपोलियन के चित्र से प्रभावित होकर केशवधन। १९१५ से स्थायी रूप से साहित्य सृजन। पहले हस्तलिखित पत्रिका 'सुधाकर' में कविताओं का प्रकाशन, और फिर १९१७-२१ के बीच 'अल्मोड़ा अखबार' तथा 'मर्यादा' आदि पत्रों में। जुलाई १९१९ में म्यार सेंट्रल कालिज, प्रयाग, में दाखिल हुए, लेकिन १९२१ में असहयोग आंदोलन से प्रभावित होकर कालिज छोड़ दिया। १९३० में द्विवेदी पदक। १९३१ से '३४ और '३६ से '४० तक की अवधि कालाकांकर में। १९३८ में 'रूपाभ' का सम्पादन, रवीन्द्रनाथ, कार्ल मार्क्स और महात्मा गांधी के विचारों का अवगाहन। १९४० में उदयशंकर संस्कृति केंद्र में ड्रामा क्लासेज लिये। १९४३ में उदयशंकर संस्कृति केन्द्र के वैतनिक सदस्य बने और 'कल्पना' फिल्म के सिनेरियो की रूपरेखा तैयार की, कुछ गीत भी लिखे। १९४४ में पाण्डिचेरी की यात्रा, अरविंद की विचार साधना से विशेष प्रभावित। १९४७ में सांस्कृतिक जागरण के लिए समर्पित संस्था 'लोकायन' की स्थापना। १९४८ में देव पुरस्कार, १९४९ में डालमिया पुरस्कार। १९५०-५७ में आकाशवाणी के परामर्शदाता। १९६० में 'कला और बूढ़ा चांद' पर साहित्य अकादमी पुरस्कार। १९६१ में पद्मभूषण की उपाधि। १९६१ में रूस तथा यूरोप की यात्रा। १९६५ में उत्तर प्रदेश शासन की ओर से १०,०००रु० का विशेष पुरस्कार। १९६५ में ही सोवियतलैण्ड नेहरू पुरस्कार 'लोकायतन' पर। १९६७ में विक्रम, १९७१ में गोरखपुर, और १९७६ में कानपुर तथा कलकत्ता वि० वि० द्वारा डी० लिट्० की मानद उपाधियां। दिसम्बर १९६७ में भाषा विधेयक के विरोध में पद्मभूषण की उपाधि का परित्याग। १९६९ में साहित्य अकादमी की 'महत्तर सदस्यता'। १९६९ में ही 'चिदम्बरा' पर भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार मिला। २८ दिसम्बर १९७७ को देहावसान।